उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

अक्तूबर-दिसम्बर, 2012

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
अविनाश चन्द्र श्रीवास्तव **बनाम** किरण श्रीवास्तव (श्रीमती)	232
अशोक कुमार दुबे और अन्य **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	209
इंडियन आयल कार्पोरेशन लि. और अन्य **बनाम** सहायक आयुक्त (निर्धारण) विक्रय-कर एर्नाकुलम और अन्य	307
के. एस. श्रीकुमार **बनाम** ज्योलाजिस्ट (देखिए – पृष्ठ संख्या 297)	
जामिया रज़विया मेराजुल उलूम, चिलमपुर, जिला गोरखपुर और एक अन्य **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और तीन अन्य	268
दीनानाथ उपाध्याय और अन्य **बनाम** विहित प्राधिकारी और अन्य	257
न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** हरज्ञान सिंह और अन्य	348
बोबन जोसफ़ **बनाम** मणिकान्तन नायर और अन्य	297
भारत संघ और अन्य **बनाम** दिलीप कुमार पांडे	179
मोहन सिंह और एक अन्य **बनाम** जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य	336
वार्की और एक अन्य **बनाम** भारत संघ	322
विजय लक्ष्मी और एक अन्य **बनाम** मणिकान्तन नायर और अन्य (देखिए – पृष्ठ संख्या 297)	
शादाब और अन्य **बनाम** न्यायाधीश, लघुवाद न्यायालय, गाजियाबाद और एक अन्य	201
शिवानी यादव (श्रीमती) और अन्य **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य	173
सेठ हबीब-उर-रहमान और अन्य **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	287

पृष्ठ संख्या

हिमाचल प्रदेश राज्य **बनाम** अछरू राम (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि 352

संसद् के अधिनियम

नोटेरी अधिनियम, 1952 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (1) – (9)

अक्तूबर-दिसम्बर, 2012 (संयुक्तांक)

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
अनूप कुमार वार्ष्णेय

संपादक
महमूद अली ख़ां

महत्वपूर्ण निर्णय

उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा अधिनियम, 1921 – धारा 16-क – माध्यमिक विद्यालय – प्रबंधतंत्र – कार्यकाल के विस्तार के लिए संकल्प – प्राधिकारियों द्वारा अनुमोदन – ऐसे विस्तार का फायदा भविष्य में चयनित समिति को प्राप्त होगा न कि संकल्प प्रस्थापित करने वाली समिति को ।

सेठ हबीब-उर-रहमान और अन्य बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** 287

संसद् के अधिनियम

नोटेरी अधिनियम, 1952 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (1) – (9)

पृष्ठ संख्या 173 – 356 **(2012) 2 सि. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका – अक्तूबर-दिसम्बर, 2012 (संयुक्तांक) (पृष्ठ संख्या 173 – 356)

संपादक-मंडल

श्री विनोद कुमार भसीन,
सचिव, विधायी विभाग

डा. संजय सिंह,
अपर सचिव (प्रशा.), विधायी विभाग

श्री आर. डी. मीना, संयुक्त सचिव,
राजभाषा खंड

डा. बी. एन. मणि, अधिवक्ता,
(पूर्व संपादक) वि.सा.प्र.

डा. प्रीती सक्सेना, प्रोफेसर,
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ

डा. वैभव गोयल, संकायाध्यक्ष
विधि संकाय, स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ

श्री सुरेन्द्र शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, गुरू गोविद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय, दिल्ली

डा. आर. पी. सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव,
राजभाषा खंड

श्री लालजी प्रसाद,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक,
वि.सा.प्र.

श्री के. जी. अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय,
प्रधान संपादक

श्री महमूद अली खां,
संपादक

श्री जुगल किशोर,
संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पाण्डेय,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री विनोद कुमार आर्य, कमला कान्त, अविनाश शुक्ल और असलम खान

उप-संपादक : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, एम. पी. सिंह, जसवन्त सिंह और बी. के. भटनागर

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 36

वार्षिक : ₹ 135

© 2012 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा अधिनियम, 1921

— धारा 16-क — माध्यमिक विद्यालय — प्रबंधतंत्र — कार्यकाल के विस्तार के लिए संकल्प — प्राधिकारियों द्वारा अनुमोदन — ऐसे विस्तार का फायदा भविष्य में चयनित समिति को प्राप्त होगा न कि संकल्प प्रस्थापित करने वाली समिति को ।

सेठ हबीब-उर-रहमान और अन्य बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** 287

केरल साधारण विक्रय कर अधिनियम, 1963

— धारा 5-क और 23(3) — पैट्रोलियम उत्पाद — विक्रय पर कर दायित्व — जहां न्यायालय द्वारा कंपनियों पर कर का दायित्व निर्धारित कर दिया गया हो वहां कंपनियों द्वारा आक्षेप किए जाने के पश्चात् भी कंपनियों का यह दायित्व है कि उच्चतर न्यायालय के अंतिम निर्णय तक कर का संदाय करते रहें — दायित्व निर्धारित होने पर ऐसे कर का समायोजन किया जा सकता है ।

इंडियन आयल कार्पोरेशन लि. और अन्य बनाम **सहायक आयुक्त (निर्धारण) विक्रय-कर एर्नाकुलम और अन्य** 307

खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 (1957 का 67)

— धारा 15 [सपठित केरल लघु खनिज रियायत नियम, 1957 के नियम 8 का उप-नियम (1)(ङ)] — रेत का खनन — यांत्रिक उपकरणों का उपयोग — आस-पास के भू-स्वामियों द्वारा नियम को इस आधार पर आक्षेपित किया जाना कि यांत्रिक उपकरणों के उपयोग से आस-पास की भूमियां प्रभावित होंगी —

पृष्ठ संख्या

चूंकि खनन के लिए अनुज्ञप्ति ऐसे निबंधनों और शर्तों के अध्यधीन जारी की जाती है जिससे आस-पास की भूमि को नुकसान न हो इसलिए आस-पास के भू-स्वामियों को किसी नुकसान की संभावना नहीं होती – सरकार द्वारा आक्षेपित नियम प्रदत्त शक्तियों के अधीन अधिनियमित किया गया है – अतः इसे संविधान के अनुच्छेद 21 के अतिक्रमण में नहीं कहा जा सकता ।

बोबन जोसफ़ बनाम **मणिकान्तन नायर और अन्य** 297

जम्मू-कश्मीर सिख गुरुद्वारा और धार्मिक विन्यास अधिनियम, 1973

– धारा 9 और 19(1) [सपठित जम्मू-कश्मीर सिख गुरुद्वारा और धार्मिक विन्यास नियम, 1975 – नियम 63-ख] – सरकार की नियम बनाने की शक्ति – नियमों द्वारा बोर्ड का समितियों के कामकाज पर नियंत्रण – नियम 63-ख को मनमाना और अतर्कसंगतता के आधार पर अभिखंडित करने के लिए याचिका – नियम 63-ख द्वारा शक्ति का प्रयोग प्रस्ताव द्वारा तभी अनुज्ञात किया गया है जब बोर्ड का यह समाधान हो जाए कि समिति द्वारा प्रशासन या संपत्तियों का रख-रखाव नियमों के अनुसार नहीं किया जा रहा है – अतः इस नियम को मनमाना या अधिकारातीत नहीं कहा जा सकता ।

मोहन सिंह और एक अन्य बनाम **जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य** 336

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59)

– धारा 163-क और 173 – दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – बीमा कंपनी द्वारा अपने दायित्व से इनकार – जहां बीमा कंपनी बीमाकृत के किसी दोष के

पृष्ठ संख्या

कारण अपने दायित्व से भले ही इनकार करे तथापि, वह प्रतिकर का संदाय करने के लिए दायित्वाधीन होती है – तथापि, वह पालिसी की शर्तों के भंग के आधार पर बीमाकृत से ऐसी धनराशि वसूल कर सकती है ।

न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम **हरज्ञान सिंह और अन्य** 348

रेल अधिनियम, 1989

– धारा 123 और 124-क – वैध टिकट पर रेल में यात्रा – दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – रेल प्रशासन द्वारा यह प्रतिरक्षा ली जानी कि मृतक की मृत्यु उसकी उपेक्षा और असावधानी के कारण हुई थी और घटना के समय वह अपने आरक्षित कोच में नहीं था – इस बात से कोई अन्तर नहीं पड़ता कि याची आरक्षित कोच से भिन्न किसी कोच में यात्रा कर रहा था – दावेदार प्रतिकर पाने के हकदार हैं ।

वार्की और एक अन्य बनाम **भारत संघ** 322

– धारा 124-क – रेल में यात्रा करते समय मृत्यु – प्रतिकर के लिए दावा – दावेदारों द्वारा आवेदन के स्तंभ में घटना की गलत तारीख उल्लिखित की जानी – अन्य साक्ष्य से घटना की सही तारीख साबित होनी – मात्र लिपिकीय या टंकण की त्रुटि के आधार पर प्रतिकर दिए जाने से इनकार नहीं किया जा सकता ।

वार्की और एक अन्य बनाम **भारत संघ** 322

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 12 और 226 [सपठित सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860] – रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी द्वारा संचालित संस्था – सोसाइटी द्वारा किसी भी प्रकार की सरकारी अनुदान या वित्तीय सहायता नहीं लेना – संस्था द्वारा नियोजित अध्यापक द्वारा रिट याचिका

पृष्ठ संख्या

का अवलंब लिया जाना – एकल न्यायाधीश द्वारा याचिका स्वीकार किया जाना – संस्था संविधान, 1950 के अनुच्छेद 12 में परिभाषित 'राज्य' के अन्तर्गत न आना – चूंकि संस्था अनुच्छेद 12 के नियंत्रणाधीन नहीं है – अतः अध्यापक उक्त अनुच्छेद का अवलंब नहीं ले सकता – रिट याचिका ग्रहण नहीं की जा सकती ।

भारत संघ और अन्य बनाम **दिलीप कुमार पांडे** 179

– अनुच्छेद 226 [सपठित उत्तर प्रदेश उप-निरीक्षक और निरीक्षक (सिविल पुलिस) सेवा नियम, 2008 का नियम 5(2) के साथ पठित उत्तर प्रदेश उप-निरीक्षक और निरीक्षक (सिविल पुलिस) (प्रथम संशोधन) सेवा नियम, 2009 का नियम 5(2)] – संशोधित नियमों को भूतलक्षी प्रभाव देना – ऐसे संशोधन सांविधानिक तौर पर वैध होना – यदि सांविधानिक तौर पर सेवा नियमों में संशोधन करते हुए, उन्हें भूतलक्षी प्रभाव दिया जाता है तो ऐसे संशोधन विधि की दृष्टि से मान्य और कायम रखे जाने योग्य होंगे ।

अशोक कुमार दुबे और अन्य बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** 209

– अनुच्छेद 226 [सपठित उत्तर प्रदेश शहरी भवन (पट्टा, किराया और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 की धारा 21(1)(क)] – रिट – निर्मुक्ति आवेदन – पूर्ववर्ती किराएदार द्वारा किराएदारी मकान में क्रय द्वारा स्वामित्व अर्जित करना – पश्चात्वर्ती किराएदार द्वारा स्वामित्व को चुनौती देते हुए मकान खाली नहीं करना – बेदखली – यदि पूर्ववर्ती किराएदार द्वारा किराएदारी मकान में क्रय आदि द्वारा वैध तरीके से स्वामित्व अर्जित कर लिया जाता है तो

पृष्ठ संख्या

पश्चात्वर्ती किराएदार उसके स्वामित्व को चुनौती देते हुए मकान खाली करने से इनकार नहीं कर सकता है तथा आवश्यकता के आधार पर ऐसे स्वामी द्वारा फाइल निर्मुक्ति आवेदन पर उसे तुरन्त बेदखल कर दिया जाएगा ।

अविनाश चन्द्र श्रीवास्तव बनाम **किरण श्रीवास्तव (श्रीमती)** 232

– अनुच्छेद 226 [सपठित 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम सं. 13 की धारा 3(ङ)] – रिट – मामले का अन्तरण – अन्तरण आदेश पारित करने की अधिकारिता पर आक्षेप – मामला विलम्बित करने के लिए आक्षेप फाइल करना – यदि सक्षम प्राधिकारी द्वारा अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए किसी मामले का अन्तरण किया जाता है तथा अभिलेख पर के तथ्यों से यह साबित होता है कि ऐसे अन्तरण आदेश पर आक्षेप मामला विलम्बित करने के आशय से फाइल किया गया है तो ऐसा आक्षेप कायम रखे जाने योग्य नहीं होगा और प्रथमदृष्ट्या ही खारिज कर दिया जाएगा ।

दीनानाथ उपाध्याय और अन्य बनाम **विहित प्राधिकारी और अन्य** 257

– अनुच्छेद 226 [सपठित उत्तर प्रदेश सरकार का तारीख 26 फरवरी, 2010 का आदेश तथा तारीख 7 अप्रैल, 2010 की अधिसूचना का खंड 4] – व्यावसायिक विषय के विशेषज्ञ द्वारा अध्यापन – स्कीम द्वारा अधिकतम 10,000/- रुपए मंजूर करने का उपबंध – अध्यापक द्वारा दो पृथक्-पृथक् कार्य दिवस के लिए पृथक्-पृथक् पारिश्रमिक की मांग – न्यायौचित्य – अध्यापकों को प्रति व्याख्यान के आधार पर अधिकतम 10,000/- रुपए संदाय किए जाने का उपबंध अधिकारातीत

पृष्ठ संख्या

नहीं कहा जा सकता – अतः न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करना उचित नहीं है ।

शिवानी यादव (श्रीमती) और अन्य बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य** 173

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– धारा 96 [सपठित सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 की धारा 4 और धारा 25(2)] – विशेष अपील – एक रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी के प्रबन्ध समिति के सदस्यों में से एक सदस्य की सदस्यता विवादित होना – प्रबन्ध समिति का निर्वाचन विवादित नहीं होना – रजिस्ट्रार द्वारा सम्बन्धित विहित नियमों के अनुसरण में विवाद्यक का निपटारा करना – आक्षेप – यदि किसी रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी के प्रबन्ध समिति के सदस्यों में से किसी एक की सदस्यता विवादित है और सम्बन्धित रजिस्ट्रार द्वारा विहित नियमों के अनुसरण में उसका निपटारा कर दिया जाता है तो उसके आदेश को इस आधार पर आक्षेपित नहीं किया जा सकता है कि रजिस्ट्रार ने अपनी अधिकारिता के बाहर कार्य किया है वह भी तब जब यह साबित कर दिया जाता है कि विवाद्यक सदस्यता से सम्बन्धित है न कि निर्वाचन से सम्बन्धित है ।

जामिया रज़विया मेराजुल उलूम, चिलमपुर, जिला गोरखपुर और एक अन्य बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और तीन अन्य** 268

– आदेश 9, नियम 13 और धारा 151 [सपठित परिसीमा अधिनियम, 1963 – धारा 5] – एकपक्षीय निर्णय और डिक्री को अपास्त करने और मामले का प्रत्यावर्तन करने हेतु लगभग 9 वर्ष और 3 मास के पश्चात् प्रत्यावर्तन आवेदन – डिक्री के समय अवयस्क

पृष्ठ संख्या

होने की दलील – प्रत्यावर्तन आवेदन वयस्कता प्राप्त करने के एक वर्ष पश्चात् फाइल किया जाना – प्रत्यावर्तन आवेदन ठीक ही खारिज किया गया है – मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है ।

शादाब और अन्य बनाम **न्यायाधीश, लघुवाद न्यायालय, गाजियाबाद और एक अन्य** 201

– आदेश 23, नियम (1) और (4)(ख) – नोटोर नियम के अधीन भूमि का प्रदाय – पट्टा जारी किया जाना – पट्टा रद्द करने के लिए वाद – पूर्व वाद सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23 के नियम 1 के अधीन वापस लिए जाने के रूप में खारिज किया जाना – परिसीमा काल के पश्चात् उसी वाद हेतुक पर नया वाद फाइल करना – वाद में अनुतोष भी वही मांगा जाना – वाद ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है – पूर्व-न्याय का सिद्धान्त लागू होगा ।

हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम **अछरू राम (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि** 352

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमश: चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ को पाठकों की सुविधा के लिए श्रृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटौरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वाशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

शिवानी यादव (श्रीमती) और अन्य

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य

तारीख 26 अप्रैल, 2010

न्यायमूर्ति अरुण टंडन

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 [सपठित उत्तर प्रदेश सरकार का तारीख 26 फरवरी, 2010 का आदेश तथा तारीख 7 अप्रैल, 2010 की अधिसूचना का खंड 4] – व्यावसायिक विषय के विशेषज्ञ द्वारा अध्यापन – स्कीम द्वारा अधिकतम 10,000/- रुपए मंजूर करने का उपबंध – अध्यापक द्वारा दो पृथक्-पृथक् कार्य दिवस के लिए पृथक्-पृथक् पारिश्रमिक की मांग – न्यायौचित्य – अध्यापकों को प्रति व्याख्यान के आधार पर अधिकतम 10,000/- रुपए संदाय किए जाने का उपबंध अधिकारातीत नहीं कहा जा सकता – अतः न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करना उचित नहीं है ।

याची सं. 4 केन्द्र सरकार से सहायताप्राप्त और मान्यताप्राप्त इण्टरमीडिएट विद्यालयों द्वारा प्रवर्तित एक स्कीम के अधीन चल रहे व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के लिए अस्थायी (गेस्ट) अध्यापक के रूप में कार्यरत व्यक्तियों की संस्था (संगम) है । याची सं. 1 से 3 उक्त संस्था के सदस्य हैं और उन्होंने उक्त स्कीम के अधीन इण्टरमीडिएट विद्यालयों में व्यावसायिक विषय के अध्यापकों के रूप में कार्यरत होने का दावा किया है । याची तारीख 7 अप्रैल, 2010 के आदेश द्वारा व्यथित हुए हैं जो तारीख 26 फरवरी, 2010 के पूर्ववर्ती सरकारी आदेश के निर्देश में जारी किया गया है । इन आदेशों से व्यथित होकर याचियों ने संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन वर्तमान सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका फाइल की । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – केन्द्रीय सरकार द्वारा आबंटित निधियों के अधीन राज्य सरकार द्वारा जारी स्कीम उन विद्यार्थियों को व्यावसायिक प्रशिक्षण देने के

प्रयोजन के लिए है जो विद्यार्थी विभिन्न असहायताप्राप्त और मान्यताप्राप्त इण्टरमीडिएट विद्यालयों में पहले ही नियमित रूप से प्रवेश ले चुके हैं । व्यावसायिक अध्यापन के लिए कोई काडर सृजित नहीं किया गया है । स्कीम सरकारी आदेशों द्वारा विनियमित है । राज्य सरकार ने यह विनिश्चय किया कि कक्षा 11 और 12 को शिक्षा प्रदान करने के लिए नियुक्त अध्यापकों को प्रति व्याख्यान के आधार पर संदाय किया जाएगा किन्तु अधिकतम 10,000/- रुपए प्रतिमास और वस्तुतः बढ़ाई गई अवधियों की कुल संख्या को विचार में लिए बिना । न्यायालय की राय में, राज्य सरकार द्वारा ऐसा खंड जोड़ना किसी भी कानूनी उपबंध का अतिक्रमण नहीं है । राज्य सरकार ने अधिकतम निर्धारित करने में यह ठीक ही स्पष्ट किया है कि कोई अध्यापक व्यावसायिक विषय विशेषज्ञ के रूप में किसी संस्था में शिक्षा देने में उस तथ्य पर ध्यान दिए बिना अधिकतम विहित पारिश्रमिक प्राप्त करेगा कि क्या वह कक्षा 11 या 12 या दोनों को पढ़ा रहा है । जहां तक कार्यदिवस के संदाय का संबंध है, पढ़ाई गई कुल अवधि निरर्थक है जहां अधिकतम 10,000/-रुपए प्रतिमास नियत है । इस न्यायालय का यह मत है कि राज्य सरकार ने किसी व्यावसायिक अध्यापक को केवल एक कार्यदिवस के संदाय का विनिश्चय किया है जो अधिकतम संभव व्यक्तियों को नियोजन प्रदान करेगा । इस न्यायालय को तारीख 26 फरवरी, 2010 के सरकारी आदेश के अधीन यथाउपदर्शित राज्य सरकार के विनिश्चय में हस्तक्षेप करने के लिए कोई बेहतर आधार प्रतीत नहीं होता है जैसा कि तारीख 7 अप्रैल, 2010 की अधिसूचना/सरकारी आदेश के अधीन स्पष्ट किया गया है । पूर्वोक्त विनियम मान्यताप्राप्त और सहायताप्राप्त इण्टरमीडिएट विद्यालयों में व्यावसायिक अध्यापकों के पद के सृजन के लिए उपबंध नहीं करते, जिसकी शक्ति 1971 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्यांक 24 की धारा 9 के अधीन निदेशक को है । इण्टरमीडिएट विद्यालयों के लिए व्यावसायिक विषय के अध्यापकों का कोई पृथक् काडर नहीं है और न ही सक्षम प्राधिकारी ने 1971 के उत्तर प्रदेश अधिनियम के संख्यांक 24 की धारा 9 के निर्देश में पद मंजूर किया है । व्यावसायिक विषय विशेषज्ञों के वेतन इत्यादि का संदाय केवल सरकारी आदेश के अनुसार अनुज्ञेय है । चूंकि इस न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि एक ही संस्था में कक्षा 11 और 12 के अध्यापन के लिए एक व्यक्ति के लिए दो पृथक् कार्यदिवस के संदाय को निर्बंधित करने वाला आदेश/अधिसूचना न्यायसंगत और युक्तियुक्त है, इसलिए इस तथ्य को विचार में लाए बिना कि वे पृथक् रूप या संयुक्त रूप से कक्षा 11 और

12 को शिक्षा प्रदान करते हैं, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन हस्तक्षेप करने के लिए कोई मामला नहीं बनता है । (पैरा 4, 5, 6, 9, 10 और 11)

आरंभिक (सिविल) प्रकीर्ण रिट : अधिकारिता **2010 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 22822.**

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका ।

याची की ओर से सर्वश्री संजय कुमार राय और अशोक खरे

प्रत्यर्थी की ओर से मुख्य स्थायी काउंसेल

न्यायमूर्ति अरुण टंडन – याची सं. 4 केन्द्र सरकार से सहायताप्राप्त और मान्यताप्राप्त इण्टरमीडिएट विद्यालयों द्वारा प्रवर्तित एक स्कीम के अधीन चल रहे व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के लिए अस्थायी (गेस्ट) अध्यापक के रूप में कार्यरत व्यक्तियों की संस्था (संगम) है । याची सं. 1 से 3 उक्त संस्था के सदस्य हैं और उन्होंने उक्त स्कीम के अधीन इण्टरमीडिएट विद्यालयों में व्यावसायिक विषय के अध्यापकों के रूप में कार्यरत होने का दावा किया है । याची तारीख 7 अप्रैल, 2010 के आदेश द्वारा व्यथित हुए हैं जो तारीख 26 फरवरी, 2010 के पूर्ववर्ती सरकारी आदेश के निर्देश में जारी किया गया है । राज्य सरकार द्वारा चालू स्कीम के अधीन व्यावसायिक विषय के विशेषज्ञों को संदाय अधिकतम 10,000/- रुपए प्रतिमास के अध्यधीन विषय के आधार पर व्याख्यान के आधार पर किया जाता है । याची तारीख 7 अप्रैल, 2010 की अधिसूचना के खंड 4 द्वारा व्यथित हुए हैं जो तारीख 26 फरवरी, 2010 के पूर्ववर्ती सरकारी आदेश के निर्देश में जारी किया गया है और जो यह उपबंध करता है कि यदि विषय अध्यापक का पृथक् रूप से कक्षा 11 और 12 को शिक्षा प्रदान करता है तो वह केवल अधिकतम एक कार्यदिवस के अर्थात् 10,000/- रुपए प्रतिमास का हकदार होगा और किसी भी स्थिति में व्यावसायिक अध्यापक को दो श्रम दिन पर 10,000/- रुपए प्रतिमास से अधिक का संदाय नहीं किया जाएगा ।

2. याचियों के काउंसेल ने तारीख 7 अप्रैल, 2010 की पूर्वोक्त अधिसूचना को चुनौती देते हुए यह दलील दी कि चूंकि वे संस्था के प्रबंधन के आदेशों के अधीन कक्षा 11 और 12 को पढ़ा रहे हैं, इसलिए वे दो कार्यदिवस के लिए हकदार हैं । यह दलील दी गई है कि राज्य सरकार

केवल एक कार्यदिवस तक संदाय को निर्बंधित नहीं कर सकती है क्योंकि वस्तुतः निधियों को केन्द्र सरकार द्वारा जारी किया जाता है इसलिए, अधिसूचना/सरकारी आदेश के अधीन जारी निर्बंधन बिना किसी प्राधिकार के जारी किया गया है ।

3. मैंने याचियों की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री अशोक खरे, ज्येष्ठ अधिवक्ता जिनकी सहायता श्री एस. के. राय ने की और प्रत्यर्थियों की ओर से स्थायी काउंसेल को सुना ।

4. केन्द्रीय सरकार द्वारा आबंटित निधियों के अधीन राज्य सरकार द्वारा जारी स्कीम उन विद्यार्थियों को व्यावसायिक प्रशिक्षण देने के प्रयोजन के लिए है जो विद्यार्थी विभिन्न असहायताप्राप्त और मान्यताप्राप्त इण्टरमीडिएट विद्यालयों में पहले ही नियमित रूप से प्रवेश ले चुके हैं । व्यावसायिक अध्यापन के लिए कोई काडर सृजित नहीं किया गया है । स्कीम सरकारी आदेशों द्वारा विनियमित है । राज्य सरकार ने यह विनिश्चय किया कि कक्षा 11 और 12 को शिक्षा प्रदान करने के लिए नियुक्त अध्यापकों को प्रति व्याख्यान के आधार पर संदाय किया जाएगा किन्तु अधिकतम 10,000/- रुपए प्रतिमास और वस्तुत: बढ़ाई गई अवधियों की कुल संख्या को विचार में लिए बिना ।

5. न्यायालय की राय में, राज्य सरकार द्वारा ऐसा खंड जोड़ना किसी भी कानूनी उपबंध का अतिक्रमण नहीं है । राज्य सरकार ने अधिकतम निर्धारित करने में यह ठीक ही स्पष्ट किया है कि कोई अध्यापक व्यावसायिक विषय विशेषज्ञ के रूप में किसी संस्था में शिक्षा देने में उस तथ्य पर ध्यान दिए बिना अधिकतम विहित पारिश्रमिक प्राप्त करेगा कि क्या वह कक्षा 11 या 12 या दोनों को पढ़ा रहा है । जहां तक कार्यदिवस के संदाय का संबंध है, पढ़ाई गई कुल अवधि निरर्थक है जहां अधिकतम 10,000/- रुपए प्रतिमास नियत है ।

6. इस न्यायालय का यह मत है कि राज्य सरकार ने किसी व्यावसायिक अध्यापक को केवल एक कार्यदिवस के संदाय का विनिश्चय किया है जो अधिकतम संभव व्यक्तियों को नियोजन प्रदान करेगा । इस न्यायालय को तारीख 26 फरवरी, 2010 के सरकारी आदेश के अधीन यथा-उपदर्शित राज्य सरकार के विनिश्चय में हस्तक्षेप करने के लिए कोई बेहतर आधार प्रतीत नहीं होता है जैसा कि तारीख 7 अप्रैल, 2010 की अधिसूचना/सरकारी आदेश के अधीन स्पष्ट किया गया है ।

7. याचियों के काउंसेल ने यह दलील दी है कि तारीख 26 जून, 2005 के शिक्षा निदेशक के पत्र/परिपत्र के अधीन यह उपबंधित किया गया है कि दो अलग-अलग संस्थाओं में अध्यापन के संबंध में कोई निर्बंधन नहीं है । अतः किसी अध्यापक के लिए एक ही संस्था में पृथक् रूप से कक्षा 11 और 12 के लिए शिक्षा प्रदान करने में अध्यापक को दो अलग-अलग कार्यदिवस के संदाय पर कोई वर्जन नहीं होना चाहिए । याचियों के काउंसेल द्वारा लिया गया अवलंब निदेशक का पत्र उत्पन्न संविवाद के न्यायनिर्णयन के लिए संपूर्ण रूप से असंगत है । जैसाकि ऊपर पहले ही उल्लेख किया गया है, प्रति व्याख्यान संदाय अधिकतम 10,000/- रुपए के अध्यधीन है जो ऐसे अध्यापक को संदाय किया जाएगा जो एक ही संस्था में कक्षा 11 या 12 दोनों को शिक्षा प्रदान करता है, क्योंकि घंटों की संख्या कार्यदिवस की अधिकतम समयावधि के पश्चात् विचार में नहीं ली जाएगी ।

8. अन्ततः याची के काउंसेल ने इण्टरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 की धारा 9(4) का अवलंब लिया है जो राज्य सरकार को सरकारी आदेश जारी करने के लिए शक्ति प्रदान करती है जिसका उनके अनुसार कानूनी बल होगा और इण्टरमीडिएट शिक्षा अधिनियम के अधीन गठित विनियमों के अध्याय 14-क का निर्देश किया गया है जो इसमें उल्लिखित विषयों के संबंध में इण्टरमीडिएट विद्यालयों में विद्यार्थियों को व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए उपबंध करते हैं । यह दावा किया गया है कि व्यावसायिक अध्यापकों की नियुक्ति कानूनी है और परिणामतः काडर का सृजन हो गया है ।

9. पूर्वोक्त विनियम मान्यताप्राप्त और सहायताप्राप्त इण्टरमीडिएट विद्यालयों में व्यावसायिक अध्यापकों के पद के सृजन के लिए उपबंध नहीं करते, जिसकी शक्ति 1971 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्यांक 24 की धारा 9 के अधीन निदेशक को है ।

10. इण्टरमीडिएट विद्यालयों के लिए व्यावसायिक विषय के अध्यापकों का कोई पृथक् काडर नहीं है और न ही सक्षम प्राधिकारी ने 1971 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्यांक 24 की धारा 9 के निर्देश में पद मंजूर किया है । व्यावसायकि विषय विशेषज्ञों के वेतन इत्यादि का संदाय केवल सरकारी आदेश के अनुसार अनुज्ञेय हैं ।

11. चूंकि इस न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि एक ही

संस्था में कक्षा 11 और 12 के अध्यापन के लिए एक व्यक्ति के लिए दो पृथक् कार्यदिवस के संदाय को निर्बंधित करने वाला आदेश/अधिसूचना न्यायसंगत और युक्तियुक्त है, इसलिए इस तथ्य को विचार में लाए बिना कि वे पृथक् रूप या संयुक्त रूप से कक्षा 11 और 12 को शिक्षा प्रदान करते हैं, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन हस्तक्षेप करने के लिए कोई मामला नहीं बनता है ।

12. इस प्रक्रम पर याचियों के काउंसेल ने यह दलील दी कि याची ने कक्षा 11 और 12 दोनों को पृथक्-प्रथक् पढ़ाया था, इसलिए, तारीख 26 फरवरी, 2010 से पूर्व अवधि के लिए दो कार्यदिवस का संदाय पृथक्-पृथक् किया जाना चाहिए क्योंकि तारीख 26 फरवरी, 2010 का सरकारी आदेश भूतलक्षी प्रकृति का है ।

13. राज्य की ओर से स्थायी काउंसेल ने यह दलील दी है कि सरकारी आदेश अधिकतम 10,000/- रुपए के कार्यदिवस के संदाय को निर्बंधित करते हुए तारीख 29 मार्च, 2009 को जारी किया गया था और तारीख 26 फरवरी, 2010 का सरकारी आदेश और तारीख 7 अप्रैल, 2010 की अधिसूचना केवल स्पष्टीकरण प्रकृति की है और स्कीम के अधीन संदाय करने के लिए अर्थात् व्यावसायिक अध्यापक को अधिकतम 10,000/- रुपए प्रतिमास संदाय करने के लिए मूल सरकारी आदेश के आशय को स्पष्ट करती है ।

14. न्यायालय के विचार में स्थायी काउंसेल की ओर से दी गई दलील में बल है इसलिए, तारीख 26 फरवरी, 2010 से पूर्व की अवधि के लिए दो कार्य दिवस को मंजूर करने के लिए अनुरोध को नामंजूर किया जाता है ।

15. याची के काउंसेल ने अंतरिम आदेश का निर्देश किया है जो न्यायालय पर आबद्धकर नहीं है क्योंकि यह न्यायालय रिट याचिका का निपटारा अंतिम रूप से कर रहा है ।

16. रिट याचिका खारिज की जाती है ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

मही./मह.

भारत संघ और अन्य

बनाम

दिलीप कुमार पांडे

तारीख 12 जुलाई, 2010

मुख्य न्यायमूर्ति फरदीनो इनासियो रिबैलो और न्यायमूर्ति ए. पी. साही

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 12 और 226 [सपठित सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860] – रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी द्वारा संचालित संस्था – सोसाइटी द्वारा किसी भी प्रकार की सरकारी अनुदान या वित्तीय सहायता नहीं लेना – संस्था द्वारा नियोजित अध्यापक द्वारा रिट याचिका का अवलंब लिया जाना – एकल न्यायाधीश द्वारा याचिका स्वीकार किया जाना – संस्था संविधान, 1950 के अनुच्छेद 12 में परिभाषित 'राज्य' के अन्तर्गत न आना – चूंकि संस्था अनुच्छेद 12 के नियंत्रणाधीन नहीं है – अतः अध्यापक उक्त अनुच्छेद का अवलंब नहीं ले सकता – रिट याचिका ग्रहण नहीं की जा सकती ।

वर्तमान मामले में, न्यायालय के समक्ष के अपीलार्थियों ने रिट याचिका को कायम रखने के लिए प्रारम्भिक आक्षेप किए इस आधार पर कि न तो संस्था न ही संस्था का प्रबंध करने वाली सोसाइटी इस न्यायालय की रिट अधिकारिता के अध्यधीन है क्योंकि यह संविधान, 1950 के अनुच्छेद 12 के अर्थान्तर्गत राज्य का तंत्र नही है । इस प्रारम्भिक आक्षेप का विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष फाइल प्रति-शपथपत्र के पैराग्राफ सं. 3, 4, 8 और 9 में प्रकथनों द्वारा खंडन किया गया । यह उत्तर रिट याचिका के पैराग्राफ सं. 5 और 6 में अन्तर्विष्ट प्रकथनों के जवाब में था, जहां यह अभिकथित किया गया था कि वायु सेना स्कूल सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 के अन्तर्गत रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी के अधीन स्थापित है और यह संविधान, 1950 के अनुच्छेद 12 के अधीन प्रयुक्त राज्य शब्द के अर्थान्तर्गत आने वाले वायु सेना स्कूल के शिक्षा संहिता द्वारा शासित है । प्रति-शपथपत्र में अन्तर्विष्ट प्रकथनों जिसमें प्रारम्भिक आक्षेप सम्मिलित थे, का उत्तर प्रत्यर्थी-याची द्वारा प्रत्युत्तर फाइल करते हुए दिया गया और अपीलार्थियों की ओर से उद्भूत दलीलों के खंडन में उक्त शपथपत्र में

अभिलेख पर न तो कोई अभिवाक् किया गया न ही अभिलेख पर कोई तथ्य लाया गया है । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका कायम रखने के बारे में उद्भूत प्रारम्भिक आक्षेप को अनूप कुमार पांडे बनाम भारत संघ और अन्य तथा संजय कुमार शर्मा बनाम केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड और अन्य वाले मामलों में दिए गए विनिश्चय का अवलंब लेते हुए, इनकार कर दिया । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने आर्मी स्कूल, गोरखपुर बनाम श्रीमती शिल्पी पाल, गिरीश कुमार मिश्रा बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक और डा. ए. के. गुप्ता बनाम राजघाट शिक्षा केन्द्र वाले मामलों को भी निर्दिष्ट किया जिनका अवलंब अपीलार्थियों द्वारा लिया गया था । तथापि, उन्होंने इन विनिश्चयों को लागू किए जाने योग्य नहीं माना क्योंकि वे तथ्यों पर सुभिन्न थे । इसके पश्चात्, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने मामले के गुणागुणों पर भी विचार किया और रिट याचिका मंजूर कर ली थी । इससे व्यथित होकर वर्तमान अपील फाइल की गई । न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय ने रिट याचिका कायम रखने के संबंध में इस प्रारम्भिक मुद्दे पर उद्भूत निवेदनों पर गंभीरतापूर्वक विचार किया । यथाअभिवाचित तथ्यों से यह अविवादित है कि प्रत्यर्थी-याची उस स्कूल का एक कर्मचारी है जो किसी कानूनी विनियमों द्वारा शासित नहीं है । सोसाइटी को जो संस्था का प्रबंध करती है, स्वयं अपनी शिक्षा संहिता है जो इस प्रकार विरचित है जिसकी कोई कानूनी मंजूरी नहीं है । कम-से-कम, प्रत्यर्थी-याची के विद्वान् काउंसेल किसी ऐसे नियमों या विनियमों की मौजूदगी को इंगित करने में असफल रहे हैं जिनकी कानूनी प्रकृति हो । संस्था, स्वीकृततः सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 के अधीन रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी के रूप में स्थापित है और यह स्वयं अपने उप-विधियों द्वारा शासित है । रिट याचिका में याची द्वारा किए गए तथ्यात्मक प्रकथनों से मात्र निम्नलिखित प्रभाव इंगित होते हैं – "5. कि विभिन्न इकाइयों में वायु सेना स्कूल का प्रभावी प्रबंधन और प्रशासन के लिए सोसाइटी ने 'शिक्षा संहिता वायु सेना स्कूल, 2005' को विरचित किया है । पूर्वोक्त संहिता केन्द्रीय विद्यालयों के प्रबंधन के लिए विरचित शिक्षा संहिता के समान है । 6. कि वायु सेना स्कूलों की भारतीय वायु सेना स्कूल के माध्यम से केन्द्रीय सरकार द्वारा वित्त व्यवस्था की जाती है, भारतीय वायु सेना के अधिकारियों द्वारा नियंत्रित की जाती है और इसका उद्देश्य भारतीय वायु सेना के अधिकारियों और कर्मचारियों के बच्चों को

शिक्षा देना होता है । वायु सेना स्कूल, संविधान, 1950 के अनुच्छेद 12 के अधीन 'राज्य' शब्द के अर्थान्तर्गत आते हैं । 7. कि वायु सेना स्कूल, बमरौली, इलाहाबाद पूर्वोक्त सोसाइटी द्वारा स्थापित एक स्कूल है और उक्त स्कूल संविधान, 1950 के अनुच्छेद 12 के अधीन 'राज्य' की परिभाषा के अधीन आता है ।" इसके अलावा, रिट याचिका में यह उपदर्शित करने के लिए कुछ नहीं है कि स्कूल, किसी सरकारी आबंटित निधि के माध्यम से निधि प्राप्त करता है या सरकार के प्राधिकार के अधीन इसके प्रबंधतंत्र पर कोई नियंत्रण है । प्रबंधतंत्र, सोसाइटी के उप-विधियों के अधीन अधिकारियों को न्यस्त है । इस प्रकृति का नियंत्रण एक प्रशासनिक नियंत्रण है और इसे सरकार द्वारा नियंत्रण के रूप में नहीं समझा जा सकता है । किसी अन्य चीज के अभाव में, या तो तथ्यतः या वैधतः यह निर्वचन करना संभव नहीं होगा कि संस्था के ऊपर सरकार का कम-से-कम गंभीर और व्यापक नियंत्रण है । जहां तक वित्त व्यवस्था का संबंध है, अपीलार्थी-प्रत्यर्थी ने अपने प्रति-शपथपत्र में सुस्पष्टतः यह कथन किया है कि न तो कोई कल्याण निधि है जो अधिकारियों द्वारा स्वैच्छिक अंशदान के रूप में है वह सरकार द्वारा आबंटित निधि है न ही केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार किसी भी प्रकार से संस्था को ऐसी कोई वित्तीय सहायता देती है । यह भी प्रकथन किया गया है कि वित्तीय व्यवस्था को विभिन्न शीर्षों के अधीन छात्रों से एकत्रित शुल्कों से प्रबंध किए जाते हैं और उन्हें वायु सेना के कर्मचारियों के अंशदान द्वारा अनुपूरक रूप में लिए जाते हैं जो कि स्वैच्छिक प्रकृति की होती है । यह भी सुस्पष्टतः कथित है कि उप-विधियों अर्थात् शिक्षा संहिता वायु सेना स्कूल, 2005 जो प्रत्यर्थी-याची की सेवा के निबंधनों और शर्तों को शासित करते हैं न तो कानूनी है और न ही उन पर कोई राज्य नियंत्रण उपदर्शित होता है । याची द्वारा अपीलार्थियों की ओर से उक्त शपथपत्र का प्रत्युत्तर शपथपत्र फाइल किया गया और प्रति-शपथपत्र में किए गए पूर्वोक्त विनिर्दिष्ट और सुस्पष्ट प्रकथनों के बारे में न तो इनकार किया गया अथवा न ही कोई सामग्री प्रस्तुत की गई है । इसलिए, प्रत्यर्थी-याची रिट याचिका में तत्व रहित प्रकथनों के अलावा तथ्यात्मक रूप से यह सिद्ध करने के लिए अभिलेख पर कोई सामग्री नहीं ला पाए हैं कि स्कूल किसी भी प्रकार से कृत्यकारी, प्रशासनिक रूप से और वित्तीय रूप से सरकार के अधीन है । अभिलेख पर यही तथ्यात्मक प्रास्थिति है, अतएव, अब न्यायालय उन विनिश्चयों के बारे में विचार करता है जिनका पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल द्वारा अवलंब लिया गया है । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने इस प्रारम्भिक आक्षेप को कायम रखने

के बारे में दो विनिश्चयों का अवलंब लिया है । अनूप कुमार पांडे वाले मामले में दिया गया विनिश्चय जिनका अवलंब श्रीमती रजनी शर्मा वाले मामले में दिए गए विनिश्चय में लिया गया था । रजनी शर्मा वाले मामले में दिए गए विनिश्चय की संवीक्षा सेना स्कूल, कूड़ाघाट, गोरखपुर में की गई थी और खंड न्यायपीठ ने तारीख 16 अगस्त, 2004 के अपने निर्णय द्वारा उस विनिश्चय को उलट दिया था, यह अभिनिर्धारित करते हुए कि सेना कल्याण सोसाइटी और संस्था, जो इसका प्रबंध करती है, वह न्यायालय की रिट अधिकारिता के अधीन नहीं आती है क्योंकि सोसाइटी और संस्था संविधान, 1950 के अनुच्छेद 12 के अर्थान्तर्गत राज्य नहीं है । मामले में इस मत को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय की यह राय है कि अनूप कुमार पांडे वाले मामले में अधिकथित विधि कसौटी पर ठीक नहीं उतरती है । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यद्यपि आक्षेपित निर्णय में पूर्वोक्त खंड न्यायपीठ के निर्णय को नोटिस में लिया था फिर भी उसके विनिश्चयाधार पर विचार किए बिना और उसकी अन्तर्वस्तुओं पर चर्चा किए बिना ही यह अभिनिर्धारित किया कि यह तथ्यों पर विभेदनीय है । न्यायालय की राय में, यह सुज्ञात है कि यद्यपि दोनों मामले साधारणतया तथ्यों पर एक समान नहीं हैं फिर भी विनिश्चय के विनिश्चयाधार को अभिवाचित तथ्यों के प्रकाश में देखा जाना चाहिए और इसलिए, न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि विद्वान् एकल न्यायाधीश ने उनके विनिश्चयाधार को नोटिस में लिए बिना ही उक्त खंड न्यायपीठ के निर्णय को विभेदनीय बताते हुए, त्रुटि कारित की है । न्यायालय की राय में, उक्त विनिश्चय यह विधि अधिकथित किए बिना परिस्थितियों की परिकल्पित परीक्षा पर आधारित है कि क्या सोसाइटी, जो संस्था की देखभाल करती है, न्यायालय की रिट अधिकारिता के अधीन है । इस प्रश्न पर खंड न्यायपीठ द्वारा चर्चा की गई थी कि क्या यह स्कूल कायम रह सकेगा यदि सभी 'राज्य' और 'सरकार' भारत से समाप्त कर दिए जाएं और क्या यह राज्य के रूप में समझे जाने से प्राधिकारी को अपवर्जित करना अयुक्तियुक्त होगा । खंड न्यायपीठ ने इसके लिए यह निष्कर्ष निकाला और कारण दिया कि कर्मचारी, बोर्ड द्वारा संचालित स्कूल के विरुद्ध अवलंब नहीं ले सकते हैं यदि वह किसी कारण या अधिकारिता को समनुदेशित किए बिना इसका अवलंब लेता है । तद्नुसार, खंड न्यायपीठ ने यह उपधारणा की कि यह कर्मचारी के ऊपर कठोरता होगी और इसलिए, न्यायालय की राय में, सुविधा की दृष्टि यह है कि संस्था को रिट अधिकारिता के अधीन लाने के प्रश्न पर किसी विनिश्चयाधार का उल्लेख किए बिना मामले को ग्रहण किया गया है ।

न्यायालय की राय में, उक्त विनिश्चय विधि में अधिकथित किसी भी तरीके से नहीं दिया गया है क्योंकि यह पूर्णरूपेण प्रतिपादना है कि ऐसी सोसाइटी और संस्था जिसका प्रबंध इसके द्वारा किया जाता है, वह संविधान, 1950 के अनुच्छेद 12 के अर्थान्तर्गत एक राज्य है । यह विनिश्चय तारीख 11 सितम्बर, 2006 को किया गया था और न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि इस मामले में सेना स्कूल, गोरखपुर वाले मामले में विनिश्चय को नोटिस किए बिना स्वयं अपने तथ्यों पर कार्यवाही की गई थी जिसे पूर्व में 2004 में विनिश्चित और रिपोर्ट किया गया था । फिर भी, मामले का एक अन्य पहलू है जो उल्लेख किए जाने योग्य है कि इस न्यायालय की अधिकारिता का अवलंब लेने के लिए नागरिकों को गारंटी अधिकार मौजूद है । वह अधिकार कुछ विधियों या संविधान के किसी गारंटी के अधीन प्रवर्तनीय अधिकार है । प्रत्यर्थी-याची को उपलब्ध किसी ऐसे तर्क के अभाव में, न्यायालय प्रत्यर्थी-याची को इस रिट याचिका को कायम रखने के लिए मंजूर करने में असमर्थ है । न्यायालय जी. टेलीफिल्म्स लिमिटेड वाले मामले में उस प्रभाव के माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चयाधार से आबद्ध हैं । इस प्रकार, इसमें उपर्युक्त निकाले गए न्यायालय के निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी-याची संस्था का एक कर्मचारी है और तद्नुसार, किसी कानूनी नियमों के अभाव में अथवा किसी सरकारी या राज्य नियंत्रण के अभाव में प्रत्यर्थी-याची वर्तमान याचिका को कायम नहीं रख सकता है । (पैरा 9, 10, 11, 12 14, 18 और 19)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2006] 2006 (7) ए. डी. जे. 322 (डी. बी.) :
संजय कुमार शर्मा बनाम **केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड और अन्य** ; 3,8,13

[2005] 2005 (1) ई. एस. सी. 342 :
आर्मी स्कूल, गोरखपुर बनाम **श्रीमती शिल्पी पाल** ; 3,12,14

[2005] (2005) 4 एस. सी. सी. 649 :
जी. टेलीफिल्म्स लि. और एक अन्य बनाम **भारत संघ और अन्य** ; 6,15,17,18

[2005] 2005 (4) ई. एस. सी. 2265 :
एम. के. गांधी और अन्य बनाम **शिक्षा निदेशक (माध्यमिक), उत्तर प्रदेश, लखनऊ और अन्य** ; 20

[2003] (2003) 1 यू. पी. एल. बी. ई. सी. 186 :
अनूप कुमार पांडे बनाम **भारत संघ और अन्य** ; 3,8,12

[2003] (2003) 2 यू. पी. एल. बी. ई. सी. 336 :
डा. ए. के. गुप्ता बनाम **राजघाट शिक्षा केन्द्र** ; 3

[2002] (2002) 5 एस. सी. सी. 111 :
प्रदीप कुमार बिस्वास बनाम **इंडियन इंस्टीट्यूट आफ केमिकल बायोलाजी और अन्य** ; 6,15

[1999] 1999 (1) ई. एस. सी. 47 :
गिरीश कुमार मिश्रा बनाम **जिला विद्यालय निरीक्षक** ; 3

[1996] 1996 की रिट याचिका (सेवा) सं. 1415 :
श्रीमती आशा खोसा बनाम **चेयरमैन, आर्मी पब्लिक स्कूल और अन्य** ; 6

[1995] (1995) 3 यू. पी. एल. बी. ई. सी. 1664 :
श्रीमती रजनी शर्मा बनाम **भारत संघ और अन्य** ; 6

[1989] ए. आई. आर. 1989 एस. सी. 88 :
भारतीय सैनिक स्कूल कर्मचारी संगठन बनाम **रक्षा मंत्रालय-सह-अध्यक्ष** । 16

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2010 की विशेष अपील सं. 1074.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन विशेष अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री अजय भनोट

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री एस. शेखर और एम. के. तिवारी

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति फरदीनो इनासियो रिबैलो ने दिया ।

मु. न्या. रिबैलो – यह अपील वायु सेना स्कूल, बमरौली, जिला इलाहाबाद के प्रबन्धतंत्र की ओर से फाइल की गई है जिसमें विद्वान् एकल

न्यायाधीश द्वारा तारीख 13 जनवरी, 2010 को दिए गए निर्णय की सत्यता को प्रश्नगत किया गया है जिसके द्वारा संस्था, जिसमें प्रत्यर्थी-याची एक अध्यापक के रूप में कार्य कर रहा था, को इस न्यायालय की रिट अधिकारिता के अध्यधीन अभिनिर्धारित किया गया था और यह भी कि याचिका को तारीख 28 जून, 2007, तारीख 9 अगस्त, 2007 और तारीख 22 अगस्त, 2008 के आदेशों को अभिखंडित करते हुए, मंजूर कर लिया गया था । इन आदेशों को रिट याचिका लम्बित रहने के दौरान एक संशोधन द्वारा चुनौती दी गई थी । प्रत्यर्थी-याची की नियमित रूप से संविदात्मक नियुक्ति और पारिणामिक वेतन संदाय इस रिट याचिका की विषय-वस्तु थी ।

2. इसमें के अपीलार्थियों ने रिट याचिका को कायम रखने के लिए प्रारम्भिक आक्षेप किए इस आधार पर कि न तो संस्था न ही संस्था का प्रबंध करने वाली सोसाइटी इस न्यायालय की रिट अधिकारिता के अध्यधीन है क्योंकि यह संविधान, 1950 के अनुच्छेद 12 के अर्थान्तर्गत राज्य का तंत्र नहीं है । इस प्रारम्भिक आक्षेप का विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष फाइल प्रति-शपथपत्र के पैराग्राफ सं. 3, 4, 8 और 9 में प्रकथनों द्वारा खंडन किया गया । यह उत्तर रिट याचिका के पैराग्राफ सं. 5 और 6 में अन्तर्विष्ट प्रकथनों के जवाब में था, जहां यह अभिकथित किया गया था कि वायु सेना स्कूल सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 के अन्तर्गत रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी के अधीन स्थापित है और यह संविधान, 1950 के अनुच्छेद 12 के अधीन प्रयुक्त राज्य शब्द के अर्थान्तर्गत आने वाले वायु सेना स्कूल के शिक्षा संहिता द्वारा शासित है । प्रति-शपथपत्र में अन्तर्विष्ट प्रकथनों जिसमें प्रारम्भिक आक्षेप सम्मिलित थे, का उत्तर प्रत्यर्थी-याची द्वारा प्रत्युत्तर फाइल करते हुए दिया गया और अपीलार्थियों की ओर से उद्भूत दलीलों के खंडन में उक्त शपथपत्र में अभिलेख पर न तो कोई अभिवाक् किया गया न ही अभिलेख पर कोई तथ्य लाया गया है ।

3. विद्वान् एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका कायम रखने के बारे में उद्भूत प्रारम्भिक आक्षेप को **अनूप कुमार पांडे** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] तथा **संजय कुमार शर्मा** बनाम **केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड और अन्य**[2] वाले मामलों में दिए गए विनिश्चय का अवलंब लेते हुए, इनकार कर दिया । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने **आर्मी स्कूल, गोरखपुर** बनाम **श्रीमती**

---

[1] (2003) 1 यू. पी. एल. बी. ई. सी. 186.

[2] 2006 (7) ए. डी. जे. 322 (डी. बी.).

शिल्पी पाल[1], **गिरीश कुमार मिश्रा** बनाम **जिला विद्यालय निरीक्षक**[2] और **डा. ए. के. गुप्ता** बनाम **राजघाट शिक्षा केन्द्र**[3] वाले मामलों को भी निर्दिष्ट किया जिनका अवलंब अपीलार्थियों द्वारा लिया गया था । तथापि, उन्होंने इन विनिश्चयों को लागू किए जाने योग्य नहीं माना क्योंकि वे तथ्यों पर सुभिन्न थे ।

4. इसके पश्चात्, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने मामले के गुणागुणों पर भी विचार किया और रिट याचिका मंजूर कर ली थी ।

5. हमने अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री अजय भनोट और एकमात्र प्रत्यर्थी-याची के विद्वान् काउंसेल श्री एम. के. तिवारी को सुना ।

6. श्री भनोट ने अपनी दलील देते हुए यह तर्क दिया कि संस्था, जहां प्रत्यर्थी-याची नियोजित था, एक रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी द्वारा चलाई जा रही थी जो सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 के अधीन विरचित स्वयं अपने उप-विधियों द्वारा प्रवर्तित थी । सोसाइटी का मुख्य निकाय नई दिल्ली में स्थित था और संस्था को देश के सभी वायु सेना व्यक्तियों के प्रतिपाल्यों की शिक्षा और कल्याण के लिए स्थापित किया गया था । वर्तमान प्रश्नगत संस्था सेन्ट्रल एयर कमाण्ड, बमरौली, इलाहाबाद में स्थित है और उप-विधियों के अनुसार, वायु सेना में अपनी श्रेणी और प्रास्थिति के अनुसार अधिकारी शासकीय निकाय के पदेन सदस्य थे । यह निवेदन किया गया कि वे किसी शासकीय हैसियत में कार्य नहीं कर रहे थे और संस्था के प्रबंध निकाय के साधारण भाग थे । उन्होंने यह निवदेन किया कि इस संस्था पर किसी भी प्रकार का सरकारी नियंत्रण नहीं था और सोसाइटी द्वारा संस्था को चलाने और इसका प्रबंध करने के लिए सरकार से कोई भी निधि प्राप्त नहीं की जाती थी । सोसाइटी का स्वयं अपनी निधि और वित्तीय व्यवस्था थी, जिसे वे अधिकारियों द्वारा स्वैच्छिक अंशदान के रूप में कल्याण निधियों के माध्यम से प्राप्त करते थे अथवा छात्रों से शुल्क के रूप में उद्गृहीत करते थे । इसलिए, उन्होंने यह निवेदन किया कि राज्य का संस्था पर न तो कोई नियंत्रण था न ही कोई वित्तीय योगदान था जिससे कि सोसाइटी को संविधान, 1950 के अनुच्छेद 12 के अर्थान्तर्गत राज्य कहा जा सकता है । सारतः, उन्होंने यह निवेदन किया

---

[1] 2005 (1) ई. एस. सी. 342.

[2] 1999 (1) ई. एस. सी. 47.

[3] (2003) 2 यू. पी. एल. बी. ई. सी. 336.

कि राज्य का संस्था के ऊपर न तो कोई गंभीर या व्यापक नियंत्रण था और यहां तक कि संस्था द्वारा किए गए शिक्षा कार्य लोक कार्य था, जिससे कि स्वतः संस्था को इसके कर्मचारियों के विवाद के संबंध में इस न्यायालय की रिट अधिकारिता के अधीन नहीं किया जा सकता है । श्री भनोट ने कई विनिश्चयों का अवलंब लिया जिनकी संग्रह-सारणी हमारे समक्ष प्रस्तुत की गई है । किन्तु उन्होंने विशिष्टतः **आर्मी स्कूल, गोरखपुर** (उपर्युक्त) तथा **श्रीमती आशा खोसा** बनाम **चेयरमैन, आर्मी पब्लिक स्कूल और अन्य**[1], जिसका विनिश्चय जम्मू एण्ड कश्मीर उच्च न्यायालय के खंड न्यायपीठ द्वारा तारीख 17 फरवरी, 1997 को किया गया और **आशा खोसा** (उपर्युक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय के विरुद्ध विशेष इजाजत अपील में तारीख 31 मार्च, 1997 को माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए आदेश की ओर हमारा ध्यान दिलाया है । माननीय उच्चतम न्यायालय ने विशेष इजाजत याचिका खारिज कर दी थी और **आशा खोसा** (उपर्युक्त) वाले मामले के निर्णय को कायम रखा था । उन्होंने **जी. टेलीफिल्म्स लि. और एक अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य**[2] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय के पैराग्राफ 22 और 25 विशिष्टतः सपठित पैराग्राफ 28 और 29 की ओर भी हमारा ध्यान दिलाया है जिसमें **प्रदीप कुमार बिस्वास** बनाम **इंडियन इंस्टीट्यूट आफ केमिकल बायोलाजी और अन्य**[3] वाले मामले में संवैधानिक न्यायपीठ के विनिश्चय के प्रति निर्दिष्ट किया गया था । इन विनिश्चयों के आधार पर श्री भनोट ने यह दलील दी कि इन मामलों में अधिकथित परीक्षण का समाधान वर्तमान मामले में नहीं होता है और इसलिए, रिट याचिका कायम रखे जाने योग्य नहीं है । उन्होंने यह भी निवेदन किया कि विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा **अनूप कुमार पांडे** (उपर्युक्त) वाले मामले का अवलंब लिया गया था जिसे विवक्षित उलट दिया गया है, चूंकि उक्त विनिश्चय को **श्रीमती रजनी शर्मा** बनाम **भारत संघ और अन्य**[4] वाले मामले में अवलंब लिया गया था जिसे अभिव्यक्ततः **आर्मी स्कूल, गोरखपुर** (उपर्युक्त) वाले मामले में खंड न्यायपीठ द्वारा उलट दिया गया था ।

7. उनके निवेदन का द्वितीय भाग **संजय कुमार शर्मा** (उपर्युक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय के प्रति निर्देश है जिसका विद्वान् एकल

---

[1] 1996 की रिट याचिका (सेवा) सं. 1415.

[2] (2005) 4 एस. सी. सी. 649.

[3] (2002) 5 एस. सी. सी. 111.

[4] (1995) 3 यू. पी. एल. बी. ई. सी. 1664.

न्यायाधीश द्वारा रिट याचिका मंजूर करते हुए अवलंब लिया गया है । श्री भनोट ने उक्त विनिश्चय के पैराग्राफ 15 से 17 की ओर इस न्यायालय का ध्यान दिलाते हुए यह दलील दी है कि वह विनिश्चयाधार नहीं है और आबद्धकर नहीं है क्योंकि यह न्यायालय की रिट अधिकारिता में ऐसे सोसाइटी के अधीन विनिर्दिष्टतः उत्तर देने के लिए विधि अधिकथित नहीं करता है जो संविधान, 1950 के अनुच्छेद 12 में यथाअंतर्विष्ट राज्य की परिभाषा के अन्तर्गत आता हो ।

8. पूर्वोक्त निवेदनों का अवलंब लेते हुए, श्री एम. के. तिवारी ने यह दलील दी कि यह अभिकथित आधार कि संस्था संविधान, 1950 के अनुच्छेद 12 के अर्थान्तर्गत राज्य है, रिट याचिका में विशिष्टतः विनिश्चय के पैराग्राफ 5 से 7 में पहले ही अधिकथित किया जा चुका है और अपीलार्थियों-प्रत्यर्थियों के उत्तर किसी भी प्रकार से उसकी प्रास्थिति को कम नहीं कर सकता, इस प्रकार, विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा **अनूप कुमार पांडे** (उपर्युक्त) और **संजय कुमार शर्मा** (उपर्युक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का सही ही अवलंब लेते हुए यह निष्कर्ष निकाला गया है कि अपीलार्थी का प्रारम्भिक आक्षेप सुआधारित नहीं है । उन्होंने यह निवेदन किया कि जब एक बार वायु सेना के कर्मचारी संस्था के ऊपर नियंत्रण कर लेते हैं तो वे लोक कार्यकर्ता हो जाते हैं तो यह उपधारणा की जा सकती है कि यह अनन्य सरकारी नियंत्रण है । उन्होंने यह भी निवेदन किया कि इस संवैधानिक समादेश के बारे में कोई संदेह नहीं है कि शिक्षा प्रदान करना एक लोक कृत्य है जिसे अपीलार्थियों द्वारा किया जाता है और इसलिए, वे संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन इस न्यायालय की संवीक्षा से बच नहीं सकते हैं । उन्होंने यह भी निवेदन किया कि संस्था अपीलार्थियों के नियंत्रण में है और उसे उपलब्ध कराई गई निधियों की देखभाल संस्था द्वारा की जाती है, इसलिए यह स्कूल, संविधान, 1950 के अनुच्छेद 12 में यथाअंतर्विष्ट 'राज्य' शब्द की परिभाषा के भीतर आता है ।

9. हमने रिट याचिका कायम रखने के संबंध में इस प्रारम्भिक मुद्दे पर उद्भूत निवेदनों पर गंभीरतापूर्वक विचार किया । यथाअभिवाचित तथ्यों से यह अविवादित है कि प्रत्यर्थी-याची उस स्कूल का एक कर्मचारी है जो किसी कानूनी विनियमों द्वारा शासित नहीं है । सोसाइटी, जो संस्था का प्रबंध करती है, की स्वयं अपनी शिक्षा संहिता है जो इस प्रकार विरचित है जिसकी कोई कानूनी मंजूरी नहीं है । कम-से-कम, प्रत्यर्थी-याची के विद्वान् काउंसेल किसी ऐसे नियमों या विनियमों की मौजूदगी को इंगित करने में

असफल रहे हैं जिनकी कानूनी प्रकृति हो । संस्था, स्वीकृततः सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 के अधीन रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी के रूप में स्थापित है और यह स्वयं अपने उप-विधियों द्वारा शासित है । रिट याचिका में याची द्वारा किए गए तथ्यात्मक प्रकथनों से मात्र निम्नलिखित प्रभाव इंगित होते हैं :–

> "5. कि विभिन्न इकाईयों में वायु सेना स्कूल का प्रभावी प्रबंधन और प्रशासन के लिए सोसाइटी ने 'शिक्षा संहिता वायु सेना स्कूल, 2005' को विरचित किया है । पूर्वोक्त संहिता केन्द्रीय विद्यालयों के प्रबंधन के लिए विरचित शिक्षा संहिता के समान है ।
>
> 6. कि वायु सेना स्कूलों की भारतीय वायु सेना स्कूल के माध्यम से केन्द्रीय सरकार द्वारा वित्त व्यवस्था की जाती है, भारतीय वायु सेना के अधिकारियों द्वारा नियंत्रित की जाती है और इसका उद्देश्य भारतीय वायु सेना के अधिकारियों और कर्मचारियों के बच्चों को शिक्षा देना होता है । वायु सेना स्कूल, संविधान, 1950 के अनुच्छेद 12 के अधीन 'राज्य' शब्द के अर्थान्तर्गत आते हैं ।
>
> 7. कि वायु सेना स्कूल, बमरौली, इलाहाबाद पूर्वोक्त सोसाइटी द्वारा स्थापित एक स्कूल है और उक्त स्कूल संविधान, 1950 के अनुच्छेद 12 के अधीन 'राज्य' की परिभाषा के अधीन आता है ।"

10. इसके अलावा, रिट याचिका में यह उपदर्शित करने के लिए कुछ नहीं है कि स्कूल, किसी सरकारी आबंटित निधि के माध्यम से निधि प्राप्त करता है या सरकार के प्राधिकार के अधीन इसके प्रबंधतंत्र पर कोई नियंत्रण है । प्रबंधतंत्र, सोसाइटी के उप-विधियों के अधीन अधिकारियों को न्यस्त है । इस प्रकृति का नियंत्रण एक प्रशासनिक नियंत्रण है और इसे सरकार द्वारा नियंत्रण के रूप में नहीं समझा जा सकता है । किसी अन्य चीज के अभाव में, या तो तथ्यतः या वैधतः यह निर्वचन करना संभव नहीं होगा कि संस्था के ऊपर सरकार का कम-से-कम गंभीर और व्यापक नियंत्रण है । जहां तक वित्त व्यवस्था का संबंध है, अपीलार्थी-प्रत्यर्थी ने अपने प्रति-शपथपत्र में सुस्पष्टतः यह कथन किया है कि न तो कोई कल्याण निधि है जो अधिकारियों द्वारा स्वैच्छिक अंशदान के रूप में है वह सरकार द्वारा आबंटित निधि है न ही केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार किसी भी प्रकार से संस्था को ऐसी कोई वित्तीय सहायता देती है । यह भी प्रकथन किया गया है कि वित्तीय व्यवस्था को विभिन्न शीर्षों के अधीन

छात्रों से एकत्रित शुल्कों से प्रबंध किए जाते हैं और उन्हें वायु सेना के कर्मचारियों के अंशदान द्वारा अनुपूरक रूप में लिए जाते हैं जो कि स्वैच्छिक प्रकृति की होती है । यह भी सुस्पष्टतः कथित है कि उप-विधियों अर्थात् शिक्षा संहिता वायु सेना स्कूल, 2005 जो प्रत्यर्थी-याची की सेवा के निबंधनों और शर्तों को शासित करते हैं न तो कानूनी है और न ही उन पर कोई राज्य नियंत्रण उपदर्शित होता है ।

11. याची द्वारा अपीलार्थियों की ओर से उक्त शपथपत्र का प्रत्युत्तर शपथपत्र फाइल किया गया और प्रति-शपथपत्र में किए गए पूर्वोक्त विनिर्दिष्ट और सुस्पष्ट प्रकथनों के बारे में न तो इनकार किया गया अथवा न ही कोई सामग्री प्रस्तुत की गई है । इसलिए, प्रत्यर्थी-याची रिट याचिका में तत्व रहित प्रकथनों के अलावा तथ्यात्मक रूप से यह सिद्ध करने के लिए अभिलेख पर कोई सामग्री नहीं ला पाए हैं कि स्कूल किसी भी प्रकार से कृत्यकारी, प्रशासनिक रूप से और वित्तीय रूप से सरकार के अधीन है । अभिलेख पर यही तथ्यात्मक प्रास्थिति है, अतएव, अब हम उन विनिश्चयों के बारे में विचार करते हैं जिनका पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल द्वारा अवलंब लिया गया है ।

12. विद्वान् एकल न्यायाधीश ने इस प्रारम्भिक आक्षेप को कायम रखने के बारे में दो विनिश्चयों का अवलंब लिया है । **अनूप कुमार पांडे** (उपर्युक्त) वाले मामले में दिया गया विनिश्चय जिनका अवलंब **श्रीमती रजनी शर्मा** (उपर्युक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय में लिया गया था । **श्रीमती रजनी शर्मा** (उपर्युक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय की संवीक्षा **आर्मी स्कूल, गोरखपुर** (उपर्युक्त) में की गई थी और खंड न्यायपीठ ने तारीख 16 अगस्त, 2004 के अपने निर्णय द्वारा उस विनिश्चय को उलट दिया था, यह अभिनिर्धारित करते हुए कि सेना कल्याण सोसाइटी और संस्था, जो इसका प्रबंध करती है, वह न्यायालय की रिट अधिकारिता के अधीन नहीं आती हैं क्योंकि सोसाइटी और संस्था संविधान, 1950 के अनुच्छेद 12 के अर्थान्तर्गत राज्य नहीं है । मामले में इस मत को ध्यान में रखते हुए, हमारी यह राय है कि **अनूप कुमार पांडे** (उपर्युक्त) वाले मामले में अधिकथित विधि कसौटी पर ठीक नहीं उतरती है । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यद्यपि आक्षेपित निर्णय में पूर्वोक्त खंड न्यायपीठ के निर्णय को नोटिस में लिया था फिर भी उसके विनिश्चयाधार पर विचार किए बिना और उसकी अन्तर्वस्तुओं पर चर्चा किए बिना ही यह अभिनिर्धारित किया कि यह तथ्यों पर विभेदनीय है । हमारी राय में, यह सुज्ञात है कि यद्यपि

दोनों मामले साधारणतया तथ्यों पर एक समान नहीं हैं फिर भी विनिश्चय के विनिश्चयाधार को अभिवाचित तथ्यों के प्रकाश में देखा जाना चाहिए और इसलिए, हमारा यह निष्कर्ष है कि विद्वान् एकल न्यायाधीश ने उनके विनिश्चयाधार को नोटिस में लिए बिना ही उक्त खंड न्यायपीठ के निर्णय को विभेदनीय बताते हुए, त्रुटि कारित की है ।

13. विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा **संजय कुमार शर्मा** (उपर्युक्त) वाले मामले में अवलंब लिया गया द्वितीय विनिश्चय, वायु सेना स्कूल, बमरौली के प्रधानाचार्य के विवादित पद से संबंधित उद्‌भूत हुआ है जो हमारे समक्ष अपीलार्थी है और इसलिए, उक्त विनिश्चय प्रत्यक्षतः विवादित है । हम निर्देश के लिए उसके पैराग्राफ 11 से 17 को उद्धृत कर सकते हैं :–

> "11. प्रत्यर्थियों की ओर से मुद्‌दों में से एक मुद्‌दे पर अत्यधिक बल दिया गया कि रिट याचिका कायम रखे जाने योग्य नहीं है क्योंकि स्कूल अनुच्छेद 12 के अधीन प्राधिकारी नहीं है । यह कथित है कि स्कूल तारीख 25 सितम्बर, 1980 को रजिस्ट्रीकृत एक सोसाइटी द्वारा चलाया जा रहा है और यह कि उसकी निधियां आधारभूत तौर पर संदत्त शुल्कों और वायु सेना कर्मचारियों के अंशदानों द्वारा प्राप्त होती हैं और राज्य सहायता के रूप में अधिकथित तौर पर एक रुपया भी नहीं मिलता है ।
>
> 12. हमारे समक्ष प्रस्तुत शिक्षा संहिता, जिसे भारतीय वायु सेना शिक्षा और सांस्कृतिक सोसाइटी के शासकीय परिषद् के अध्यक्ष द्वारा विरचित किया गया है, उसके मुख्य पृष्ठ पर भारतीय वायु सेना का प्रतीत चिह्न है । उक्त पुस्तक के अध्याय 8 के नियम 9 में यह उल्लिखित है कि किस प्रकार वित्त प्राप्त किए जाते हैं ; सहायता अनुदान के साथ ही साथ अन्य सेवा संस्था निधियों से अन्तर्संबंध उल्लिखित है ।
>
> 13. विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री विजय बहादुर सिंह ने इस संबंध में माननीय उच्चतम न्यायालय के विभिन्न मामलों का अवलंब लिया । यह सुज्ञात है कि इस बात पर विचार करने के लिए 3 महत्वपूर्ण कारक हैं कि क्या कोई प्राधिकारी अनुच्छेद 12 के अधीन प्राधिकारी है या नहीं – (i) वित्त, (ii) नियंत्रण और (iii) संस्था का प्रयोजन । राज्य का वित्तीय सहायता देने का झुकाव अनुच्छेद 12 के अधीन आने वाली संस्थाओं के प्रति होता है, इसलिए, यदि इस प्रकार

राज्य का नियंत्रण होता है, इस प्रकार लोक प्रयोजन होता है तो कह सकते हैं कि इसके क्रियाकलाप के परिणामस्वरूप शिक्षा दी जाती है ।

14. इसे देखने के लिए अन्य संभाव्य तरीकों में से एक यह है कि सभी राज्य के क्रियाकलापों में से एक के विवेक में कल्पित हटाए जाने की कल्पना की गई होगी और यह देखना होता है कि क्या संस्था ऐसे हटाए जाने को कायम रखती है । उदाहरण के रूप में, आई. टी. सी. निश्चित तौर पर कायम रहेंगी और यह निश्चित तौर पर अनुच्छेद 12 के अधीन एक प्राधिकारी नहीं है । किन्तु वे मामले जो न्यायालय के समक्ष आते हैं इतने साधारण नहीं होते हैं और प्रत्येक मामले में सभी तथ्यों और परिस्थितियों की परीक्षा की जानी होती है । यह भी एक सुस्थिर विधि है । क्या यह स्कूल कायम रह सकता है यदि सभी 'राज्य' और 'सरकार' भारत से समाप्त कर दिए जाएं ? यह प्रश्न है जिसका उत्तर खोजना है ।

15. फिर भी, यह विनिश्चित करने में एक अन्य सहायता यह हो सकती है कि क्या प्राधिकारी अनुच्छेद 12 के अधीन एक प्राधिकारी है या नहीं, अपने आप में प्रश्न यह उठता है कि क्या इसे राज्य के स्तर पर युक्तियुक्त रूप से एक प्राधिकारी समझा जा सकता है । इसमें एकरूपता नहीं है किन्तु इसी के समान प्रश्न यह है कि क्या इसे राज्य के रूप में समझे जाने से अयुक्तियुक्त रूप से प्राधिकारी होने से अपवर्जित किया जाएगा ।

16. यदि स्कूल रिट संवीक्षा के अध्यधीन अनुच्छेद 12 के अधीन एक प्राधिकारी नहीं है तो उस दशा में भावी कर्मचारी जैसा कि अपीलार्थी है वह स्कूल या बोर्ड के विरुद्ध अवलंब नहीं ले सकता है यदि वह किसी भी प्रकार से कोई कारण या न्यायोचितता समनुदेशित किए बिना इसे साधारणतया लेना चाहता है यद्यपि कोई विज्ञापन जारी नहीं किया गया है, यदि वैयक्तिक पसंद के कारणों में से सूची में 20वां कारण दिया गया है जिसे प्रथम कारण के रूप में दिया गया है । वह वाद फाइल करने के लिए समर्थ नहीं होगा क्योंकि उसका कोई संविदात्मक या अन्य संबंध नहीं है और वह सोसाइटी का भी सदस्य नहीं है । वह अवलंब नहीं ले सकता है क्योंकि वह अवलंब लेने का अधिकारी नहीं है, यदि कोई व्यक्ति आई. टी. सी. के एक छोटे से विभाग के प्रबंधक के रूप में चयनित होता है । यह न्यायालय

के लिए परीक्षा के अधीन होता है कि क्या इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में युक्तियुक्त दृष्टिकोण अपनाया गया है ।

17. सुविधा की पुष्टि से, हमारे समक्ष यह स्पष्ट प्रकट होता है कि अपीलार्थी के दोनों अपीलों में तर्क योग्य पक्षकथन हैं । यद्यपि कारण बताओ नोटिस इसे जारी करने के दो माह पश्चात् उद्भूत होता है फिर भी इसे इस तथ्य के विचार से अपवर्जित नहीं किया जा सकता कि एक आलसी व्यक्ति, निर्णयज विधियों के साथ तैयारी करने और इसे न्यायालय में फाइल करने के लिए अधिक समय ले सकता है । कुछ किए जाने के पूर्व, हटाए जाने का आदेश भी आता है । यह प्रथमतः विचार में लिया जाना चाहिए कि हटाए जाने के आदेश के विरुद्ध रिट निष्फल भी हो सकता है किन्तु उसके बाद यह प्रतीत होता है कि स्वयं न्यायालय द्वारा यह प्रश्न किए जा सकते हैं कि यदि कारण बताओ नोटिस सुश्री कौल की नियुक्ति आदेश के साथ जटिलतः जुड़ी हुई है और यह भी कि यदि दुर्भावना का आधार अच्छा है तो कारण बताओ नोटिस पर निर्भर करने वाली प्रत्येक चीजें इसके साथ अभिखंडित कर दी जाएंगी ।"

14. हमारी राय में, उक्त विनिश्चय यह विधि अधिकथित किए बिना परिस्थितियों की परिकल्पित परीक्षा पर आधारित है कि क्या सोसाइटी, जो संस्था की देखभाल करती है, न्यायालय की रिट अधिकारिता के अधीन है । इस प्रश्न पर खंड न्यायपीठ द्वारा चर्चा की गई थी कि क्या यह स्कूल कायम रह सकेगा यदि सभी 'राज्य' और 'सरकार' भारत से समाप्त कर दिए जाएं और क्या यह राज्य के रूप में समझे जाने से प्राधिकारी को अपवर्जित करना अयुक्तियुक्त होगा । खंड न्यायपीठ ने इसके लिए यह निष्कर्ष निकाला और कारण दिया कि कर्मचारी, बोर्ड द्वारा संचालित स्कूल के विरुद्ध अवलंब नहीं ले सकते हैं यदि वह किसी कारण या अधिकारिता को समनुदेशित किए बिना इसका अवलंब लेता है । तद्नुसार, खंड न्यायपीठ ने यह उपधारणा की कि यह कर्मचारी के ऊपर कठोरता होगी और इसलिए, हमारी राय में, सुविधा की दृष्टि यह है कि संस्था को रिट अधिकारिता के अधीन लाने के प्रश्न पर किसी विनिश्चयाधार का उल्लेख किए बिना मामले को ग्रहण किया गया है । हमारी राय में, उक्त विनिश्चय पूर्णरूपेण प्रतिपादना के रूप में ऐसी विधि अधिकथित नहीं करता है कि ऐसी सोसाइटी और संस्था जिसका प्रबंध इसके द्वारा किया जाता है, वह संविधान, 1950 के अनुच्छेद 12 के अर्थान्तर्गत एक राज्य है । यह विनिश्चय तारीख

11 सितम्बर, 2006 को किया गया था और हमारा यह निष्कर्ष है कि इस मामले में **आर्मी स्कूल, गोरखपुर** (उपर्युक्त) वाले मामले में विनिश्चय को नोटिस किए बिना स्वयं अपने तथ्यों पर कार्यवाही की गई थी जिसे पूर्व में 2004 में विनिश्चित और रिपोर्ट किया गया था ।

15. इस मामले में, विधिक प्रास्थिति का, **प्रदीप कुमार बिस्वास** बनाम **इंडियन इंस्टीट्यूट आफ केमिकल बायलोजी और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चयाधार को ध्यान में रखते हुए, इस मामले के तथ्यों पर निष्कर्ष निकाला गया था । इसे **जी. टेलीफिल्म्स लिमिटेड** (उपर्युक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय के पैराग्राफ सं. 22 में अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया है । वस्तुतः, हमारा यह निष्कर्ष है कि यह वर्णित करने के लिए अभिलेख पर कोई सामग्री नहीं थी कि संस्था, सरकार द्वारा किसी भी तरीके से कृत्यकारी, वित्तीय या प्रशासनिक तौर पर शासित या नियंत्रित थी । बेहतर रूप से, स्कूल स्थापित करने के लिए परिसरों को उपलब्ध कराने में उसका सीमित अंशदान हो सकता है किन्तु यह उपदर्शित करने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि स्कूल को सरकारी निधियों द्वारा स्थापित किया गया है ।

16. प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने **भारतीय सैनिक स्कूल कर्मचारी संगठन** बनाम **रक्षा मंत्रालय-सह-अध्यक्ष**[2] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का अवलंब लेते हुए यह दलील दी कि ऐसे कल्याणकारी स्कूल रक्षा मंत्रालय द्वारा स्थापित किए जाते हैं और जिसका प्रबंध, सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 के अधीन रजिस्ट्रीकृत निकाय द्वारा किया जाता है तो उसे संविधान, 1950 के अनुच्छेद 12 के अर्थान्तर्गत राज्य अभिनिर्धारित किया गया है । हमने उक्त विनिश्चय का ध्यानपूर्वक परिशीलन किया और हमारा यह निष्कर्ष है कि उस मामले में, सैनिक स्कूल स्थापित करने के लिए रक्षा मंत्रालय द्वारा सरकारी नियंत्रण और सारवान् निधियों के बारे में विनिर्दिष्ट अभिवचन किए गए थे । इसलिए, वस्तुतः हमारा यह निष्कर्ष है कि राज्य अपने वित्तीय अन्तर्ग्रस्तता और प्रशासनिक नियंत्रण के माध्यम से गहरा और प्रभावी नियंत्रण रखता था और इसलिए माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि

---

[1] (2002) 5 एस. सी. सी. 111.

[2] ए. आई. आर. 1989 एस. सी. 88.

इसके क्रियाकलाप के बारे में सरकारी नियंत्रण की सहायता से लोक कृत्य होने के नाते इसके संबंध में कोई विवाद रिट अधिकारिता के अधीन होंगे । उक्त विनिश्चय के तथ्यों के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया कि सोसाइटी, संविधान, 1950 के अनुच्छेद 12 के अर्थान्तर्गत एक राज्य है । इसलिए, पूर्वोक्त मामला वर्तमान मामले के तथ्यों पर स्पष्टतः विभेदनीय हैं जो यह निष्कर्ष निकालने के लिए कुछ भी सिद्ध नहीं करती है कि अपीलार्थी संविधान, 1950 के अनुच्छेद 12 के अधीन यथा वर्णित राज्य की परिभाषा के भीतर आते हैं ।

17. कार्य की प्रकृति के प्रश्न पर विचार करते समय **जी. टेलीफिल्म्स लिमिटेड** (उपर्युक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय के पैराग्राफ सं. 25 से 29 को उद्धृत करना पर्याप्त होगा, जो यहां नीचे प्रस्तुत है :–

> "25. बहस के दृष्टिकोण से यह मान भी लें कि कुछ कृत्य लोक कर्तव्यों या राज्य के कार्यों की प्रकृति के हैं तथापि, चूंकि वे बोर्ड के क्रियाकलापों के बहुत सीमित क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं, इसलिए **प्रदीप कुमार बिस्वास** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित मापदंडों के अंतर्गत नहीं आते । यदि हम अन्यथा भी मान लें कि बोर्ड के कृत्यों के निर्वहन में लोक कर्तव्य का कुछ तत्व अंतर्वलित है, तो भी **प्रदीप कुमार बिस्वास** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के अनुसार भी यह स्वयं में बोर्ड को अनुच्छेद 12 के प्रयोजन के लिए 'अन्य प्राधिकारी' के अर्थान्तर्गत लाए जाने के लिए पर्याप्त नहीं होगा ।
>
> 26. तथापि, याचियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि बोर्ड के क्रियाकलापों के कुछ ऐसे तथ्य हैं जिन पर वस्तुतः पूर्ववर्ती किसी भी मामले में, जिनमें **प्रदीप कुमार बिस्वास** (उपर्युक्त) वाला मामला भी है, विचार नहीं किया गया था और यदि उन तथ्यों पर विचार किया जाता है तो उनसे स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि बोर्ड राज्य का एक परिकरण है । इस तर्कणा के समर्थन में विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि वर्तमान के संदर्भ में क्रिकेट एक वृत्ति (पेशा) बन गया है और यह कि क्रिकेटरों को क्रिकेटर के रूप में अपने पेशे को चलाने का मूल अधिकार अनुच्छेद 19(1)(छ) के अन्तर्गत प्राप्त है । यह दलील भी दी गई कि बोर्ड नागरिक के उक्त अधिकारों को अपने नियमों और विनियमों द्वारा नियंत्रित करता है और चूंकि ऐसा कोई विनियमन केवल राज्य द्वारा

किया जा सकता है, इसलिए बोर्ड को अवश्यमेव ही राज्य के उपकरण के रूप में माना जाना चाहिए । यह भी बताया गया कि अपने संगम-ज्ञापन और नियमों तथा विनियमों के अधीन और क्रिकेट के खेल पर अपने एकाधिकार संबंधी नियंत्रण के कारण बोर्ड को किसी व्यक्ति के क्रिकेट के पेशे को नियंत्रित करने की अत्यंत व्यापक शक्तियां प्राप्त हैं क्योंकि उसको (बोर्ड को) किसी विशिष्ट क्रिकेट संघ में उसकी सदस्यता और उससे संबद्ध होने के बारे में विनिश्चय करने का एकल प्राधिकार प्राप्त है जो कि उसके भारत में और विदेश में किसी भी स्तर पर क्रिकेट खेलने के अधिकार को प्रभावित करता है ।

27. यदि मान भी लें कि ये तथ्य सही हैं, तो प्रश्न यह उद्‌भूत होता है कि क्या बोर्ड को अनुच्छेद 12 के प्रयोजनार्थ राज्य अभिनिर्धारित करना पर्याप्त होगा ?

28. इसमें कोई संदेह नहीं है कि अनुच्छेद 19(1)(छ) सभी नागरिकों को कोई वृत्ति करने या कोई व्यापार उपजीविका या कारबार करने के मूल अधिकार को प्रत्याभूत करता है और यह कि ऐसे किसी अधिकार को केवल राज्य द्वारा अनुच्छेद 19(6) के आधार पर विनियमित किया जा सकता है । इसलिए, यह तर्कसंगत परिणाम निकलता है कि इस अधिकार के किसी भी प्रकार के अतिक्रमण के संबंध में दावा केवल राज्य के विरुद्ध और अनुच्छेद 17 या 21 के अधीन अधिकारों से भिन्न किया जा सकेगा जो गैर राज्य कर्ताओं के विरुद्ध दावा कर सकते हैं जिसमें अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन प्रत्याभूत वैयक्तिक अधिकार का दावा सम्मिलित है, किसी व्यक्ति या किसी गैर-राज्यिक सत्ता के विरुद्ध नहीं किया जा सकता है । अतः इस प्रकार की दलील देने को कि ऐसी प्रत्येक सत्ता, जो विधिमान्य रूप से या अविधिमान्य रूप से विनियमित करने के अधिकार को अनाधिकारपूर्वक अपनाती है या उस प्रयोजन से अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन नागरिक के मूल अधिकार को विनियमित करना आरम्भ कर देती है, अनुच्छेद 12 के अर्थान्तर्गत राज्य है, उलटी गंगा बहाना अर्थात् कार्य को कारण बताना कहा जाएगा । यदि ऐसे तर्क को लागू किया जाता है तो प्रत्येक नियोजन को जो भी उस रीति को विनियमित करता है जिसमें कि उसका कर्मचारी कार्य करता है, राज्य के रूप में मानना होगा । अनुच्छेद 32 के अधीन किसी मूल अधिकार

को प्रवर्तित करने का अवलंब लेने की पूर्व अपेक्षा यह है कि उस अधिकार का अतिक्रमण करने वाला सर्वप्रथम राज्य होना चाहिए । अतः, यदि याची के विद्वान् काउंसेल की इस दलील को स्वीकार कर लिया जाता है तो सर्वप्रथम याची को यह सिद्ध करना होगा कि बोर्ड अनुच्छेद 12 के अधीन राज्य है और वह याची के मूल अधिकारों का अतिक्रमण कर रहा है । जब तक कि यह नहीं किया जाता है, याची यह अभिकथन नहीं कर सकता है कि बोर्ड ने मूल अधिकारों का अतिक्रमण किया है और इसलिए वह अनुच्छेद 12 के अर्थान्तर्गत राज्य है । अनुच्छेद 32 के अधीन की गई इस याचिका में हम यह पहले ही अभिनिर्धारित कर चुके हैं कि याची यह सिद्ध करने में असफल रहा है कि बोर्ड अनुच्छेद 12 के अर्थान्तर्गत राज्य है । इसलिए, यह मानने से अर्थात् उपधारणा करने से कि बोर्ड द्वारा किसी मूल अधिकार का अतिक्रमण किया गया है, बोर्ड, अनुच्छेद 12 के प्रयोजनार्थ 'राज्य' नहीं बन जाएगा ।

29. तत्पश्चात्, यह दलील दी गई कि बोर्ड ऐसे लोक कर्तव्यों का निर्वहन करता है, जो राज्य के कृत्यों की प्रकृति के हैं । इस दलील पर बल देते हुए यह बताया गया कि बोर्ड अन्तरराष्ट्रीय मैचों में भारत का प्रतिनिधित्व करने के लिए टीम का चयन करता है । बोर्ड उन नियमों को बनाता है जो क्रिकेट के क्रियाकलापों में आलिप्त क्रिकेट खिलाड़ियों, अम्पायरों और अन्य व्यक्तियों के क्रियाकलापों को शासित करते हैं । याची के अनुसार ये सभी कार्य राज्य के कृत्यों की प्रकृति के हैं और यह सत्ता, जो ऐसे कृत्यों का निर्वहन करती है, राज्य का केवल परिकरण ही हो सकती है, इसलिए, बोर्ड अनुच्छेद 12 के प्रयोजनार्थ राज्य की परिभाषा के अंतर्गत आता है । यह मानते हुए कि बोर्ड के ऊपरवर्णित कृत्य लोक कर्तव्यों या राज्य के कृत्यों की कोटि में आते हैं, हमारे समक्ष विचारार्थ प्रश्न यह है : क्या यह अनुच्छेद 12 के प्रयोजनार्थ बोर्ड को राज्य अभिनिर्धारित करने के लिए पर्याप्त होगा । याची की दलील के इस पहलू पर विचार करते हुए यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि राज्य/संघ ने इन कर्तव्यों का पालन करने के लिए बोर्ड को नहीं चुना है और न ही उसने (राज्य/संघ ने) किसी विधि या करार के अधीन इन कृत्यों को करने के लिए बोर्ड को विधिक रूप से प्राधिकृत किया है । उसने (राज्य/संघ ने) क्रिकेट के क्रियाकलापों को ऐसे निकायों में से, जो

अपनी इच्छा से बढ़-चढ़कर कार्य करते हैं, प्राइवेट निकायों द्वारा नियंत्रित किए जाने के लिए छोड़ दिया है । इन परिस्थितियों में, जब बोर्ड की कार्रवाइयां राज्य के प्राधिकृत प्रतिनिधि के रूप में की गई कार्रवाइयां नहीं हैं, तो क्या यह कहा जा सकता है कि बोर्ड राज्य के कृत्यों का निर्वहन कर रहा है ? इसका उत्तर 'नहीं' ही होना चाहिए । किसी प्राधिकार के अभाव में, यदि कोई प्राइवेट निकाय ऐसे किसी कृत्य का निर्वहन करने का विकल्प अपनाता है, जो विधि द्वारा प्रतिषिद्ध नहीं है तब यह अभिनिर्धारित करना गलत होगा कि उस निकाय की यह कार्रवाई उसे राज्य का परिकरण बना देगी । भारत संघ ने यह पक्ष रखने का प्रयास किया है कि बोर्ड इन कृत्यों का निर्वहन उसके (भारत संघ) द्वारा विरचित दिशानिर्देश सिद्धांतों के अधीन उसके द्वारा बोर्ड को वस्तुतः प्रदान की गई मान्यता के कारण करता है किन्तु बोर्ड ने इसका प्रत्याख्यान किया है । इस संबंध में, हमें यह अवश्य ही अभिनिर्धारित करना चाहिए कि भारत संघ यह साबित करने में असफल रहा है कि भारत संघ द्वारा विरचित दिशानिर्देश सिद्धांतों के अधीन उसको भारत संघ द्वारा कोई मान्यता प्रदान की गई है और यह कि बोर्ड इन कृत्यों का निर्वहन एक स्वायत्त निकाय के रूप में अपने स्वयं के आधार पर कर रहा है ।"

18. फिर भी, मामले का एक अन्य पहलू है जो उल्लेख किए जाने योग्य है कि इस न्यायालय की अधिकारिता का अवलंब लेने के लिए नागरिकों को गारंटी अधिकार मौजूद है । वह अधिकार कुछ विधियों या संविधान के किसी गारंटी के अधीन प्रवर्तनीय अधिकार है । प्रत्यर्थी-याची को उपलब्ध किसी ऐसे तर्क के अभाव में, हम प्रत्यर्थी-याची को इस रिट याचिका को कायम रखने के लिए मंजूर करने में असमर्थ हैं । हम **जी. टेलीफिल्स लिमिटेड** (उपर्युक्त) (पैराग्राफ 28) वाले मामले में उस प्रभाव के माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चयाधार से आबद्ध हैं ।

19. इस प्रकार, इसमें उपर्युक्त निकाले गए हमारे निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी-याची संस्था का एक कर्मचारी है और तद्नुसार, किसी कानूनी नियमों के अभाव में अथवा किसी सरकारी या राज्य नियंत्रण के अभाव में प्रत्यर्थी-याची वर्तमान याचिका को कायम नहीं रख सकता है ।

20. हम, यह भी जोड़ सकते हैं कि सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 के अधीन भी स्थापित प्राइवेट संस्थाओं के मामले में

विवाद्यक उद्भूत हुआ था और **एम. के. गांधी और अन्य** बनाम **शिक्षा निदेशक (माध्यमिक), उत्तर प्रदेश, लखनऊ और अन्य**[1] वाले मामले में हमारे न्यायालय के पूर्ण न्यायपीठ के विनिश्चय द्वारा उत्तर दिया गया था । पूर्ण न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया था कि प्राइवेट स्कूल के विरुद्ध रिट फाइल नहीं हो सकती है किन्तु यह भी मत व्यक्त किया कि चूंकि संस्था केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा मान्यताप्राप्त थी इसलिए, उक्त बोर्ड ने संस्था के अध्यापकों की सेवा समाप्ति से संबंधित विवाद्यक के बारे में कार्रवाई लेने का निर्देश दिया था । मामला माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष लाया गया और माननीय उच्चतम न्यायालय ने 2007 की सिविल अपील सं. 339 में तारीख 14 अगस्त, 2007 के निर्णय द्वारा निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

> "कि सभी प्रत्यर्थी डी. पी. एस. स्कूल, गाजियाबाद में अध्यापक थे । उनकी सेवाएं समाप्त कर दी गई थीं । इसलिए, उन्होंने सेवा समाप्ति के आदेश को अपास्त करने कि लिए उच्च न्यायालय, इलाहाबाद के समक्ष रिट याचिका फाइल की । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने मामले को इस प्रश्न पर बृहत्तर न्यायपीठ के समक्ष निर्दिष्ट कर दिया कि क्या प्राइवेट स्कूल के विरुद्ध रिट याचिका कायम रखे जाने योग्य है या नहीं, क्योंकि उस उच्च न्यायालय की राय में विरोधाभास थे । तत्पश्चात्, मामले को बृहत्तर न्यायपीठ के समक्ष निर्दिष्ट किया गया और बृहत्तर न्यायपीठ ने पक्षकारों की सुनवाई करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि प्राइवेट स्कूल के विरुद्ध कोई रिट याचिका ग्राह्य नहीं होगी क्योंकि यह संविधान, 1950 के अनुच्छेद 12 के अर्थान्तर्गत 'राज्य' नहीं है । यह अभिनिर्धारित करते हुए कि रिट याचिका प्राइवेट निकाय के विरुद्ध कायम रखे जाने योग्य नहीं है उन्होंने इसमें उपर्युक्त रूप से कार्रवाई करने के लिए सी. बी. एस. ई. को निर्देश दिया । उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ के प्रति ससम्मान हम उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा दिए गए निर्देश को समझने में असमर्थ हैं । हमारी राय में, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा सी. बी. एस. ई. को दिया गया निर्देश पूर्णतया भ्रांतिपूर्ण और अनावश्यक है । जब उच्च न्यायालय, इलाहाबाद यह पहले ही अभिनिर्धारित कर चुका है कि डी. पी. एस. स्कूल, संविधान, 1950 के अनुच्छेद 12 के अर्थान्तर्गत आता

---

[1] 2005 (4) ई. एस. सी. 2265.

है और रिट याचिका कायम रखे जाने योग्य नहीं है तो सी. बी. एस. ई. को निर्देश देने की कोई आवश्यकता नहीं थी जो वस्तुतः उन अध्यापकों के पक्ष में घोषणा मंजूर करने की कोटि में आता है जिनकी सेवाएं समाप्त कर दी गई हैं । हम, डी. पी. एस. और अध्यापकों के बीच प्राइवेट विवाद्यकों के लिए सी. बी. एस. ई. को अन्तर्ग्रस्त करते हुए, अनावश्यक रूप से विवाद्यक को जटिल बनाते हुए उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा अपनाए गए मत की विवेचना करने में असमर्थ हैं । उच्च न्यायालय, इलाहाबाद को यह अभिनिर्धारित करना चाहिए कि उक्त डी. पी. एस. एक प्राइवेट निकाय है और रिट याचिका कायम रखे जाने योग्य नहीं है । अतएव, हमारा यह मत है कि प्राइवेट स्कूल के विरुद्ध कोई रिट याचिका कायम रखे जाने योग्य नहीं है क्योंकि यह संविधान, 1950 के अनुच्छेद 12 के अर्थान्तर्गत 'राज्य' नहीं है और उच्च न्यायालय द्वारा अध्यापकों के कृत्यों में हस्तक्षेप करने के लिए सी. बी. एस. ई. को कोई निर्देश नहीं दिया जा सकता है । अध्यापकों के लिए समुचित उपचार क्षतिपूर्ति के लिए सिविल वाद फाइल करना है, यदि कोई हो । तत्पश्चात्, हम यह अपील मंजूर करते हैं और उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा बोर्ड को निर्देश देने की सीमा तक, पारित आदेश को अपास्त करते हैं । खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाएगा ।"

21. तद्नुसार, इसमें उपर्युक्त दिए गए कारणों से, हमारा यह निष्कर्ष है कि विद्वान् एकल न्यायाधीश ने प्रारम्भिक आक्षेप को मंजूर नहीं करने में त्रुटि कारित की है और हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि रिट याचिका कायम रखे जाने योग्य है ।

22. ऐसी परिस्थिति में, विद्वान् एकल न्यायाधीश के लिए अपीलार्थियों के आक्षेपित कार्रवाई के गुणागुणों में हस्तक्षेप करने का कोई अवसर नहीं था और इस आधार पर रिट याचिका खारिज कर दी जानी चाहिए थी ।

23. इसलिए, अपील मंजूर की जाती है और विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए तारीख 13 जनवरी, 2010 के निर्णय और आदेश को अपास्त किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

क.

———

शादाब और अन्य

बनाम

न्यायाधीश, लघुवाद न्यायालय, गाजियाबाद और एक अन्य

तारीख 11 अगस्त, 2010

न्यायमूर्ति राकेश तिवारी

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 9, नियम 13 और धारा 151 [सपठित परिसीमा अधिनियम, 1963 – धारा 5] – एकपक्षीय निर्णय और डिक्री को अपास्त करने और मामले का प्रत्यावर्तन करने हेतु लगभग 9 वर्ष और 3 मास के पश्चात् प्रत्यावर्तन आवेदन – डिक्री के समय अवयस्क होने की दलील – प्रत्यावर्तन आवेदन वयस्कता प्राप्त करने के एक वर्ष पश्चात् फाइल किया जाना – प्रत्यावर्तन आवेदन ठीक ही खारिज किया गया है – मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है ।

याचियों द्वारा निचले न्यायालयों के निर्णयों और डिक्री को आक्षेपित करते हुए यह सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका फाइल की गई है । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – आवेदक शादाब द्वारा किए गए प्रकथन सही प्रतीत नहीं होते हैं । उसने आवेदन फाइल करने की तारीख से एक वर्ष पूर्व वयस्कता की आयु प्राप्त कर ली थी । यह उल्लेखनीय है कि पूर्वोक्त वाद में शहनवाज़ और शाकिर द्वारा फाइल किया गया प्रत्यावर्तन आवेदन निचले न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था जिसके विरुद्ध पुनरीक्षण लंबित है । जहां तक रुक़साना का संबंध है, वह अवयस्क थी और डिक्री के निष्पादन के समय उसकी आयु लगभग 7 वर्ष थी और अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् अपने मामू के घर रहने के लिए चली गई थी । उसने मामले के बारे में जानकारी उस समय प्राप्त करना स्वीकार किया है जब उसे वर्ष 2010 में निष्पादन मामले में न्यायालय से समन प्राप्त हुए और जब वह अपने विवाह के बाद अपनी ससुराल में थी । स्वीकृततः वह अवयस्क थी और किराएदारी उसे न्यागत नहीं हो सकती । अधिनियम की धारा 3(छ) के अनुसार किराएदारी प्रथमतः पति या पत्नी को न्यागत होगी और तत्पश्चात् अधिनियम के अधीन दी गई रीति में अन्यों को अर्थात्

प्रथमतः पति या पत्नी को न्यागत होगी, तत्पश्चात् निचले उत्तराधिकारी पुरुष को और तत्पश्चात् ऐसे माता-पिता, दादा-दादी और कोई अविवाहित या विधवा, तलाकशुदा या न्यायिक रूप से पृथक् पुत्री को या पुरुष उत्तराधिकारी की पुत्री को जो साधारणतया उसके साथ रह रहे हों । इसलिए वर्तमान मामले में किराएदारी प्रथमतः माता को न्यागत होगी जिसने स्वीकृततः वाद लड़ने के लिए कोई लिखित कथन फाइल नहीं किया । तथापि, यदि यह उपधारणा की जाए कि किराएदारी संयुक्त रूप से परिवार को न्यागत हो गई थी तो भी स्वीकृततः नोटिस की तामील शाकिर हुसैन पर हुई है जिसने किराएदार के रूप में परिवार की ओर से नोटिस का उत्तर फाइल किया था, इसलिए याचियों द्वारा संयुक्त किराएदारी के दावे के उसी सिद्धांत के आधार पर नोटिस परिवार पर तामील होना समझा जाएगा और शाकिर द्वारा फाइल किया गया लिखित कथन याचियों सहित परिवार के सदस्यों द्वारा संयुक्त रूप से फाइल करना माना जाएगा । इसलिए शाकिर के विरुद्ध विनिश्चित मामला मृतक किराएदार के परिवार के अन्य सभी सदस्यों के विरुद्ध विनिश्चित माना जाएगा । अन्यथा भी उपबंध या आदेश 32 नियम 3(क) के अनुसार अवयस्क के विरुद्ध डिक्री तब तक अपास्त किए जाने योग्य नहीं है जब तक कोई अन्याय न किया गया हो । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों तथा लिखित अभिकथन को जो शाकिर द्वारा वादी/दुकान-मालिक के अभिकथनों से इनकार करते हुए और अपने पिता के स्थान पर स्वयं को किराएदार होने का दावा करते हुए फाइल किया गया था, वाद का विनिश्चय किया गया और इसके पश्चात् यह नहीं कहा जा सकता कि अवयस्कों द्वारा वयस्कता प्राप्त करने के बाद आवेदन फाइल करने के लिए अवयस्कों के साथ कोई अन्याय हुआ है । ऐसा प्रतीत होता है कि केवल मामले में लंबे समय तक सुनवाई टालने और न्याय में अड़चन डालने के लिए और वह भी 10 वर्ष के बाद आवेदन फाइल किए गए और इसलिए निर्णय और डिक्री के विरुद्ध उनका पुनरीक्षण अभी तक लंबित है । उस कारण से कि अवयस्कों के कुटुम्ब के अन्य वयस्क सदस्यों द्वारा वाद में पैरवी की गई थी, निर्णय और डिक्री से अवयस्कों के साथ कोई अन्याय नहीं हुआ है । पूर्व में प्रत्यावर्तन का आवेदन याची की माता श्रीमती रशीदन और प्रत्यर्थी सं. 2, प्रत्यर्थी सं. 3 शाकिर, प्रत्यर्थी सं. 8 श्रीमती शहनाज और प्रत्यर्थी सं. 10 रुक़साना द्वारा फाइल किया गया था । शहनाज और शाकिर का प्रत्यावर्तन आवेदन पहले ही खारिज किया जा चुका है । याचियों ने शहनाज और शाकिर के प्रत्यावर्तन आवेदन के खारिज होने के बाद आवेदन फाइल किया है । इसलिए यह प्रतीत होता

है कि पुत्रियों ने जिनका विवाह पहले ही हो चुका है । विवाद को लंबा खींचने के लिए प्रत्यावर्तन आवेदन फाइल किए हैं । न तो पूर्वोक्त पुत्रियों ने और न ही माता अथवा याची सं. 1 ने ऐसा कोई दावा किया है कि वे मूल किराएदार श्री इबने हसन के साथ दुकान में कार्य करते थे । वस्तुतः याची का दावा वाद फाइल करते समय ही उत्पन्न हुआ है । इसलिए यह प्रतीत होता है कि याचियों द्वारा जिन्होंने वाद में विनिश्चय के समय स्वयं अवयस्क होने का दावा किया है, प्रत्यावर्तन आवेदन के संबंध में आदेश के विरुद्ध रिट याचिका फाइल करना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है, इसलिए रिट याचिका 25,000/- रुपए के खर्चे के साथ खारिज की जाती है जिसको एक मास में जमा करना होगा जिसके जमा न करने पर याची विधि के अनुसार कार्यवाही कर सकते हैं । (पैरा 11, 12, 13, और 14)

आरंभिक (सिविल रिट) अधिकारिता : 2010 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 47245.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याचियों की ओर से श्री एस. के. मिश्रा

प्रत्यर्थियों की ओर से कोई नहीं

न्यायमूर्ति राकेश तिवारी – याचियों के विद्वान काउंसेल को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया । मामले के तथ्य ये हैं कि विवादित दुकान का तारीख 1 अप्रैल, 1982 को निर्माण करने का दावा किया गया है और इसे श्री इबने हसन को 340 रुपए प्रतिमास की दर से किराए पर दिया गया था; किराएदार ने किराए का संदाय नहीं किया । तारीख 1 अप्रैल, 1990 से तारीख 21 दिसम्बर, 1990 की अवधि का किराया उसके द्वारा देय था । दुकान-मालिक ने किराएदार की किराएदारी समाप्त करने के लिए तारीख 22 मई, 1990 को रजिस्टर्ड नोटिस भेजा था । इसी बीच श्री इबने हसन की मृत्यु हो गई । दुकान-मालिक के पूर्वोक्त नोटिस का विवादित दुकान के किराएदार होने के रूप में स्वयं श्री इबने हसन के पुत्र शाकिर हुसैन द्वारा उत्तर दिया गया । दुकान-मालिक के अनुसार, चूंकि पूर्वोक्त नोटिस में अनवधानता के कारण कतिपय भूल हुई थी, इसलिए तारीख 31 अगस्त, 1990 को दूसरा नोटिस किराएदारों को पुनः भेजा गया था जिसका तारीख 7 सितम्बर, 1990 के उत्तर के माध्यम से उनके द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रत्युत्तर दिया गया कि वह किराएदार स्व. इबने हसन के परिवार के अन्य सदस्यों के साथ संयुक्त किराएदार था ।

2. तत्पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 2 शिशिर कुमार ने किराए की बकाया के लिए और मोहल्ला किशनपुरा, बुलंदशहर रोड, हापुड़, जिला गाजियाबाद में स्थित विवादित दुकान संख्या 30 (पुरानी संख्या 43/5बी) से किराएदार श्री इबने हसन को बेदखल करने के लिए तारीख 22 दिसम्बर, 1990 को सिविल न्यायाधीश न्यायालय/लघुवाद न्यायाधीश न्यायालय में 1990 का वाद संख्या 22 फाइल किया ।

3. तारीख 4 मई, 1998 को वाद में प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा यह लिखित कथन फाइल किया गया था कि वे न तो व्यतिक्रमी हैं और न ही कोई किराया किराएदारों पर देय है । यह भी दावा किया गया कि दुकान में उनकी किराएदारी 1975 से है । यह अभिकथन किया गया कि दुकान-मालिक ने स्वयं किराया स्वीकार नहीं किया था और इस संबंध में किराएदार ने तारीख 22 मई, 1990 के नोटिस के उत्तर में तारीख 23 अगस्त, 1990 को सही तथ्य दिए थे । तथापि, तारीख 31 अगस्त, 1990 को दुकान-मालिक द्वारा नोटिस की तामीली से इनकार किया गया और बाद के तथ्यों और परिस्थितियों में वाद खर्चों के साथ खारिज किए जाने का अनुरोध किया गया था ।

4. स्व. इबने हसन के पुत्र शादाब हसन निवासी मकान सं. 481 नई आबादी पीर वाली गली, हापुड, जिला गाजियाबाद याची सं. 1 ने आदेश 9 नियम 13 और धारा 151 के अधीन आवेदन के साथ परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अधीन एक आवेदन फाइल किया था जो 1990 के जे. एस. सी. सी. वाद सं. 22, शिशिर कुमार बनाम श्रीमती रशीदन और अन्य तारीख 17 मार्च, 2001 के निर्णय और एकपक्षीय आदेश को अपास्त करने के लिए तथा वाद गुण-दोष पर विनिश्चित करने के लिए एक शपथ-पत्र के साथ फाइल किया गया था । ये आवेदन और शपथ-पत्र रिट याचिका के उपाबंध 3 के रूप में संलग्न हैं । इनका परिशीलन करने से यह दर्शित होता है कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अधीन फाइल आवेदन में शादाब हसन ने यह प्रकथन किया था कि आवेदन फाइल करने में 9 वर्ष 5 मास और 10 दिनों का विलंब है । यह विलंब जो जानबूझकर नहीं किया गया है और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में यह विलंब क्षमा किए जाने योग्य है । आवेदन का परिशीलन करने से जो शादाब हसन द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के साथ पठित नियम 13 के आदेश 9 के अधीन फाइल किया गया है, इन परिस्थितियों के आधार पर वाद के प्रत्यावर्तन के लिए विचार करने के लिए अनुरोध किया गया कि वह जब पैदा नहीं हुआ था तब पूर्वोक्त 1990 का वाद सं. 22 फाइल किया गया

था और चूंकि वाद में एकपक्षीय कार्यवाहियां उसकी जानकारी में नहीं थीं इसलिए वह मामले का विरोध नहीं कर सका और अब वह 19 वर्ष का है और उसे अपनी बहन रुक़साना के माध्यम से तारीख 29 जुलाई, 2001 को लगभग 4.00 बजे सायं मामले के बारे में जानकारी हुई । उसने यह भी प्रकथन किया कि उस पर किसी भी समन की तामील नहीं हुई और न ही उसने न्यायालय द्वारा रजिस्ट्रीकृत डाक से भेजे गए किसी भी समन को लेने से इनकार किया है अपितु डाकिए ने दुकान-मालिक के साथ दुस्संधि करके दुकान-मालिक के पक्ष में गलत टिप्पणियां की हैं और उस पर कपटपूर्ण तामील दर्शायी गई है । उसने अंततः यह कथन किया कि पूर्वोक्त वाद में समाचार पत्रों में नोटिसों का प्रकाशन न्यायालय के आदेशों के अनुसार नहीं किया गया है, क्योंकि वे राष्ट्रीय दैनिक समाचार पत्र के बजाय स्थानीय समाचार पत्र में प्रकाशित किए गए हैं ।

5. पूर्वोक्त दोनों आवेदनों में किए गए अभिकथनों को शादाब हुसैन द्वारा तारीख 30 जुलाई, 2010 के शपथ-पत्र में भी समान प्रकथन करके दोहराया गया है । यहां यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि तारीख 30 जुलाई, 2010 के द्वितीय शपथ-पत्र में उसने शपथ पर यह प्रकथन किया कि आवेदनों को उसके काउंसेल द्वारा तैयार किया गया है । शपथ-पत्र के पैरा 3 की अंतर्वस्तु और इस आवेदन के पैरा सं. 1 से 12 में किए गए कथन व्यक्तिगत जानकारी के आधार पर शपथ पर किए गए हैं ।

6. याची सं. 2 स्व. इबने हसन की पुत्री श्रीमती रुक़साना निवासी मोहल्ला और कस्बा हरायवली तहसील धामपुर, जिला बिजनौर ने भी रिट याचिका के उपाबंध सं. 4 के रूप में संलग्न शपथ-पत्र के साथ प्रत्यावर्तन का आवेदन फाइल करने में 9 वर्ष 2 मास और 23 दिन के विलंब की माफी के लिए परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अधीन आवेदन फाइल किया है कि उसे वाद में तारीख 17 मार्च, 2010 को अन्य बातों के साथ-साथ एकपक्षीय डिक्री के बारे में तारीख 7 मई, 2010 को प्रथम बार जानकारी मिली; विलंब इस तथ्य के कारण हुआ था कि उसे इस तथ्य के कारण वाद कार्यवाहियों के बारे में जानकारी नहीं थी कि समनों को दैनिक जागरण, अमर उजाला, राष्ट्रीय सहारा, नवभारत और हिन्दुस्तान जैसे क्षेत्रीय समाचार पत्रों में, जिनका व्यापक प्रचालन है, प्रकाशित नहीं किया गया था अपितु उसे गाजियाबाद से प्रकाशित स्थानीय समाचार पत्रों में प्रकाशित किया गया था इसलिए वह जानबूझकर गैरहाजिर नहीं हुई और इसलिए विलंब माफ करने योग्य है और वाद को गुण-दोष पर सुना जाए ।

7. उसने मामले के प्रत्यावर्तन के लिए अपने आवेदन के पैरा सं. 5

में प्रकथन किए हैं जो इस प्रकार हैं :–

यह कि प्रार्थिनी पर्दानशीन औरत है तथा सन् 1980 से अपने मामू के ग्राम महमूदपुर किला परिशिष्ठगढ़, जिला मेरठ में रह रही थी, इसी कारण से प्रार्थिनी का हापुड़ आना जाना नहीं था और इस मुकदमे की प्रार्थिनी को जानकारी नहीं थी ।

8. उसने यह कहते हुए डाकघर के माध्यम से समन तामील न होने का अभिकथन किया है कि दुकान-मालिक द्वारा रजिस्ट्रीकृत डाक द्वारा भेजे गए समनों पर की गई टिप्पणियां दुस्संधि द्वारा डाकिया से अपने पक्ष में कराई गई हैं ।

9. दोनों याचियों ने 85,000/- रुपए की डिक्री की राशि पर रोक लगाने और उक्त राशि के लिए प्रत्याभूति-दाता के रूप में कलुआ को स्वीकार करने के लिए कलुआ के शपथ-पत्र के साथ निचले न्यायालय के समक्ष रोक आवेदन फाइल किया था ।

10. न्यायालय ने तारीख 30 जुलाई, 2010 के आदेश द्वारा याचियों के आवेदन खारिज कर दिए । याचियों के आवेदन पर आदेशों की सुसंगत अंतर्वस्तु इस प्रकार है :–

इस न्यायालय ने आदेश दिनांक 13 अप्रैल, 2010 के विरुद्ध मा. जनपद न्यायाधीश गाजियाबाद के न्यायालय में पुनरीक्षण प्रस्तुत कर दिया है, इस आधार पर इस वाद की कार्यवाही नहीं रोकी जा सकती है । मा. जिला जज के न्यायालय द्वारा कोई स्थगन आदेश इजरा की कार्यवाही को रोकने हेतु जारी नहीं किया गया है ।

अतः प्रार्थिनी शहनाज़ का प्रार्थना पत्र 41ग स्वीकार किया जाता है । पुलिस कर्मचारियों की फीस जमा कर दी गई है । अतः दखल परवाना जारी हो । आवश्यक पैरवी 7 दिन में की जाए । न्यायालय अमीन पुलिस की सहायता से वादग्रस्त सम्पत्ति पर लगे ताले को तोड़कर नियमानुसार डिक्रीदार को दखल दिलवाए और आख्या नियत दिनांक तक प्रस्तुत करे ।

पत्रावली अग्रिम आदेश दिनांक 20.8.2010 को पेश हो ।

11. आवेदक शादाब द्वारा किए गए प्रकथन सही प्रतीत नहीं होते हैं । उसने आवेदन फाइल करने की तारीख से एक वर्ष पूर्व वयस्कता की आयु प्राप्त कर ली थी । यह उल्लेखनीय है कि पूर्वोक्त वाद में शहनवाज़ और शाकिर द्वारा फाइल किया गया प्रत्यावर्तन आवेदन निचले न्यायालय द्वारा

खारिज कर दिया गया था जिसके विरुद्ध पुनरीक्षण लंबित है । जहां तक रुक़साना का संबंध है, वह अवयस्क थी और डिक्री के निष्पादन के समय उसकी आयु लगभग 7 वर्ष थी और अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् अपने मामू के घर रहने के लिए चली गई थी । उसने मामले के बारे में जानकारी उस समय प्राप्त करना स्वीकार किया है जब उसे वर्ष 2010 में निष्पादन मामले में न्यायालय से समन प्राप्त हुए और जब वह अपने विवाह के बाद अपनी ससुराल में थी । स्वीकृततः वह अवयस्क थी और किराएदारी उसे न्यागत नहीं हो सकती । अधिनियम की धारा 3 (छ) के अनुसार किराएदारी प्रथमतः पति या पत्नी को न्यागत होगी और तत्पश्चात् अधिनियम के अधीन दी गई रीति में अन्यों को अर्थात् प्रथमतः पति या पत्नी को न्यागत होगी, तत्पश्चात् निचले उत्तराधिकारी पुरुष को और तत्पश्चात् ऐसे माता-पिता, दादा-दादी और कोई अविवाहित या विधवा, तलाकशुदा या न्यायिक रूप से पृथक् पुत्री को या पुरुष उत्तराधिकारी की पुत्री को जो साधारणतया उसके साथ रह रहे हों । इसलिए वर्तमान मामले में किराएदारी प्रथमतः माता को न्यागत होगी जिसने स्वीकृततः वाद लड़ने के लिए कोई लिखित कथन फाइल नहीं किया ।

12. तथापि, यदि यह उपधारणा की जाए कि किराएदारी संयुक्त रूप से परिवार को न्यागत हो गई थी तो भी स्वीकृततः नोटिस की तामील शाकिर हुसैन पर हुई है जिसने किराएदार के रूप में परिवार की ओर से नोटिस का उत्तर फाइल किया था, इसलिए याचियों द्वारा संयुक्त किराएदारी के दावे के उसी सिद्धांत के आधार पर नोटिस परिवार पर तामील होना समझा जाएगा और शाकिर द्वारा फाइल किया गया लिखित कथन याचियों सहित परिवार के सदस्यों द्वारा संयुक्त रूप से फाइल करना माना जाएगा । इसलिए शाकिर के विरुद्ध विनिश्चित मामला मृतक किराएदार के परिवार के अन्य सभी सदस्यों के विरुद्ध विनिश्चित माना जाएगा ।

13. अन्यथा भी उपबंध या आदेश 32 नियम 3(क) के अनुसार अवयस्क के विरुद्ध डिक्री तब तक अपास्त किए जाने योग्य नहीं है जब तक कोई अन्याय न किया गया हो ।

14. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों तथा लिखित अभिकथन को जो शाकिर द्वारा वादी/दुकान-मालिक के अभिकथनों से इनकार करते हुए और अपने पिता के स्थान पर स्वयं को किराएदार होने का दावा करते हुए फाइल किया गया था, वाद का विनिश्चय किया गया और इसके पश्चात् यह नहीं कहा जा सकता कि अवयस्कों द्वारा वयस्कता प्राप्त करने के बाद आवेदन फाइल करने के लिए अवयस्कों के साथ कोई अन्याय हुआ है ।

ऐसा प्रतीत होता है कि केवल मामले में लंबे समय तक सुनवाई टालने और न्याय में अड़चन डालने के लिए और वह भी 10 वर्ष के बाद आवेदन फाइल किए गए और इसलिए निर्णय और डिक्री के विरुद्ध उनका पुनरीक्षण अभी तक लंबित है । उस कारण से कि अवयस्कों के कुटुम्ब के अन्य वयस्क सदस्यों द्वारा वाद में पैरवी की गई थी, निर्णय और डिक्री से अवयस्कों के साथ कोई अन्याय नहीं हुआ है । पूर्व में प्रत्यावर्तन का आवेदन याची की माता श्रीमती रशीदन और प्रत्यर्थी सं. 2, प्रत्यर्थी सं. 3 शाकिर, प्रत्यर्थी सं. 8 श्रीमती शहनाज़ और प्रत्यर्थी सं. 10 रुक़साना द्वारा फाइल किया गया था । शहनाज़ और शाकिर का प्रत्यावर्तन आवेदन पहले ही खारिज किया जा चुका है । याचियों ने शहनाज़ और शाकिर के प्रत्यावर्तन आवेदन के खारिज होने के बाद आवेदन फाइल किया है । इसलिए यह प्रतीत होता है कि पुत्रियों ने जिनका विवाह पहले ही हो चुका है, विवाद को लंबा खींचने के लिए प्रत्यावर्तन आवेदन फाइल किए हैं । न तो पूर्वोक्त पुत्रियों ने और न ही माता अथवा याची सं. 1 ने ऐसा कोई दावा किया है कि वे मूल किराएदार स्व. इबने हसन के साथ दुकान में कार्य करते थे । वस्तुतः याची का दावा वाद फाइल करते समय ही उत्पन्न हुआ है । इसलिए यह प्रतीत होता है कि याचियों द्वारा जिन्होंने वाद में विनिश्चय के समय स्वयं अवयस्क होने का दावा किया है, प्रत्यावर्तन आवेदन के संबंध में आदेश के विरुद्ध रिट याचिका फाइल करना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है, इसलिए रिट याचिका 25,000/- रुपए के खर्चे के साथ खारिज की जाती है जिसको एक मास में जमा करना होगा जिसके जमा न करने पर याची विधि के अनुसार कार्यवाही कर सकते हैं ।

15. यह भी निदेश दिया जाता है कि पुनरीक्षण न्यायालय पुनरीक्षण में लंबित सभी आवेदनों को आज से एक मास की अवधि के भीतर गुण-दोष पर सुनकर विनिश्चित करेगा । याची के विद्वान काउंसेल की यह दलील कि परवाना भेज दिया गया है और याची बेदखल होंगे, पूर्णतया गलत है क्योंकि रुक़साना का विवाह हो गया है और वह हापुड़ में अपनी ससुराल में रह रही है, इसलिए वह अपने पिता की मृत्यु के बाद कभी भी अपनी माता, भाई और बहनों के साथ नहीं रही है । जहां तक शाकिर का संबंध है, डिक्री उस पर भी बाध्यकारी है ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

मही./मह.

अशोक कुमार दुबे और अन्य

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

तारीख 16 अगस्त, 2010

न्यायमूर्ति सुनील अम्बवानी और न्यायमूर्ति काशीनाथ पांडे

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 [सपठित उत्तर प्रदेश उप-निरीक्षक और निरीक्षक (सिविल पुलिस) सेवा नियम, 2008 का नियम 5(2) के साथ पठित उत्तर प्रदेश उप-निरीक्षक और निरीक्षक (सिविल पुलिस) (प्रथम संशोधन) सेवा नियम, 2009 का नियम 5(2)] – संशोधित नियमों को भूतलक्षी प्रभाव देना – ऐसे संशोधन सांविधानिक तौर पर वैध होना – यदि सांविधानिक तौर पर सेवा नियमों में संशोधन करते हुए, उन्हें भूतलक्षी प्रभाव दिया जाता है तो ऐसे संशोधन विधि की दृष्टि से मान्य और कायम रखे जाने योग्य होंगे ।

वर्तमान मामले में, सभी याची स्नातक हैं । वे प्रारम्भिक परीक्षा, शारीरिक परीक्षा, मुख्य परीक्षा और साक्षात्कारों के पश्चात् सिविल पुलिस में उप-निरीक्षकों के रूप में सीधे तौर पर भर्ती हुए थे । उन्होंने पुलिस प्रशिक्षण कालेज, मुरादाबाद और सीतापुर में एक वर्ष का प्रशिक्षण लिया है और अपनी परिवीक्षा अवधि पूरी किया है । यह अभिकथित है कि वे उत्तर प्रदेश उप-निरीक्षक और निरीक्षक (सिविल पुलिस) सेवा नियम, 2008 (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में नियम, 2008 कहा गया है) के नियम 5(2) के निबंधनों में भर्ती वर्ष के प्रथम दिन को सेवा के 5 वर्ष पूरे करने के पश्चात् प्रोन्नति के लिए अर्ह हो गए हैं । तारीख 2 अप्रैल, 2009 को अधिसूचित नियमों के प्रथम संशोधन द्वारा नियम 5(2) को संशोधित किया गया था जिसके द्वारा भर्ती वर्ष के प्रथम दिन को 5 वर्षों की सेवा पूरी करने की गणना करने में परिवीक्षा अवधि को अपवर्जित करने के लिए उपबंध किया गया था । यह कथित है कि भर्ती वर्ष अर्थात् 1 जुलाई, 2008 के प्रथम दिन से आरम्भ भर्ती वर्ष में याची वर्ष 2008 में रिक्त 1114 निरीक्षकों के पद पर प्रोन्नति के लिए विचार करने के लिए अर्ह थे । ये रिक्तियां तारीख 1 जुलाई, 2008 से जून, 2009 के बीच हुई थीं । तारीख 2 अप्रैल, 2009 को अधिसूचित नियम 5(2) में प्रथम संशोधन द्वारा

परिवीक्षा अवधि का अपवर्जन अवैध, मनमाना और अधिकारातीत है । श्री पी. एस. बघेल ने यह निवेदन किया कि उक्त संशोधन, राज्य सरकार की शक्ति के परे भी है । अर्हता के लिए सेवा वर्ष की संख्या की गणना करने में परिवीक्षा अवधि का अपवर्जन अयुक्तियुक्त और अन्यायोचित है तथा इसे प्रोन्नति के लिए विचार करने से याचियों को मात्र वंचित करने के लिए ही किया गया है । यह निवेदन किया है कि परिवीक्षा अवधि अधिकारी का कार्य देखने के लिए होती है । जब एक अधिकारी सफलतापूर्वक परिवीक्षा अवधि पूरी कर लेता है तो परिवीक्षा अवधि के दौरान उसके द्वारा अर्जित अनुभव को उसके सेवा से अपवर्जित नहीं किया जा सकता है । नियम, 2008 के नियम 20(1) के अधीन कोई व्यक्ति सेवा में मूल नियुक्ति होने पर दो वर्षों के लिए परिवीक्षा पर रखा जा सकता है । याचियों में से किसी का भी यह पक्षकथन नहीं है कि परिवीक्षा अवधि बढ़ाई गई थी । तारीख 19 जनवरी, 2010 को अधिसूचित नियमों के द्वितीय संशोधन द्वारा प्रोन्नति के लिए अर्हता संशोधित की गई थी और पांच वर्षों के बजाय सात वर्ष उपबंधित की गई थी और तारीख 5 अप्रैल, 2010 को अधिसूचित नियमों के तृतीय संशोधन द्वारा उत्तर प्रदेश पुलिस बल में सिविल पुलिस के उप-निरीक्षकों और निरीक्षकों के चयन, प्रोन्नति, प्रशिक्षण, नियुक्ति, ज्येष्ठता का अवधारण और पुष्टि इत्यादि से संबंधित या आनुषंगिक मामलों के संबंध में समय-समय पर सरकार द्वारा जारी आदेश आरम्भ से ही विखंडित और प्रतिसंहृत हो गए । याचियों ने क्रमशः तारीख 19 जनवरी, 2010 और 5 अप्रैल, 2010 को अधिसूचित सेवा नियम, 2008 के द्वितीय और तृतीय संशोधन को चुनौती नहीं दी है । चुनौती मात्र तारीख 2 अप्रैल, 2009 को अधिसूचित नियमों में प्रथम संशोधन को ही दी गई है, जिसके द्वारा परिवीक्षा अवधि को वर्ष 2008 में निरीक्षकों के रिक्त 1114 पदों के लिए याचियों की अभ्यर्थिता पर विचार करने से वंचित करते हुए, अपवर्जित किया गया था । न्यायालय द्वारा याचियों की रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान मामले में, तारीख 2 दिसम्बर, 2008 से प्रवर्तित नियम, 2008 के प्रवर्तन के पूर्व शासकीय आदेशों के अधीन निरीक्षक के पद पर प्रोन्नति के लिए चयन तारीख 5 नवम्बर, 1965 और तारीख 24 जुलाई, 2003 के शासकीय आदेश के अधीन किए जाते थे जिनमें प्रोन्नति के लिए अर्हता 10 वर्षों की सेवा उपबंधित थी । दक्षता में सुधार करने और नौजवान व्यक्तियों को बढ़ावा देने के लिए अर्हता की अवधि नियम, 2008 में घटाकर 5 वर्ष कर दी गई थी । तथापि, भर्ती आरम्भ नहीं हुई थी

क्योंकि तारीख 2 अप्रैल, 2009 को अधिसूचित नियमों के प्रथम संशोधन जिसमें भर्ती वर्ष के प्रथम दिन को 5 वर्ष की गणना करने में परिवीक्षा अवधि को अपवर्जित करने का उपबंध किया गया था, के पूर्व उन्हें बुलावा नहीं भेजा गया था । याचियों को तारीख 1 जुलाई, 2007 और तारीख 1 जुलाई, 2008 से आरम्भ होने वाले भर्ती वर्ष में रिक्तियों के लिए विचार किए जाने का कोई अधिकार नहीं था । उन्होंने तारीख 1 जुलाई, 2009 से आरम्भ होने वाले भर्ती वर्ष में वर्ष 2008 की 1114 रिक्तियों के लिए अर्ह होने का दावा किया है किन्तु चूंकि भर्ती की प्रक्रिया आरम्भ नहीं हुई थी इसलिए उन्हें कोई अधिकार प्राप्त नहीं हुआ था । याचियों को मात्र प्रोन्नति के लिए विचार किए जाने का अधिकार था । इसी बीच में, सेवा नियम, 2008 तारीख 2 अप्रैल, 2009 को अधिसूचित प्रथम संशोधन द्वारा संशोधित किए गए जिसमें परिवीक्षा अवधि (दो वर्ष) अपवर्जित कर दिया गया और इसके पश्चात्, तृतीय संशोधन द्वारा अर्हता अवधि सात वर्ष के रूप में स्पष्टीकृत की गई । तारीख 19 जनवरी, 2010 को अधिसूचित नियमों के द्वितीय संशोधन द्वारा राज्य सरकार का आशय स्पष्टीकृत करते हुए निरीक्षकों के पद पर विचार किए जाने के लिए उप-निरीक्षकों की मूल नियुक्ति की अर्हता के रूप में भर्ती वर्ष के प्रथम दिन को सात वर्ष की सेवा उपबंधित की गई । तारीख 5 अप्रैल, 2010 के शुद्धिपत्र द्वारा द्वितीय संशोधन के नियम 5(2) के प्रथम खंड को साधारणतः संशोधित किया गया जो त्रुटिपूर्वक प्रकाशित हो गया था । प्रथम खंड मात्र मूल नियम को वर्णित करता है, नियम जैसा तारीख 2 अप्रैल, 2009 को नियमों के प्रथम संशोधन द्वारा संशोधित था । नियमों के तृतीय संशोधन द्वारा उस तारीख से भूतलक्षी प्रभाव से प्रवर्तित किए गए जब नियम तारीख 2 दिसम्बर, 2008 को अधिसूचित हुए थे । सभी संदेहों को दूर करते हुए तृतीय संशोधन द्वारा नियम, 2008 के प्रवर्तन के पूर्व समय-समय पर जारी सभी शासकीय आदेशों और निर्देशों को अभिखंडित कर दिया गया और उन्हें आरम्भ से ही खंडनीय घोषित कर दिया गया । तारीख 19 जनवरी, 2008 को नियमों के द्वितीय संशोधन के साथ पठित तारीख 5 अप्रैल, 2010 की शुद्धिपत्र के पश्चात् नियम 5 में अर्हता मापदंड अब इस प्रकार हैं – "बोर्ड द्वारा मूल रूप से नियुक्त उन उप-निरीक्षकों में से विभागीय परीक्षा के आधार पर प्रोन्नति की जाएगी जिन्होंने भर्ती वर्ष के प्रथम दिन को इस प्रकार की सात वर्ष की सेवा पूरी की है ।" यह सुस्पष्ट है कि राज्य सरकार ने अर्हता मापदंड परिवर्तित करते हुए दस वर्ष से घटाकर सात वर्ष कर दी और सिविल पुलिस के निरीक्षक के रूप में नौजवान और सक्षम व्यक्तियों को

विभागीय परीक्षा देने का अवसर प्रदान किया । संशोधन विधायी आशय को स्पष्ट करता है । भर्ती प्रक्रिया, प्रोन्नति के लिए अर्ह व्यक्तियों को बुलावा भेजते हुए आरम्भ की गई । भर्ती आरम्भ करने के बीच में संशोधन से याचियों को नियमों के आधार पर प्रोन्नति का दावा करने का कोई अधिकार प्रदत्त नहीं हो सकता है क्योंकि वे कार्यरत थे जब वे प्रोन्नति के लिए विचार किए जाने हेतु अर्ह हो गए थे । (पैरा 15 और 16)

वर्तमान मामले में, प्रोन्नति पर विचार करने के लिए आवेदकों को आमंत्रित करते हुए भर्ती प्रक्रिया तारीख 31 अक्तूबर, 2009 को आरम्भ की गई थी । उस तारीख को नियम, 2008 में प्रथम और द्वितीय संशोधन करते हुए विधायी आशय को स्पष्ट करते हुए यह अधिसूचित किया गया था कि मूल रूप से नियुक्त उन उप-निरीक्षकों, जिन्होंने भर्ती वर्ष की प्रथम तारीख पर 7 वर्ष की सेवा पूरी कर ली है, की प्रोन्नति के लिए विचार किया जाएगा । तारीख 2 अप्रैल, 2009 को नियमों के प्रथम संशोधन की अधिसूचना पर अर्हता को ध्यान में रखते हुए, याची 1 जुलाई, 2009 वर्ष तक की 1114 रिक्तियों पर प्रोन्नति पर विचार किए जाने का कोई निहित अधिकार अर्जित नहीं करते हैं । वर्तमान मामले में, विधायी आशय पूर्णतः स्पष्ट है । कोई संदेह, जो उद्‌भूत हो सकते हैं, वह यह है कि क्या परिवीक्षा अवधि का अपवर्जन जो प्रथम और द्वितीय संशोधन करते हुए स्पष्ट किया गया है, वे तारीख 5 अप्रैल, 2010 को अधिसूचित नियमों के तृतीय संशोधन द्वारा भूतलक्षी हैं । वास्तव में, तारीख 5 अप्रैल, 2010 को अधिसूचित नियमों में तृतीय संशोधन मात्र इस आशय को स्पष्टीकृत करते हैं कि सभी पूर्ववर्ती नियम, शासकीय आदेश, प्रशासनिक निर्देश आरम्भतः रद्‌द, अभिखंडित किए जाते हैं और प्रत्याहृत किए जाते हैं । याचियों ने 1 जुलाई, 2009 तक भर्ती वर्ष की 1114 रिक्तियों के लिए विचार किए जाने के लिए कोई अधिकार अर्जित या परिपक्वता प्राप्त नहीं किया है । वे मूल रूप से नियुक्त किए गए हैं किन्तु उन्होंने उन रिक्तियों पर विचारित होने के लिए सात वर्ष की सेवा पूरी नहीं की है और उन्होंने विचार के लिए कोई निहित अधिकार अर्जित नहीं किया है । (पैरा 19, 20 और 21)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2009]	जे. टी. 2009 (3) एस. सी. 2002 :	
	दिलीप कुमार गर्ग बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ;	11

[2009] (2009) 12 एस. सी. सी. 62 :
दिल्ली उच्च न्यायालय और एक अन्य बनाम
ए. के. महाजन और अन्य ; 18

[2008] जे. टी. 2008 (8) एस. सी. 474 :
भारत संघ बनाम **पुष्पा रानी** ; 11,12

[2008] जे. टी. 2008 (11) एस. सी. 467 :
शासकीय परिसमापक बनाम **दयानन्द और अन्य** ; 14

[2006] (2006) 6 एस. सी. सी. 430 :
आर. एस. गर्ग बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** ; 7

[1997] 1997 की रिट याचिका सं. 20716 :
चन्द्र प्रकाश तिवारी बनाम **शकुन्तला शुक्ला और अन्य** ; 8

[1994] (1994) 5 एस. सी. सी. 450 :
भारत संघ बनाम **तुषार रंजन मोहन्ती और अन्य** ; 7

[1994] (1994) 6 एस. सी. सी. 151 :
मध्य प्रदेश राज्य और अन्य बनाम **रघुवीर सिंह यादव और अन्य** ; 11

[1993] ए. आई. आर. 1993 एस. सी. 2285 :
वी. के. सूद बनाम **सचिव, नागरिक विमानन** ; 11

[1990] (1990) 1 एस. सी. सी. 411 :
पी. महेन्दरन् बनाम **कर्नाटक राज्य** ; 11

[1990] एम. ए. एन. यू./एस. सी./0240/1990 = ए. आई. आर. 1990 एस. सी. 1233 :
एन. टी. देवीन कुट्टी बनाम **कर्नाटक लोक सेवा आयोग और अन्य** ; 5,17

[1989] 1989 (4) जे. टी. 459 :
पी. महेन्द्र बनाम **कर्नाटक राज्य** ; 5,17

[1988] 1988 (सप्ली.) एस. सी. सी. 740 :
पी. गणेश्वर राव और अन्य बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य** ; 5

[1988] एम. ए. एन. यू./एस. सी./0357/1988 :
पी. गणेश्वर राव और अन्य बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य** ; 17

[1988] एम. ए. एन. यू./एस. सी./0047/1983 :
ए. ए. काल्टन बनाम **शिक्षा निदेशक** ; 17

[1983] (1983) 3 एस. सी. सी. 284 :
वाई. वी. रंगैय्या और अन्य बनाम **जे. श्रीनिवास राव और अन्य** ; 5

[1983] एम. ए. एन. यू./एस. सी./0354/1983 :
वाई. वी. रंगैय्या बनाम **जे. श्रीनिवास राव** ; 17

[1981] ए. आई. आर. 1981 एस. सी. 1545 :
कर्नल ए. एस. सांगवान बनाम **भारत संघ** ; 11

[1966] एम. ए. एन. यू./एस. सी./0043/1966 :
एस. एन. नागराजन् और एक अन्य बनाम **मैसूर राज्य और अन्य** । 17

आरम्भिक (सिविल रिट) अधिकारिता : 2009 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 64514.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याचियों की ओर से सर्वश्री पी. एस. बघेल, गौतम बघेल और पी. के. उपाध्याय

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री सतीश चतुर्वेदी (अपर महाधिवक्ता), वाई. के. श्रीवास्तव, एस. एन. श्रीवास्तव, पीयूष शुक्ला और एम. सी. चतुर्वेदी (मुख्य स्थायी काउंसेल)

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सुनील अम्बवानी ने दिया ।

न्या. अम्बवानी – याचियों की ओर से श्री पी. एस. बघेल, ज्येष्ठ अधिवक्ता जिनकी सहायता श्री पी. के. उपाध्याय और श्री गौतम बघेल ने की तथा राज्य-प्रत्यर्थियों की ओर से श्री सतीश चतुर्वेदी, अपर महाधिवक्ता जिनकी सहायता एम. सी. चतुर्वेदी, मुख्य स्थायी काउंसेल और श्री एस. एन. श्रीवास्तव ने की, को सुना ।

2. सभी याची उत्तर प्रदेश सिविल पुलिस में उप-निरीक्षकों के रूप में कार्य कर रहे हैं । इस याचिका द्वारा उन्होंने उत्तर प्रदेश उप-निरीक्षक और निरीक्षक (सिविल पुलिस) (प्रथम संशोधन) सेवा नियम, 2009 के नियम 5(2) को अधिकारातीत, असंवैधानिक और अवैध घोषित करने का निर्देश देने, निरीक्षक (सिविल पुलिस) के पद पर प्रोन्नति के लिए याचियों को अपने फार्मों को प्रस्तुत करने के लिए निर्देश देने और उन्हें लिखित परीक्षा में अनंतिम रूप से उपस्थित होने को मंजूर करने का निर्देश देने के लिए प्रार्थना की है ।

3. सभी याची स्नातक हैं । वे प्रारम्भिक परीक्षा, शारीरिक परीक्षा, मुख्य परीक्षा और साक्षात्कारों के पश्चात् सिविल पुलिस में उप-निरीक्षकों के रूप में सीधे तौर पर भर्ती हुए थे । उन्होंने पुलिस प्रशिक्षण कालेज, मुरादाबाद और सीतापुर में एक वर्ष का प्रशिक्षण लिया है और अपनी परिवीक्षा अवधि पूरी किया है । यह अभिकथित है कि वे उत्तर प्रदेश उप-निरीक्षक और निरीक्षक (सिविल पुलिस) सेवा नियम, 2008 (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में नियम, 2008 कहा गया है) के नियम 5(2) के निबंधनों में भर्ती वर्ष के प्रथम दिन को सेवा के 5 वर्ष पूरे करने के पश्चात् प्रोन्नति के लिए अर्ह हो गए हैं । तारीख 2 अप्रैल, 2009 को अधिसूचित नियमों के प्रथम संशोधन द्वारा नियम 5(2) को संशोधित किया गया था जिसके द्वारा भर्ती वर्ष के प्रथम दिन को 5 वर्षों की सेवा पूरी करने की गणना करने में परिवीक्षा अवधि को अपवर्जित करने के लिए उपबंध किया गया था । यह कथित है कि भर्ती वर्ष अर्थात् 1 जुलाई, 2008 के प्रथम दिन से आरम्भ भर्ती वर्ष में याची वर्ष 2008 में रिक्त 1114 निरीक्षकों के पद पर प्रोन्नति के लिए विचार करने के लिए अर्ह थे । ये रिक्तियां तारीख 1 जुलाई, 2008 से जून, 2009 के बीच हुई थीं । तारीख 2 अप्रैल, 2009 को अधिसूचित नियम 5(2) में प्रथम संशोधन द्वारा परिवीक्षा अवधि का अपवर्जन अवैध, मनमाना और अधिकारातीत है । श्री पी. एस. बघेल ने यह निवेदन किया कि उक्त संशोधन, राज्य सरकार की शक्ति के परे भी है । अर्हता के लिए सेवा वर्ष की संख्या की गणना करने में परिवीक्षा अवधि

का अपवर्जन अयुक्तियुक्त और अन्यायोचित है तथा इसे प्रोन्नति के लिए विचार करने से याचियों को मात्र वंचित करने के लिए ही किया गया है ।

4. यह निवेदन किया है कि परिवीक्षा अवधि अधिकारी का कार्य देखने के लिए होती है । जब एक अधिकारी सफलतापूर्वक परिवीक्षा अवधि पूरी कर लेता है तो परिवीक्षा अवधि के दौरान उसके द्वारा अर्जित अनुभव को उसके सेवा से अपवर्जित नहीं किया जा सकता है । नियम, 2008 के नियम 20(1) के अधीन कोई व्यक्ति सेवा में मूल नियुक्ति होने पर दो वर्षों के लिए परिवीक्षा पर रखा जा सकता है । याचियों में से किसी का भी यह पक्षकथन नहीं है कि परिवीक्षा अवधि बढ़ाई गई थी । तारीख 19 जनवरी, 2010 को अधिसूचित नियमों के द्वितीय संशोधन द्वारा प्रोन्नति के लिए अर्हता संशोधित की गई थी और पांच वर्षों के बजाय सात वर्ष उपबंधित की गई थी और तारीख 5 अप्रैल, 2010 को अधिसूचित नियमों के तृतीय संशोधन द्वारा उत्तर प्रदेश पुलिस बल में सिविल पुलिस के उप-निरीक्षकों और निरीक्षकों के चयन, प्रोन्नति, प्रशिक्षण, नियुक्ति, ज्येष्ठता का अवधारण और पुष्टि इत्यादि से संबंधित या आनुषंगिक मामलों के संबंध में समय-समय पर सरकार द्वारा जारी आदेश आरम्भ से ही विखंडित और प्रतिसंहृत हो गए ।

5. याचियों ने क्रमशः तारीख 19 जनवरी, 2010 और 5 अप्रैल, 2010 को अधिसूचित सेवा नियम, 2008 के द्वितीय और तृतीय संशोधन को चुनौती नहीं दी है । चुनौती मात्र तारीख 2 अप्रैल, 2009 को अधिसूचित नियमों में प्रथम संशोधन को ही दी गई है, जिसके द्वारा परिवीक्षा अवधि को वर्ष 2008 में निरीक्षकों के रिक्त 1114 पदों के लिए याचियों की अभ्यर्थिता पर विचार करने से वंचित करते हुए, अपवर्जित किया गया था । यह दलील दी गई कि यदि द्वितीय संशोधन को **वाई. वी. रंगैय्या और अन्य** बनाम **जे. श्रीनिवास राव और अन्य**[1], **पी. गणेश्वर राव और अन्य** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य**[2], **पी. महेन्द्र** बनाम **कर्नाटक राज्य**[3] जिनका अनुसरण **एन. टी. देवीन कुट्टी** बनाम **कर्नाटक लोक सेवा आयोग और अन्य**[4] वाले मामले में किया गया, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि पुरानी रिक्तियां पुराने नियम अर्थात् वे नियम जो उस

---

[1] (1983) 3 एस. सी. सी. 284.

[2] 1988 (सप्ली.) एस. सी. सी. 740.

[3] 1989 (4) जे. टी. 459.

[4] एम. ए. एन. यू./एस. सी./0240/1990 = ए. आई. आर. 1990 एस. सी. 1233.

समय पर विद्यमान थीं, जब रिक्तियां अधिसूचित की गई थीं, के अनुसार ही भरी जाएंगी, वाले मामलों में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित सुस्थिर विधि को अधिकारातीत और असंवैधानिक अभिनिर्धारित कर दिया जाए तो याची चयन द्वारा भरे जाने के लिए वर्ष 2008 की 1114 रिक्तियों के लिए अर्ह थे जिसमें लिखित परीक्षा नियमों के अधीन आयोजित किए जाने हैं ।

6. श्री पी. एस. बघेल ने यह निवेदन किया कि कुल अधिसूचित रिक्तियों में से जिसके लिए तारीख 31 अक्तूबर, 2009 को प्रोन्नति की प्रक्रिया आरम्भ की जानी है, 2006 की 98 रिक्तियां तारीख 1 जुलाई, 2007 से आरम्भ होने वाले भर्ती वर्ष में आती हैं, वर्ष 2007 की 81 रिक्तियां तारीख 1 जुलाई, 2008 से आरम्भ होने वाले भर्ती वर्ष में आती हैं और वर्ष 2008 की 1114 रिक्तियां 1 जुलाई, 2009 से आरम्भ होने वाले भर्ती वर्ष में आती हैं । नियम, 2008 के प्रवर्तन के पूर्व प्रोन्नतियां तारीख 5 नवम्बर, 1965 के शासकीय आदेश और तारीख 24 जुलाई, 2003 के शासकीय आदेश द्वारा विनियमित होती थीं जिनके द्वारा मात्र उप-निरीक्षकों के नामों पर विचार किया जाता था जिनकी सेवा के दस वर्ष पूरे हो जाते थे । सभी याची वर्ष 2001 में सीधी भर्ती द्वारा समान परिस्थिति में उप-निरीक्षकों के पद पर नियुक्त हुए थे, नियम, 2008 के अधीन अर्ह हो गए थे, प्रोन्नति के लिए विचार किए जाने थे और चयन के लिए परीक्षा में उपस्थित हुए थे । उन्हें तारीख 2 अप्रैल, 2009 को अधिसूचित नियमों के प्रथम संशोधन द्वारा प्रोन्नति के लिए विचार किए जाने के उनके अधिकार से वंचित कर दिया गया था । राज्य ने दो वर्षों की परिवीक्षा अवधि को अपवर्जित करते हुए विधि में विद्वेषपूर्ण कार्य किया था और इस प्रकार सभी याचियों को प्रोन्नति के लिए अनर्ह बना दिया था । वे वर्ष 2010 की भर्ती में इन रिक्तियों के लिए प्रतियोगी नहीं हो सकते थे क्योकि तारीख 19 जनवरी, 2010 को अधिसूचित नियमों के द्वितीय संशोधन द्वारा 5 वर्ष के बजाय 7 वर्ष के अनुभव का उपबंध करते हुए अर्ह मापदंड में परिवर्तन कर दिया गया था । इसलिए, याची वर्ष 2008 की 1114 रिक्तियों में प्रोन्नति के लिए विचार नहीं किए जा सकते थे जब तक कि बाधा जो तारीख 2 अप्रैल, 2009 को अधिसूचित नियमों के प्रथम संशोधन द्वारा सृजित किए गए थे, जिसके द्वारा पांच वर्षों की अर्हता से दो वर्षों की अवधि अपवर्जित करना अभिखंडित कर दिया गया है ।

7. श्री पी. एस. बघेल ने **भारत संघ** बनाम **तुषार रंजन मोहन्ती और**

अन्य[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि संविधान, 1950 के अनुच्छेद 309 के अधीन नियम भूतलक्षी प्रभाव से बनाए जा सकते हैं किन्तु ऐसे नियम बनाने की शक्ति का प्रयोग वैध संविधि या संविधान के अधीन व्यक्ति में निहित अधिकार की अकृतता में प्रयोग नहीं किए जा सकते हैं । उन्होंने **आर. एस. गर्ग** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[2] वाले मामले में दिए गए निर्णय का भी अवलंब लिया जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय ने "विधि में दुर्भावना" और "तथ्य में दुर्भावना" के बीच विभेद को स्पष्टीकृत किया और यह अभिनिर्धारित किया कि असम्यक् जल्दबाजी में एक व्यक्ति के पक्ष में नियमों में छूट देने के पश्चात् प्रोन्नति करना दुर्भावना की उपधारणा बनती है इसके अतिरिक्त जब उससे ज्येष्ठ अन्य अभ्यर्थी जो उन्हीं मापदंडों को पूरा करते हैं जहां कोई ज्येष्ठता सूची तैयार नहीं की गई है, उन्हें अपवर्जित कर दिया गया था । सम्पूर्ण कार्यवाही व्यक्तिगत हित को ध्यान में रखते हुए की गई थी न कि लोक हित को ध्यान में रखते हुए की गई थी । **आर. एस. गर्ग** (उपर्युक्त) वाले मामले में, राज्य सरकार ने प्रत्यर्थी सं. 3 की सेवाओं को विनियमित करने के लिए उत्तर प्रदेश श्रम विभाग (कारखाना और बायलर खंड) अधिकारी सेवा नियम, 1980 में संशोधन करते हुए नियमों में छूट प्रदान की, जिसकी नियुक्ति 1975 में श्री आर. एस. गर्ग के विरुद्ध हुई थी जिनकी नियुक्ति 1978 में हुई थी और उसे अनुसूचित जाति अभ्यर्थी की प्रोन्नति के लिए विशेष उपबंध करते हुए प्रोन्नति दी । माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि राज्य सरकार, सेवाओं के विनियमितीकरण द्वारा नियम या कार्यपालक निर्देशों को जारी नहीं कर सकती है । यह संविधान, 1950 के अनुच्छेद 309 के अधीन बनाए गए नियमों के अतिक्रमण में होगा और संविधान, 1950 के अनुच्छेद 14 और 16 के अधीन संवैधानिक स्कीम में समानता के उपबंधों के विरोध में होगा । तदर्थ आधार पर प्रत्यर्थी सं. 3 की नियुक्ति नियमों के अपेक्षित नहीं है । वह किसी भी तरह से अस्थायी या स्थानापन्न पद धारित नहीं करता था । विनियमितीकरण मात्र अपीलार्थी श्री आर. एस. गर्ग के दावे को असफल बनाने के लिए ही निदेशित था । यह अभिनिर्धारित किया कि दुर्भावनापूर्ण विधिक अर्थों में अभिप्राय ऐसी दुर्भावना से है जिसे सआशय गलत तौर पर किए गए कार्य की उपधारणा की जा

---

[1] (1994) 5 एस. सी. सी. 450.

[2] (2006) 6 एस. सी. सी. 430.

सकती है । किन्तु, यह बिना किसी उचित कारण या माफी या युक्तियुक्त या संभाव्य कारणों में से किसी एक के द्वारा किया जाता है । तथापि, तथ्य में किसी दुर्भावना के अभाव में भी, विधि में दुर्भावना के सिद्धांत का अवलंब लिया जा सकता है ।

8. विद्वान् अपर महाधिवक्ता श्री सतीश चतुर्वेदी ने यह कथन किया कि पूर्व में निरीक्षक (सिविल पुलिस) के पद पर प्रोन्नति/चयन तारीख 5 नवम्बर, 1965 के शासकीय आदेश में अन्तर्विष्ट उपबंधों के अनुसार होता था जिसमें उन व्यक्तियों जो उनकी सेवा अभिलेखों की परीक्षा करने के पश्चात् अर्ह पाए जाते थे, में से विभागीय चयन समिति द्वारा साक्षात्कार के माध्यम से प्रोन्नति करने के लिए उपबंध किया गया है । अंक उस मेरिट सूची के आधार पर नियत मानकों के अनुसार दिए जाते थे जिन्हें रिक्तियों की संख्या पर विचार करने के पश्चात् तैयार किया जाता था और मेरिट सूची में स्थान पाने वाले पदधारियों को स्थानापन्न निरीक्षक के रूप में प्रोन्नति दी जाती थी । वर्ष 1997 में तारीख 5 नवम्बर, 1965 के शासकीय आदेश के अनुसरण में किए गए चयन को चुनौती दी गई थी । श्रीमती शकुन्तला शुक्ला द्वारा फाइल 1997 की रिट याचिका सं. 20716 को इस निर्देश के साथ मंजूर कर लिया गया कि संविधान, 1950 के अनुच्छेद 309 के अधीन बनाए गए उत्तर प्रदेश सरकारी सेवा प्रोन्नति नियम, 1994 में विहित प्रक्रिया का अनुसरण किया जाए । 1998 की विशेष अपील सं. 191 को इस न्यायालय के खंड न्यायपीठ द्वारा खारिज कर दिया गया था । तथापि, माननीय उच्चतम न्यायालय ने विशेष अपील के साथ ही विद्वान् एकल न्यायाधीश के निर्णयों को अपास्त करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि उत्तर प्रदेश सरकारी सेवा प्रोन्नति नियम, 1994 के उपबंध पुलिस विभाग में लागू नहीं होते हैं । **चन्द्र प्रकाश तिवारी** बनाम **शकुन्तला शुक्ला और अन्य**[1] वाले मामले में उत्तर प्रदेश पुलिस अधिनियम, 1861 के अधीन नियम बनाने की राज्य सरकार की शक्ति को कायम रखा गया था । इसके पश्चात् उत्तर प्रदेश पुलिस अधिनियम, 1861 की धारा 2 के अधीन जारी तारीख 24 जुलाई, 2003 के शासकीय आदेश द्वारा उप-निरीक्षक के पद से निरीक्षक के पद पर प्रोन्नति विभागीय चयन समिति द्वारा उस मेरिट के आधार पर किया गया जिसमें तत्कालीन मौजूद रिक्तियों के लिए कई अभ्यर्थियों को चार बार साक्षात्कार के लिए बुलाया गया था तथा साक्षात्कार और सेवा अभिलेखों के आधार पर मेरिट सूची तैयार की गई थी । वर्ष

[1] 1997 की रिट याचिका सं. 20716.

2005 में निरीक्षक के पद पर प्रोन्नतियां तारीख 24 जुलाई, 2003 के शासकीय आदेश के अनुसार की गई थीं । राज्य सरकार ने वर्ष 1997 और वर्ष 2005 में चयन में अर्जित अनुभवों तथा वस्तुनिष्ठता, पारदर्शिता, समानता और निष्पक्षता के सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, उत्तर प्रदेश पुलिस अधिनियम, 1861 की धारा 2 सपठित धारा 46(2) के अधीन उत्तर प्रदेश उप-निरीक्षक और निरीक्षक (सिविल पुलिस) सेवा नियम, 2008 अधिसूचित करते हुए तारीख 2 दिसम्बर, 2008 को अधिसूचना जारी की जिसके द्वारा सभी मौजूद नियमों और शासकीय आदेशों को अधिक्रांत कर दिया गया था । नियम 5(2) में उप-निरीक्षकों से निरीक्षकों के पद पर प्रोन्नति के लिए अर्हता का उपबंध किया गया था । यह नियम निम्नलिखित उद्धृत है :–

> "5(2) बोर्ड द्वारा मूल रूप से नियुक्त उप-निरीक्षकों में से विभागीय परीक्षा के आधार पर प्रोन्नति द्वारा निरीक्षक नियुक्त करना, जिन्होंने भर्ती वर्ष के प्रथम दिन को इस प्रकार की पांच वर्षों की सेवा पूरी कर ली है ।
>
> टिप्पण – उप-निरीक्षक (अध्यापक) के पद, मूल रूप से नियुक्त उप-निरीक्षकों में से स्थानांतरण द्वारा भरा जाएगा जिन्होंने सरकार द्वारा समय-समय पर यथाविहित शिक्षा शास्त्र में कोर्स पूरा किया है ।"

9. नियम 3(ढ) के अधीन भर्ती वर्ष को परिभाषित किया गया है, इस नियम के अधीन कलैण्डर वर्ष के जुलाई के प्रथम दिन से आरम्भ बारह माह की अवधि से अभिप्रेत है ।

10. तत्पश्चात्, नियमों में उत्तर प्रदेश उप-निरीक्षक और निरीक्षक (सिविल पुलिस) (प्रथम संशोधन) सेवा नियम, 2009 जिसे तारीख 2 अप्रैल, 2009 को अधिसूचित किया गया, द्वारा संशोधन किया गया जिसमें परिवीक्षा पर दो वर्षों की अवधि को अपवर्जित करने के लिए उपबंध किया गया है । संशोधित नियम निम्नलिखित उद्धृत है :–

> "5(2) बोर्ड द्वारा मूल रूप से नियुक्त उप-निरीक्षकों में से विभागीय परीक्षा के आधार पर प्रोन्नति करना, जिन्होंने भर्ती वर्ष के प्रथम दिन को इस प्रकार की सेवा में से परिवीक्षा अवधि अपवर्जित करते हुए पांच वर्षों की सेवा पूरी कर ली है ।
>
> उप-निरीक्षक (अध्यापक) के पद, मूल रूप से नियुक्त उप-निरीक्षकों में से स्थानांतरण द्वारा भरा जाएगा जिन्होंने सरकार द्वारा

समय-समय पर यथाविहित शिक्षा शास्त्र में कोर्स पूरा किया है ।"

11. श्री सतीश चतुर्वेदी ने यह निवेदन किया कि परिवीक्षा अवधि, प्रोन्नति के लिए विचार करने वाले अभ्यर्थी की अर्हता की संगणना करने से सही ही अपवर्जित किया गया है । जहां तक परिवीक्षा अवधि का संबंध है, इसे सेवा में सभी अन्य प्रयोजनों के लिए विचार किया जाना चाहिए न कि प्रोन्नति के लिए अभ्यर्थी की अर्हता पर विचार करते समय अवधि संगणना के प्रयोजन के लिए विचार किया जाना चाहिए । यह खंड समान रूप में स्थित सभी व्यक्तियों पर लागू होता है और इस प्रकार इसे लागू करने में कोई मनमानापन नहीं कहा जा सकता । उन्होंने यह निवेदन किया कि संशोधित नियमों में कोई अवैधता नहीं है । नियम शक्त्याधीन हैं और याचियों के मौलिक अधिकारों का अतिक्रमण नहीं करते हैं । यदि याची न्यूनतम अर्हता मानदंड पूरा करते हैं तो वे उन रिक्तियों के लिए प्रोन्नति पाने हेतु आवेदन करने के लिए स्वतंत्र हैं जिसके लिए वे अर्ह हैं । श्री चतुर्वेदी ने यह निवेदन किया कि नियम 2008 का प्रथम संशोधन तारीख 2 अप्रैल, 2009 को अधिसूचित हुआ था और द्वितीय संशोधन तारीख 19 जनवरी, 2010 को अधिसूचित हुआ था । यद्यपि, प्रथम संशोधन के संबंध में पूर्ववर्ती अधिसूचना राजपत्र में प्रकाशन की तारीख से प्रभावी हुआ था तथापि, प्रथम संशोधन के उपबंध तारीख 5 अप्रैल, 2010 को अधिसूचित नियमों के तृतीय संशोधन द्वारा तारीख 2 दिसम्बर, 2008 से भूतलक्षी प्रभाव से प्रभावी बनाए गए थे । श्री चतुर्वेदी ने **मध्य प्रदेश राज्य और अन्य** बनाम **रघुवीर सिंह यादव और अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णयों का अवलंब लेते हुए यह निवेदन किया कि संशोधन करते हुए नियुक्ति के लिए अर्ह योग्यता में परिवर्तन और पूर्ववर्ती अधिसूचना को वापस लेते हुए नए सिरे से भर्ती की प्रक्रिया आरंभ करना नियम बनाने की शक्ति का वैध प्रयोग है । किसी भी अभ्यर्थी में राज्य के विरुद्ध प्रोन्नति का कोई अधिकार निहित नहीं होता है । माननीय न्यायालय ने **पी. महेन्दरन्** बनाम **कर्नाटक राज्य** वाले मामले में दिए गए निर्णय से विभेद किया जिसमें भर्ती के पश्चात् अतिरिक्त योग्यता का निर्धारण अधिसूचित किया गया था और इसे विधि में दूषित अभिनिर्धारित किया था । उन्होंने **वी. के सूद** बनाम **सचिव, नागरिक विमानन**[2], **कर्नल ए. एस. सांगवान** बनाम

---

[1] (1994) 6 एस. सी. सी. 151.

[2] ए. आई. आर. 1993 एस. सी. 2285.

भारत संघ[1], **भारत संघ** बनाम **पुष्पा रानी**[2] और **दिलीप कुमार गर्ग** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[3] वाले मामलों का भी अवलंब लिया ।

12. **भारत संघ** बनाम **पुष्पा रानी** (उपर्युक्त) वाले मामले के पैराग्राफ 29 में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "मामले के इस पहलू पर विचार करने के पूर्व, हमें इस सुस्थिर विधिक प्रास्थिति पर पुनः विचार करना आवश्यक है कि पदों के सृजन और उन्मूलन से संबंधित मामलों, कैडरों को बनाने और उनकी संरचना/पुनर्संरचना करना, भर्ती, योग्यता और चयन के मानदंड के स्रोत/तरीके विहित करना, कर्मचारियों के सेवा अभिलेख का मूल्यांकन करना नियोजन के पूर्णतः क्षेत्राधिकार के भीतर आता है । प्रशासन की क्षमता में सुधार करने के लिए क्या कदम उठाने चाहिएं यह भी नियोजक का आरक्षित अधिकार है । न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग मात्र ऐसे मामलों में ही किया जा सकता है जहां यदि यह दर्शित होता है कि नियोजक की कार्रवाई किसी संवैधानिक या कानूनी उपबंधों के प्रतिकूल है या यह मूल रूप से मनमाना है या यह दुर्भावना के कारण दूषित है । न्यायालय नियोजक के निर्णय के विरुद्ध अपील ग्रहण नहीं कर सकता है और यह निश्चय नहीं कर सकता है कि कोई विशिष्ट पद सीधी भर्ती द्वारा या प्रोन्नति द्वारा या स्थानांतरण द्वारा भरा जाना चाहिए । न्यायालय का भर्ती का वर्गीकरण अवधारित करने में अथवा चयन का मानदंड अधिकथित करने में कोई भूमिका नहीं होती है । न्यायालय के लिए यह भी खुला नहीं होता है कि वह अभ्यर्थियों की मेरिट का तुलनात्मक मूल्यांकन करे । न्यायालय उस तरीके का सुझाव नहीं दे सकता है जिससे नियोजक को प्रशासन की क्षमता में सुधार करने के प्रयोजन के लिए कैडरों की संरचना या पुनर्संरचना करनी चाहिए ।"

13. **मध्य प्रदेश राज्य और अन्य** बनाम **रघुवीर सिंह यादव और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में, कला, वाणिज्य या विज्ञान या इंजीनियरिंग में डिग्री या इंजीनियरिंग में डिप्लोमा की विहित योग्यता के साथ अर्ह अभ्यर्थियों से आवेदन आमंत्रित करते हुए तारीख 27 जुलाई, 1987 को

---

[1] ए. आई. आर. 1981 एस. सी. 1545.

[2] जे. टी. 2008 (8) एस. सी. 474.

[3] जे. टी. 2009 (3) एस. सी. 2002.

एक विज्ञापन प्रकाशित किया गया । लिखित परीक्षा आयोजित की गई और परीक्षाफल घोषित किए गए तथा साक्षात्कार पत्र जारी किए गए । इसी बीच में सरकार ने भारत सरकार और लोक सेवा आयोग की सलाह से नियमों में संशोधन किया और उन पदों में नियुक्ति के लिए अर्ह योग्यता में भौतिक विषय के साथ विज्ञान में डिग्री या इंजीनियरिंग या टैक्नालाजी में डिग्री या इंजीनियरिंग में डिप्लोमा में परिवर्तन कर दिया । चयन लम्बित रहने के दौरान योग्यता में परिवर्तन को चुनौती दी गई । माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि राज्य को भर्ती के लिए योग्यता विहित करने की शक्ति प्राप्त है । संशोधित नियमों के अनुसरण में सरकार ने पूर्ववर्ती अधिसूचना को वापस ले लिया और नए सिरे से भर्ती प्रक्रिया शुरू करने की ईप्सा की । यह किसी अर्जित अधिकार का मामला नहीं था । अभ्यर्थी, जिन्होंने परीक्षा उत्तीर्ण की थी वे तत्समय प्रचलित नियमों के अनुसार अपने दावे पर विचार करने की विधिसम्मत् प्रत्याशा करते थे । संशोधित नियमों का मात्र भूतलक्षी प्रवर्तन था । सरकार परिवर्तित नियमों के अनुसरण में चयन करने और अंतिम भर्ती करने की हकदार है । माननीय उच्चतम न्यायालय ने **पी. महेन्दरन्** बनाम **कर्नाटक राज्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में अर्हता से इस आधार पर विभेद किया कि उस मामले में विहित अतिरिक्त योग्यता को भूतलक्षी प्रभाव नहीं दिया गया था ।

14. **दिलीप कुमार गर्ग और एक अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने **पुष्पा रानी** (उपर्युक्त) और **शासकीय परिसमापक** बनाम **दयानन्द और अन्य**[1] वाले मामलों का अवलंब लेते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 14 की सीमाओं का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए, अन्यथा इससे प्रशासनिक कार्य असंभव हो जाएंगे । प्रशासनिक प्राधिकारीगण अतिरिक्त अर्हताओं को विनिश्चित करने के बेहतर स्थिति में होते हैं और न्यायालय को इसका सम्मान करना चाहिए तथा प्रशासनिक विनिश्चयों में स्वेच्छया हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए ।

15. वर्तमान मामले में, तारीख 2 दिसम्बर, 2008 से प्रवर्तित नियम, 2008 के प्रवर्तन के पूर्व शासकीय आदेशों के अधीन निरीक्षक के पद पर प्रोन्नति के लिए चयन तारीख 5 नवम्बर, 1965 और तारीख 24 जुलाई, 2003 के शासकीय आदेश के अधीन किए जाते थे जिनमें प्रोन्नति के लिए

---

[1] जे. टी. 2008 (11) एस. सी. 467.

अर्हता 10 वर्षों की सेवा उपबंधित थी । दक्षता में सुधार करने और नौजवान व्यक्तियों को बढ़ावा देने के लिए अर्हता की अवधि नियम, 2008 में घटाकर 5 वर्ष कर दी गई थी । तथापि, भर्ती आरम्भ नहीं हुई थी क्योंकि तारीख 2 अप्रैल, 2009 को अधिसूचित नियमों के प्रथम संशोधन जिसमें भर्ती वर्ष के प्रथम दिन को 5 वर्ष की गणना करने में परिवीक्षा अवधि को अपवर्जित करने का उपबंध किया गया था, के पूर्व उन्हें बुलावा नहीं भेजा गया था । याचियों को तारीख 1 जुलाई, 2007 और तारीख 1 जुलाई, 2008 से आरम्भ होने वाले भर्ती वर्ष में रिक्तियों के लिए विचार किए जाने का कोई अधिकार नहीं था । उन्होंने तारीख 1 जुलाई, 2009 से आरम्भ होने वाले भर्ती वर्ष में वर्ष 2008 की 1114 रिक्तियों के लिए अर्ह होने का दावा किया है किन्तु चूंकि भर्ती की प्रक्रिया आरम्भ नहीं हुई थी इसलिए उन्हें कोई अधिकार प्राप्त नहीं हुआ था । याचियों को मात्र प्रोन्नति के लिए विचार किए जाने का अधिकार था । इसी बीच में, सेवा नियम, 2008 तारीख 2 अप्रैल, 2009 को अधिसूचित प्रथम संशोधन द्वारा संशोधित किए गए जिसमें परिवीक्षा अवधि (दो वर्ष) अपवर्जित कर दिया गया और इसके पश्चात्, तृतीय संशोधन द्वारा अर्हता अवधि सात वर्ष के रूप में स्पष्टीकृत की गई । तारीख 19 जनवरी, 2010 को अधिसूचित नियमों के द्वितीय संशोधन द्वारा राज्य सरकार का आशय स्पष्टीकृत करते हुए निरीक्षकों के पद पर विचार किए जाने के लिए उपनिरीक्षकों की मूल नियुक्ति की अर्हता के रूप में भर्ती वर्ष के प्रथम दिन को सात वर्ष की सेवा उपबंधित की गई । तारीख 5 अप्रैल, 2010 के शुद्धिपत्र द्वारा द्वितीय संशोधन के नियम 5(2) के प्रथम खंड को साधारणतः संशोधित किया गया जो त्रुटिपूर्वक प्रकाशित हो गया था । प्रथम खंड मात्र मूल नियम को वर्णित करता है, नियम जैसा तारीख 2 अप्रैल, 2009 को नियमों के प्रथम संशोधन द्वारा संशोधित था । नियमों के तृतीय संशोधन द्वारा उस तारीख से भूतलक्षी प्रभाव से प्रवर्तित किए गए जब नियम तारीख 2 दिसम्बर, 2008 को अधिसूचित हुए थे । सभी संदेहों को दूर करते हुए तृतीय संशोधन द्वारा नियम, 2008 के प्रवर्तन के पूर्व समय-समय पर जारी सभी शासकीय आदेशों और निर्देशों को अभिखंडित कर दिया गया और उन्हें आरम्भ से ही खंडनीय घोषित कर दिया गया । तारीख 19 जनवरी, 2008 को नियमों के द्वितीय संशोधन के साथ पठित तारीख 5 अप्रैल, 2010 की शुद्धिपत्र के पश्चात् नियम 5 में अर्हता मापदंड अब इस प्रकार हैं :–

"बोर्ड द्वारा मूल रूप से नियुक्त उन उप-निरीक्षकों में से

विभागीय परीक्षा के आधार पर प्रोन्नति की जाएगी जिन्होंने भर्ती वर्ष के प्रथम दिन को इस प्रकार की सात वर्ष की सेवा पूरी की है ।"

16. यह सुस्पष्ट है कि राज्य सरकार ने अर्हता मापदंड परिवर्तित करते हुए दस वर्ष से घटाकर सात वर्ष कर दी और सिविल पुलिस के निरीक्षक के रूप में नौजवान और सक्षम व्यक्तियों को विभागीय परीक्षा देने का अवसर प्रदान किया । संशोधन विधायी आशय को स्पष्ट करता है । भर्ती प्रक्रिया, प्रोन्नति के लिए अर्ह व्यक्तियों को बुलावा भेजते हुए आरम्भ की गई । भर्ती आरम्भ करने के बीच में संशोधन से याचियों को नियमों के आधार पर प्रोन्नति का दावा करने का कोई अधिकार प्रदत्त नहीं हो सकता है क्योंकि वे कार्यरत थे जब वे प्रोन्नति के लिए विचार किए जाने हेतु अर्ह हो गए थे ।

17. याचियों ने **ए. ए. काल्टन** बनाम **शिक्षा निदेशक**[1], **एस. एन. नागराजन् और एक अन्य** बनाम **मैसूर राज्य और अन्य**[2], **वाई. वी. रंगैय्या और अन्य** बनाम **जे. श्रीनिवास राव**[3], **पी. गणेश्वर राव और अन्य** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य**[4], **पी. महेन्द्र** बनाम **कर्नाटक राज्य**[5] वाले मामलों में दिए गए निर्णयों के विनिश्चयाधार का सही तौर पर मूल्यांकन नहीं किया है । यह सभी निर्णय उन तथ्यों से संबंधित हैं जिनमें भर्ती या प्रोन्नति प्रक्रिया विज्ञापन जारी करते हुए आरम्भ कर दी गई थी । **एन. टी. देवीन कुट्टी** बनाम **कर्नाटक लोक सेवा आयोग और अन्य**[6] वाले मामले में दिए गए निर्णय के पैरा 11 में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि जहां एक संवर्ग के पदों में सीधी भर्ती के लिए आवेदन आमंत्रित करते हुए विज्ञापन जारी कर दिए गए हैं और विज्ञापन में अभिव्यक्ततः यह कथन है कि चयन मौजूदा नियमों या शासकीय आदेशों के अनुसार किए जाएंगे और आरक्षण की सीमा भी उपदर्शित कर दी गई है तो ऐसी दशा में अभ्यर्थियों का चयन तत्कालीन मौजूद नियमों और शासकीय आदेशों के अनुसार होना चाहिए । अभ्यर्थी जिन्होंने आवेदन किया है और लिखित या मौखिक परीक्षा

---

[1] एम. ए. एन. यू./एस. सी./0047/1983.

[2] एम. ए. एन. यू./एस. सी./0043/1966.

[3] एम. ए. एन. यू./एस. सी./0354/1983.

[4] एम. ए. एन. यू./एस. सी./0357/1988.

[5] (1989) 4 जे. टी. 459.

[6] एम. ए. एन. यू./एस. सी./0240/1990 = ए. आई. आर. 1990 एस. सी. 1233.

दी है, वे विज्ञापन में अन्तर्विष्ट निबंधनों और शर्तों के अनुसरण में चयन के लिए विचार किए जाने हेतु अधिकार निहित कर लेते हैं जब तक कि स्वयं विज्ञापन में इसके प्रतिकूल आशय उपदर्शित नहीं होता है । अभ्यर्थियों का अधिकार विज्ञापन के प्रकाशित होने की तारीख पर ही उद्भूत हो जाता है । तथापि, इन सभी निर्णयों में यह केविएट था कि ऐसी दशा में अभ्यर्थी प्रोन्नति या चयन के लिए पूर्णतः अधिकार नहीं प्राप्त करते हैं । यदि भर्ती नियम में चयन लम्बित रहने के दौरान भूतलक्षी प्रभाव से संशोधन किए जाते हैं तो ऐसी दशा में चयन संशोधित नियमों के अनुसार ही किया जाना चाहिए । विधायी आशय या तो अभिव्यक्त उपबंधों या आवश्यक निहितार्थ द्वारा सुनिश्चित होता है ।

18. **दिल्ली उच्च न्यायालय और एक अन्य** बनाम **ए. के. महाजन और अन्य**[1] वाले नवीनतम मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने पुनः इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या प्रोन्नति के अवसर मात्र से ही नियमों में संशोधन को चुनौती देने का अधिकार हो सकता है और क्या चयन लम्बित रहने के दौरान भूतलक्षी रूप से भर्ती नियमों में संशोधन, संशोधन के पूर्व उद्भूत रिक्तियों पर चयन के लिए लागू होता है । माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "22. इस न्यायालय ने समय लिया और पुनः यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि प्रोन्नति, कर्मचारी का अधिकार नहीं है यह मात्र प्रोन्नति का अवसर है यदि इससे वह प्रभावित होता है तो इस कारण से नियोजक की ओर से की गई कार्रवाई अवैध नहीं हो सकती है और अवैध नहीं होती है । विचार करने का अधिकार एक विशिष्ट समय पर या उसके तत्पश्चात् उद्भूत हो सकता है । मात्र इस कारण से ही विशिष्ट समय पर कर्मचारी की प्रोन्नति पर विचार नहीं होता है, इसका अभिप्राय यह नहीं है कि इससे कर्मचारी की प्रोन्नति पर विचार करने से पूर्णरूपेण इनकार कर दिया जाए ।
>
> 37. अंततः, किन्तु अन्त में इस न्यायालय ने पूर्वोक्त निर्णय में परमादेश रिट जारी नहीं किया । पूर्णरूपेण त्रुटिपूर्ण यह मताभिव्यक्ति की गई कि इस न्यायालय द्वारा परमादेश रिट जारी किया गया था और उससे प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 (इसमें के) द्वारा नियम बनाने की

[1] (2009) 12 एस. सी. सी. 62.

शक्ति को पुनः स्थापित करते हुए अकृत नहीं किया जा सकता है क्योंकि परिस्थितियों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था । आगे की मताभिव्यक्ति भी त्रुटिपूर्ण है कि संशोधन मात्र तभी किया जा सकता है जब परिस्थितियों में परिवर्तन होता है । संशोधन तब भी किया जा सकता है यदि नीति में परिवर्तन होता है । यदि उच्च न्यायालय यह निष्कर्ष निकालता है कि तथ्यात्मक परिस्थितियों में कोई संशोधन करने की आवश्यकता है तो ऐसा संशोधन हमेशा ही किया जा सकता है ।

38. वर्तमान मामले में, तीनों संवर्गों में प्रोन्नति की गतिहीनता के कारण संशोधन करने की आवश्यकता थी, जहां प्राइवेट सचिवालयों की प्रायः उन पर एकाधिकार था । इसलिए, संशोधन करने में कुछ भी गलत नहीं था । इस न्यायालय ने एस. बी. माथुर **बनाम** मुख्य न्यायाधीश, दिल्ली उच्च न्यायालय 1989 अनू. 1 एस. सी. सी. 34 वाले मामले में भी कोई ऐसा परमादेश रिट आदेश जारी नहीं किया था कि प्रोन्नतियां मात्र मौजूदा नियमों के प्रकाश में ही की जाएंगी अन्यथा नहीं । न्यायालय ने साधारणतया नियमों को अनुमोदित कर दिया था क्योंकि वे तब मौजूद थीं जो तीनों संवर्गों के लिए समान स्तर और उनके लिए संयुक्त ज्येष्ठता सूची उपबंधित करती थी । इसका अभिप्राय यह नहीं है कि इस न्यायालय ने यह निदेश दिया था कि मानकों में कोई परिवर्तन हो सकता है अथवा यह कि तीनों संवर्गों से तीन पृथक् ज्येष्ठता सूची नहीं बनाई जा सकती है । हमारी राय में, उच्च न्यायालय द्वारा निर्णय को पूर्णतया समझा गया ।

39. आगे, यदि उच्च न्यायालय ऐसी स्थिति पाता है कि नियम, संशोधन द्वारा परिवर्तित नहीं हो सकता है तो उच्च न्यायालय न केवल संशोधन के भूतलक्षी पहलू को अपितु पूरे संशोधन को गलत अभिनिर्धारित कर सकता है और कर देना चाहिए । किन्तु ऐसा नहीं किया गया । उच्च न्यायालय ने संशोधनों, तीनों संवर्गों के लिए सृजित तीन ज्येष्ठता सूचियों और चक्रानुक्रम प्रोन्नति के सिद्धांतों को अवैध अभिनिर्धारित नहीं किया । संशोधन के मात्र भूतलक्षी प्रभाव को ही गलत पाया ।

40. हम पहले ही यह इंगित कर चुके हैं कि तात्विक गतिहीनता

पर विचार करने के पश्चात् संशोधनों को भूतलक्षी प्रभाव दिया गया था । आगे, नियत तारीख भी सुसंगत थी क्योंकि यह अंतिम प्रोन्नति के तत्काल पश्चात् प्रभावी थी । इसलिए, हम इसके भूतलक्षी पहलू में कोई गलती नहीं पाते हैं और हमारी राय में, उच्च न्यायालय ने गलत तौर पर भूतलक्षी प्रभाव को गलत अभिनिर्धारित किया, इस गलत तर्क पर कि संशोधनों से विचार किए जाने वाले पूर्णतः निहित या अर्जित अधिकार प्रभावित होते हैं । इस मामले में कोई भी ऐसा पूर्णतः अर्जित या निहित अधिकार विचारणीय नहीं है, जो भूतलक्षी संशोधनों द्वारा प्रभावित हो सके । मात्र शर्त यह है कि ऐसे भूतलक्षी संशोधन सांविधानिक तौर पर वैध होने चाहिएं ।

41. एन. टी. देविन कट्टी और अन्य **बनाम** कर्नाटक लोक सेवा आयोग और अन्य (1990) 3 एस. सी. सी. 157 वाले मामले में न्यायालय ने विचार किए जाने वाले अभ्यर्थियों के अधिकार पर विचार किया था । प्रश्न यह था कि यह पक्षकथन कि कौन से नियम लागू होंगे, विशिष्टतया, जब नियमों में संशोधन विज्ञापन जारी होने के पश्चात् किए गए थे । न्यायालय ने स्पष्टतः यह अभिनिर्धारित किया कि ऐसी परिस्थितियों में साधारणतः विज्ञापन की तारीख पर मौजूद नियम ही लागू होंगे, तथापि, यदि नियमों में संशोधन भूतलक्षी प्रभाव से किए जाते हैं तो संशोधित नियम ही लागू होंगे । न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि विज्ञापन की तारीख से ही अभ्यर्थियों के अधिकार निश्चित हो जाते हैं । तथापि, न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि उसे मामले में पूर्ण अधिकार प्राप्त नहीं होते हैं ।

42. न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया कि –

> '11. . . . . यदि चयन लम्बित रहने के दौरान भूतलक्षी प्रभाव से भर्ती नियम संशोधित होते हैं तो उस दशा में चयन संशोधित नियमों के अनुसार ही किया जाना चाहिए ।'

न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया कि –

> '11. . . . . एक अभ्यर्थी जो एक विज्ञापन के अनुसरण में किसी पद के लिए आवेदन करता है तो उसे चयन का कोई निहित अधिकार अर्जित नहीं होता है । किन्तु, यदि वह अर्ह है और अन्यथा सुसंगत नियमों और विज्ञापन में अन्तर्विष्ट निबंधनों के अनुसरण में अन्यथा भी योग्य है तो वह उन नियमों

के अनुसरण में चयन के लिए विचारित होने का निहित अधिकार अर्जित कर लेता है जैसा कि वे विज्ञापन की तारीख पर मौजूद थे । उसे चयन लम्बित रहने के दौरान नियमों के संशोधन पर उस सीमित अधिकार से तब तक वंचित नहीं किया जा सकता जब तक कि संशोधित नियमों को भूतलक्षी प्रभाव नहीं दे दिया जाता है ।'

43. यह निर्णय, मारिपति नागराज और अन्य **बनाम** आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य, (2007) 11 एस. सी. सी. 522 वाले मामले पर भी निर्भर था । इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था कि –

'16. कि राज्य, संविधान, 1950 के अनुच्छेद 309 के परन्तुक के अधीन प्रदत्त अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए भूतलक्षी प्रभाव और भूतलक्षी प्रवर्तन के साथ नियम बनाने का हकदार है । साधारणतः, किसी नियम के अभाव में और वह नियम भी जिसे अभिव्यक्त तौर पर भूतलक्षी प्रभाव दिया गया है, अधिसूचना की तारीख पर यथाअविभावी नियम भी लागू होते हैं । किन्तु यदि कुछ नियमों को भूतलक्षी प्रभाव दिया गया है जो राज्य के क्षेत्राधिकार के भीतर हैं उन्हें असांविधानिक होने के तब तक अपास्त नहीं किया जा सकता है जब तक कि उसके अनुसरण में परिणाम घटित नहीं हो जाएंगे । ऐसी दशा में, लागू नियम, नियम नहीं होंगे जो मौजूद थे किन्तु इन्हें पूर्ववर्ती तारीख से संविधि पुस्तिका में वैध तौर पर नहीं लाया गया हो . . . . ।'

44. वीरेन्द्र सिंह हुड्डा और अन्य **बनाम** हरियाणा राज्य और एक अन्य (2004) 12 एस. सी. सी. 588 वाले मामले में दिए गए निर्णय के पैराग्राफ 45 में इस न्यायालय ने विधानमंडल की वैध विधि बनाने और इसे भूतलक्षी प्रभाव देने की शक्ति और क्षमता को मान्यता दी ताकि इसे पिछले संव्यवहारों में भी आबद्धकर बनाया जा सके । न्यायालय ने पैराग्राफ 67 और 68 में भूतलक्षी प्रभाव के पहलू को स्पष्टीकृत किया और यह निष्कर्ष निकाला कि इस बारे में कुछ भी गलत नहीं है यदि विधानमंडल परिपत्रों के निरसन द्वारा न्यायालय के विनिश्चय के आधार पर नियमों में संशोधन करती है । यह भी अभिनिर्धारित किया कि –

'67..... अभ्यर्थियों का विज्ञापित पदों पर अधिकार होता

है न कि उन पदों पर जो पृथक् विज्ञापन जारी करते हुए बाद में उद्भूत किए जाते हैं । विधानमंडल द्वारा अधिनियमित भूतलक्षी या भविष्यलक्षी वैध विधि को इस आधार पर अधिकारातीत घोषित नहीं किया जा सकता कि यह उन फायदों को अकृत करता है जो अन्यथा प्रयोज्यता के परिणामस्वरूप और ज्येष्ठतर न्यायालय द्वारा स्थापित निर्वचन के परिणामस्वरूप उपलब्ध कराए गए हैं ।

68. अध्यक्ष, रेलवे बोर्ड (उपर्युक्त उद्धृत) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय में विनिर्दिष्टतः निर्णय के पैरा 70 पर विचार किया गया । न्यायालय ने उस मामले में व्यक्त की गई इन मताभिव्यक्तियों को दोहराया कि नियम, जिन्हें पूर्ववर्ती तारीख से उलटे जाने की अपेक्षा की गई है उसमें फायदा अर्थात् प्रोन्नति या वेतनमान मंजूर की गई है या उपलब्ध कराई गई है, को भूतलक्षी प्रभाव के प्रवर्तन की सीमा तक संविधान, 1950 के अनुच्छेद 14 और 16 के अतिक्रमण होने के नाते आक्षेपित किया जा सकता है । हम पहले ही यह इंगित कर चुके हैं कि इसे भूतलक्षी प्रभाव की सीमा तक ही चुनौती दी जा सकती है । तथापि, सुनिश्चित फायदा जैसे प्रोन्नति या वेतनमान या पेंशन की दर आदि देने के लिए भी चुनौती दी जा सकती है । इस न्यायालय ने जम्मू और कश्मीर राज्य **बनाम** त्रिलोकी नाथ खासा (1974) 1 एस. सी. सी. 19 वाले मामले में दिए गए विनिश्चय के प्रति भी निर्देश किया जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि आक्षेपित नियमों द्वारा पहले से ही दिए गए प्रोन्नति को वापस अथवा पहले से ही मंजूर वेतनमान में कटौती नहीं की जा सकती है ।'

45. संक्षेप में, चयन नियमों के बारे में भूतलक्षी या पूर्व प्रभावी प्रवर्तन से संबंधित विधि यह है कि जहां ऐसे संशोधित नियम पहले से ही दिए गए फायदे को प्रभावित करते हैं तो ऐसे नियम मात्र ही भूतलक्षी प्रभाव की सीमा तक अनुज्ञेय नहीं होंगे ।''

19. वर्तमान मामले में, प्रोन्नति पर विचार करने के लिए आवेदकों को आमंत्रित करते हुए भर्ती प्रक्रिया तारीख 31 अक्तूबर, 2009 को आरम्भ की

गई थी । उस तारीख को नियम, 2008 में प्रथम और द्वितीय संशोधन करते हुए विधायी आशय को स्पष्ट करते हुए यह अधिसूचित किया गया था कि मूल रूप से नियुक्त उन उप-निरीक्षकों, जिन्होंने भर्ती वर्ष की प्रथम तारीख पर 7 वर्ष की सेवा पूरी कर ली है, की प्रोन्नति के लिए विचार किया जाएगा । तारीख 2 अप्रैल, 2009 को नियमों के प्रथम संशोधन की अधिसूचना पर अर्हता को ध्यान में रखते हुए, याची एक जुलाई, 2009 तक वर्ष की 1114 रिक्तियों पर प्रोन्नति पर विचार किए जाने का कोई निहित अधिकार अर्जित नहीं करते हैं ।

20. वर्तमान मामले में, विधायी आशय पूर्णतः स्पष्ट है । कोई संदेह, जो उद्‌भूत हो सकते हैं, वह यह है कि क्या परिवीक्षा अवधि का अपवर्जन जो प्रथम और द्वितीय संशोधन करते हुए स्पष्ट किया गया है, वे तारीख 5 अप्रैल, 2010 को अधिसूचित नियमों के तृतीय संशोधन द्वारा भूतलक्षी हैं । वास्तव में, तारीख 5 अप्रैल, 2010 को अधिसूचित नियमों में तृतीय संशोधन मात्र इस आशय को स्पष्टीकृत करते हैं कि सभी पूर्ववर्ती नियम, शासकीय आदेश, प्रशासनिक निर्देश आरम्भतः रद्‌द, अभिखंडित किए जाते हैं और प्रत्याहृत किए जाते हैं ।

21. याचियों ने एक जुलाई, 2009 तक भर्ती वर्ष की 1114 रिक्तियों के लिए विचार किए जाने के लिए कोई अधिकार अर्जित या परिपक्वता प्राप्त नहीं किया है । वे मूल रूप से नियुक्त किए गए हैं किन्तु उन्होंने उन रिक्तियों पर विचारित होने के लिए सात वर्ष की सेवा पूरी नहीं की है और उन्होंने विचार के लिए कोई निहित अधिकार अर्जित नहीं किया है ।

22. रिट याचिका खारिज की जाती है ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

क.

———

अविनाश चन्द्र श्रीवास्तव

बनाम

किरण श्रीवास्तव (श्रीमती)

तारीख 23 अगस्त, 2010

न्यायमूर्ति राकेश तिवारी

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 [सपठित उत्तर प्रदेश शहरी भवन (पट्टा, किराया और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 की धारा 21(1)(क)] – रिट – निर्मुक्ति आवेदन – पूर्ववर्ती किराएदार द्वारा किराएदारी मकान में क्रय द्वारा स्वामित्व अर्जित करना – पश्चात्वर्ती किराएदार द्वारा स्वामित्व को चुनौती देते हुए मकान खाली नहीं करना – बेदखली – यदि पूर्ववर्ती किराएदार द्वारा किराएदारी मकान में क्रय आदि द्वारा वैध तरीके से स्वामित्व अर्जित कर लिया जाता है तो पश्चात्वर्ती किराएदार उसके स्वामित्व को चुनौती देते हुए मकान खाली करने से इनकार नहीं कर सकता है तथा आवश्यकता के आधार पर ऐसे स्वामी द्वारा फाइल निर्मुक्ति आवेदन पर उसे तुरन्त बेदखल कर दिया जाएगा ।

वर्तमान मामले में, याची ने अपर जिला न्यायाधीश, न्यायालय सं. 2 इलाहाबाद द्वारा 2007 की सिविल पुनरीक्षण सं. 262 में पारित तारीख 8 जनवरी, 2010 के निर्णय और आदेश के साथ ही न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा 1999 की एस. सी. सी. वाद सं. 34 में पारित तारीख 9 मई, 2007 के निर्णय और डिक्री को अपास्त करने के लिए 2010 की रिट याचिका सं. 3114, अविनाश चन्द्र श्रीवास्तव बनाम श्रीमती किरण श्रीवास्तव फाइल की है । न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय ने 1999 की एस. सी. सी. वाद सं. 34 में तारीख 9 मई, 2007 के निर्णय और डिक्री द्वारा किराएदार याची को यह निर्देश दिया कि वह अपनी किराएदारी के अधीन प्रश्नगत आवास को खाली करे और दो माह की अवधि के भीतर इसका शांतिपूर्ण कब्जा मकान मालकिन को सौंप दे । पुनरीक्षण न्यायालय ने तारीख 8 जनवरी, 2010 के अपने निर्णय और आदेश द्वारा न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा पारित तारीख 9 मई, 2007 के निर्णय और डिक्री की पुष्टि कर दी । 2010 की रिट याचिका सं. 21442, अविनाश चन्द्र श्रीवास्तव बनाम श्रीमती किरण श्रीवास्तव, को अपर जिला

न्यायाधीश, इलाहाबाद द्वारा 2009 की किराया नियंत्रण अपील सं. 262 में पारित तारीख 19 मार्च, 2010 के निर्णय और आदेश को अभिखंडित करने के लिए फाइल किया गया है, जिसके द्वारा विहित प्राधिकारी/सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड), इलाहाबाद द्वारा 1999 की पी. ए. वाद सं. 3 में पारित तारीख 21 मई, 2009 के निर्णय और डिक्री की पुष्टि करते हुए अपील खारिज कर दी गई थी । पूर्वोक्त निर्णय और आदेश व्यक्तिगत आवश्यकता के आधार पर प्रत्यर्थी की ओर से उत्तर प्रदेश शहरी भवन (पट्टा, किराया और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 की धारा 21(1)(क) के अधीन फाइल निर्मुक्ति आवेदन पर पारित किए गए हैं । आवेदन में मकान के मात्र उसी भाग के अनुतोष के लिए प्रार्थना की गई है और किराएदारी के उसी भाग से बेदखली के लिए ईप्सा की गई है जिसमें मूल किराएदारी याची के पक्ष में सम्पूर्ण मकान के लिए सृजित की गई थी । मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि मकान मालिक श्री के. डी. मिश्रा ने मकान सं. 603/501, पन्ना लाल रोड, कोलोनेलगंज, इलाहाबाद को श्री अविनाश चन्द्र श्रीवास्तव को किराए पर उठाया था । श्रीमती किरण श्रीवास्तव श्री जाह्वी कुमार, जो याची का छोटा भाई है, की द्वितीय पत्नी है । याची ने यह दावा किया कि श्री जाह्वी कुमार वित्तीय रूप से कमजोर था, अतएव, उसने वर्ष 1964 से अनुज्ञप्तिधारी के रूप में उसे अपने मकान में रहने की अनुज्ञा दे दी थी । मकान मालिक श्री के. डी. मिश्रा ने विवादित मकान को तारीख 15 मार्च, 1965 को श्रीमती विजय लक्ष्मी को विक्रय कर दिया । उसने तारीख 15 सितम्बर, 1983 को उक्त मकान श्री नन्द गोपाल वधावन को विक्रय कर दिया, कि उसके बाद तारीख 4 नवम्बर, 1992 को उसकी मृत्यु हो गई और वह अपने पीछे अपनी विधवा, दो पुत्र जिसमें रवि भूषण वधावन सम्मिलित हैं और छह पुत्रियां छोड़ गया । याची द्वारा निचले न्यायालयों में स्थापित मामला यह था कि उसकी प्रथम पत्नी की मृत्यु के पश्चात् उसके छोटे भाई जाह्वी कुमार ने जाति के बाहर श्रीमती किरण पांडे से विवाह कर लिया जिससे याची और उसके भाई के बीच दरार पैदा हो गई जिसने यह अभिकथन करते हुए उसके विरुद्ध प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई कि याची ने न केवल उसे धमकी दी थी अपितु छत का प्रयोग करने के लिए उसके कुटुम्ब सदस्यों को आने-जाने वाले रास्ते को रोक दिया था । याची ने जाह्वी कुमार के विरुद्ध बेदखली के लिए तारीख 21 जुलाई, 1993 को 1993 की मूल वाद सं. 877 फाइल की क्योंकि अनुज्ञप्ति समाप्त कर दी गई थी जो अब तक लम्बित है । याची ने यह दावा किया कि तब जाह्वी कुमार ने याची के आधिपत्य भाग

के उस परिसर में बाहरी लोगों को रखने की कोशिश की जिससे बाध्य होकर उसने जाह्वी कुमार के विरुद्ध 1993 की मूल वाद सं. 1080 फाइल की । उस वाद में अस्थायी व्यादेश मंजूर कर ली गई थी जिसकी पुष्टि उच्च न्यायालय ने कर दी थी । यह वाद अभी तक लम्बित होना कथित है । इसी बीच में श्रीमती किरण पत्नी जाह्वी कुमार प्रत्यर्थी मकान मालकिन ने विवादित मकान को रवि भूषण वधावन से तारीख 4 नवम्बर, 1998 को क्रय कर लिया और मकान मालकिन तथा मकान की स्वामी की हैसियत से याची को 6 माह के भीतर अपनी किराएदारी के अधीन वाले मकान को खाली करने के लिए तारीख 13 जनवरी, 1999 को एक नोटिस दिया । नोटिस में यह प्रकथन था कि सम्पूर्ण मकान उसकी व्यक्तिगत आवश्यकता के लिए अपेक्षित है । प्रत्यर्थी ने पुनः एक अन्य नोटिस तारीख 29 जनवरी, 1999 को याची द्वारा आधिपत्य भाग से याची की बेदखली के लिए इस आधार पर दिया कि उसने उस भाग का उप-पट्टा कर दिया है और खुले स्थान अर्थात् आंगन में किचन का निर्माण करते हुए तात्विक परिवर्तन कर दिया है जिसके कारण उस सम्पत्ति का उपभोग और मूल्य कम और नष्ट हो गया है । इसके पश्चात् याची ने व्यक्तिगत आवश्यकता के आधार पर किराएदार के रूप में उसके द्वारा आधिपत्य मकान के भाग से बेदखली के लिए 1999 की एस. सी. सी. वाद सं. 34 श्रीमती किरण श्रीवास्तव बनाम अविनाश चन्द्र श्रीवास्तव फाइल की थी । एक अन्य आवेदन अधिनियम की धारा 21(1)(क) के अधीन व्यक्तिगत आवश्यकता के आधार पर मकान के उस भाग की निर्मुक्ति के लिए फाइल की गई थी । यह आवेदन 1999 की पी. ए. वाद सं. 3 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया था । 1999 की एस. सी. सी. वाद सं. 34 का याची द्वारा यह लिखित कथन फाइल करते हुए विरोध किया गया कि जाह्वी कुमार और उसका कुटुम्ब अनुज्ञप्तिधारी हैं और उसके द्वारा सम्पत्ति में न कोई तात्विक परिवर्तन किया गया है न ही किसी प्रकार की क्षति कारित की गई है । लिखित कथन में यह भी कथित किया गया कि यह दर्शित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है कि किस प्रकार श्री रवि भूषण वधावन अकेले ही विवादित मकान का विक्रय करने के लिए हकदार था और किस प्रकार प्रत्यर्थी उस सम्पूर्ण मकान का एकमात्र स्वामी हो गया जिसके एक भाग में उसका कुटुम्ब रहता है । उसके बाद प्रत्यर्थी ने 1999 की एस. सी. सी. वाद सं. 34 के वादपत्र में संशोधन के लिए एक आवेदन फाइल किया जिसके द्वारा उसने आवास के उस भाग का ठीक-ठीक वर्णन करते हुए पैराग्राफ 11(क) और 11(ख) जोड़ने की ईप्सा की जिसकी

बेदखली ईप्सित थी । वादपत्र में संशोधन के आवेदन का विरोध करते हुए याची द्वारा फाइल आक्षेप को निचले न्यायालय द्वारा तारीख 19 जनवरी, 2000 के आदेश द्वारा मंजूर कर लिया गया था । याची द्वारा मकान मालकिन के दावे का खंडन करते हुए 1999 की पी. ए. वाद सं. 3 में तारीख 19 अप्रैल, 2001 को लिखित कथन फाइल किया गया । न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय ने तारीख 9 मई, 2007 के अपने आदेश द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि याची ने परिसर में किसी भाग का उप-पट्टा नहीं किया है और न ही उसके द्वारा सम्पत्ति में कोई तात्विक परिवर्तन या क्षति कारित की गई है । तथापि, उन्होंने इस आधार पर बेदखली के लिए वाद को डिक्री कर दिया कि उसका लिखित कथन प्रत्यर्थी के हक और किराया बढ़ाने से इनकार करने की कोटि में आता है । याची के अनुसार यह आदेश बिना अधिकारिता के है । इस बारे में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है कि किस प्रकार रवि भूषण वधावन अकेले ही सम्पत्ति विक्रय करने का हकदार था । सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड)/विहित प्राधिकारी, इलाहाबाद ने तारीख 21 जुलाई, 2009 के आदेश द्वारा प्रत्यर्थी द्वारा फाइल निर्मुक्ति आवेदन को व्यक्तिगत आवश्यकता और तुलनात्मक कठिनाई के आधार पर मंजूर कर लिया था । पूर्वोक्त तारीख 21 जुलाई, 2009 के आदेश से व्यथित होकर, याची ने अपर जिला न्यायाधीश, इलाहाबाद के समक्ष 2009 की किराया नियंत्रण अपील सं. 262 फाइल की, जिसे तारीख 8 जनवरी, 2010 के निर्णय और आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था जिससे व्यथित होकर यह रिट याचिका फाइल की गई है । न्यायालय द्वारा रिट याचिकाएं खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अभिलेखों के परिशीलन से यह प्रकट होता है कि याची के एकमात्र पुत्र ने कालिंदीपुरम्, इलाहाबाद में स्वयं मकान क्रय कर दिया है, जो खाली पड़ा है । उसका पुत्र, सतना, मध्य प्रदेश में कार्य कर रहा है और इसलिए, उत्तर प्रदेश शहरी भवन (पट्टा, किराया और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 की धारा 21(2) के द्वितीय परन्तुक के स्पष्टीकरण को ध्यान में रखते हुए, याची उक्त मकान में किराएदार के रूप में अपने अधिकारों का प्रयोग नहीं कर सकता है । यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि दोनों भाइयों के बीच लम्बे समय से मुकदमेबाजी चल रही है । उनके बीच पिछले लगभग 15 वर्षों से एक दूसरे से अच्छे संबंध भी नहीं हैं । दोनों निचले न्यायालयों ने मकान मालिक के पक्ष में और किराएदार के विरुद्ध तथ्य के एक ही निष्कर्ष निकाले हैं । चूंकि किराएदार

ने याची के कुटुम्ब सदस्यों में से एक काफी पहले से वर्ष 1995 में खाली दशा में मकान अर्जित किया था, इसलिए, याची यह दावा नहीं कर सकता कि 3,500/- रुपए प्रतिमाह की क्षतिपूर्तियां इस आधार पर अत्यधिक हैं कि इस कारण से किराया नहीं बढ़ाया जा सकता कि वह अपने पुत्र द्वारा मकान अर्जित करने के पश्चात् किराएदार का दावा करने के अधिकार से अपवर्जित हो गया है । इसलिए, वह अधिनियम के अधीन बाहरी व्यक्ति के रूप में मकान की क्षतियों के लिए संदाय करे जो किराएदार नहीं है जैसा कि न्यायालय द्वारा नियत किया गया है । इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए कि याची ने इस न्यायालय द्वारा तारीख 25 जनवरी, 2010 को पारित आदेश का भी अनुपालन नहीं किया है, जिसके द्वारा उसे जुलाई, 2010 तक 3,500/- रुपए प्रतिमाह की दर से क्षतिपूर्तियां संदाय करने का निर्देश दिया गया है इसलिए, वह इस न्यायालय की किसी उदारतापूर्ण व्यवहार का हकदार नहीं है । इसलिए, इस संबंध में याची द्वारा उद्धृत मामले लागू नहीं होते हैं । याची के विद्वान् काउंसेल की यह दलील कि प्रत्यर्थी को मकान खाली करना चाहिए और उसके बाद मकान मालिक के रूप में प्रवेश करना चाहिए वह कुछ नहीं है अपितु एक विश्वास है क्योंकि प्रत्यर्थी श्रीमती किरण श्रीवास्तव के पति को उसकी पत्नी द्वारा विवादित मकान क्रय करने के पूर्व कुल किराया 55/- रुपए प्रतिमाह में से 30/- रुपए प्रतिमाह किराया याची संदत्त करता था । यहां यह उल्लेख किया जा सकता है कि स्वर्गीय श्री नन्द लाल वधावन के उत्तराधिकारियों में से किसी ने भी विवादित मकान में किसी हिस्से का दावा नहीं किया है जो उसके द्वारा अपने पुत्र रवि भूषण वधावन को वसीयत किया गया था उसे भी उसके भाइयों और बहनों में से किसी के भी द्वारा अथवा उसकी माता द्वारा भी कोई चुनौती नहीं दी गई है । अतएव, श्री रवि भूषण वधावन को इस सम्पत्ति का प्रत्यर्थी को विक्रय करने का पूर्ण अधिकार था । किसी भी दशा में इसे किराएदार द्वारा प्रश्नगत नहीं किया जा सकता है । उन्होंने यह स्वीकार किया कि नन्दलाल वधावन पिता रवि भूषण वधावन द्वारा रिट याचिका में याची द्वारा फाइल विल पर तर्क देने के पश्चात् विवादित सम्पत्ति में अन्य कुटुम्ब सदस्यों के हिस्से का दावा करते हुए मकान क्रय किया गया था जो स्वयमेव रवि भूषण वधावन के हक से इनकार करने की कोटि में आता है जिसने उसे तारीख 3 जुलाई, 1996 के विक्रय-विलेख द्वारा श्रीमती किरण श्रीवास्तव को अन्तरित किया था जिसने मकान मालिक के रूप में उस मकान में प्रवेश किया था, अतएव, इस संबंध में याची के विद्वान् काउंसेल द्वारा अवलंब लिए गए निर्णय भ्रांतिपूर्ण हैं और वे इन रिट

याचिकाओं के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में लागू नहीं होते हैं । किराएदारी विवादित योग्य नहीं है क्योंकि पक्षकारों के बीच संबंध परिवर्तित हो गए हैं और प्रत्यर्थी का पति जो इसे 3 जुलाई, 1996 को क्रय कर लिया था, मकान मालिक हो गया था । जब एक किराएदार ऐसी कोई संपत्ति क्रय करता है जिसमें वह लम्बे समय से अनुज्ञप्तिधारी के रूप में रह रहा है तब वह उसमें उस हैसियत से नहीं रह सकता है जब वह इसे क्रय कर लेता है । तथापि, वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी ने यह दावा किया है कि उसका पति कुल किराया 55/- रुपए प्रतिमाह में से 30/- रुपए प्रतिमाह का संदाय कर रहा था अतएव, याची का यह दावा कि उसका भाई एक अनुज्ञप्तिधारी था, संदेहपूर्ण है और इसे निचले न्यायालयों के समक्ष साबित नहीं किया गया है, जिन्होंने याची के विरुद्ध निष्कर्ष निकाला है । पूर्ववर्ती यथाकथित, याची द्वारा उद्धृत निर्णयज विधियां, वर्तमान मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में और वर्तमान मामले के तथ्यों से स्पष्टतः सुभिन्न होने के कारण याची की कोई सहायता नहीं करते हैं । इस प्रक्रम पर, याची के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री वी. के एस. चौधरी ने तारीख 19 अगस्त, 2010 को यह निवेदन किया कि उसके मुवक्किल याची ने विवादित आवास खाली करने की अपनी इच्छा व्यक्त की है किन्तु मकान से अन्तरित होने के लिए कुछ समय देने की भी प्रार्थना की है । (पैरा 37, 38, 39, 40 और 41)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2008]	(2008) 7 एस. सी. सी. 530 : **नियाज अहमद खान** बनाम **महमूद रहमत उल्ला खान** ;	25
[2002]	ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 1264 : **शीला** बनाम **फर्म प्रह्लाद राय प्रेम प्रकाश** ;	15
[2000]	(2000) 1 एस. सी. सी. 74 : **हब्बीबुन्ननिशा बेगम** बनाम **दोराई चेत्तियार** ;	18
[1996]	जे. टी. 1996 (1) एस. सी. 467 : **जोगेन्द्र सिंह और एक अन्य** बनाम **श्रीमती जोगिन्दरो और अन्य** ;	34
[1994]	ए. आई. आर. 1994 दिल्ली 212 : **मोहम्मद इलियास और एक अन्य** बनाम **मोहम्मद आदिल और अन्य** ;	33

[1994] (1994) 4 एस. सी. सी. 250 :
अनार देवी (श्रीमती) बनाम **नाथू राम** ; 34

[1985] ए. आई. आर. 1985 एस. सी. 857 :
संत लाल जैन बनाम **अवतार सिंह** ; 19

[1980] 1980 ए. डब्ल्यू. सी. 720 :
जगदीश प्रसाद गुप्ता बनाम **कान्ति देवी** ; 15

[1973] ए. आई. आर. 1973 गुजरात 131 :
नन्द लाल गिरधारी लाल बनाम **गुलाम नवी** ; 21

[1971] ए. आई. आर. 1971 (एफ. बी.) पेज 112 :
बनारसी लाल बनाम **जटा शंकर** ; 15

[1968] ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 438 :
सुश्री एस. सान्याल बनाम **ज्ञान चन्द** ; 18

[1966] ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 629 :
सत्यम् विरजू और अन्य बनाम **पेचेट्टी वेंकन्ना और अन्य** ; 34

[1958] ए. आई. आर. 1958 इला. 847 :
हशमत हुसैन बनाम **सागीर अहमद और अन्य** ; 32

[1956] ए. आई. आर. 1956 इला. 187 :
द्वारका प्रसाद बनाम **सेन्ट्रल टल्काइज** ; 17

[1953] ए. आई. आर. 1953 नागपुर 80 :
अब्दुल हमीद बनाम **भुवनेश्वरी प्रसाद** ; 21

[1914] ए. आई. आर. 1914 इला. 160 :
प्रयाग बनाम **मोने सिंह** ; 21

ए. डब्ल्यू. आर. 24 :
सगीर अनवर बनाम **हशमत हुसैन** । 15

आरम्भिक (सिविल) अधिकारिता : 2010 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 3114 और 21442.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से सर्वश्री वी. के. एस. चौधरी, कुणाल रवि सिंह, एम. के. गुप्ता, विष्णु कुमार गुप्ता और मनोज कुमार गुप्ता

प्रत्यर्थी की ओर से श्री आशीष कुमार श्रीवास्तव

न्यायमूर्ति राकेश तिवारी – पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया ।

2. 2010 की रिट याचिका सं. 3114, 2010 की रिट याचिका सं. 21442 से जुड़ी हुई है । इसके तथ्य एक समान हैं और यह समान पक्षकारों के बीच भी है । 2010 की रिट याचिका सं. 21442 में तारीख 16 अगस्त, 2010 को विद्वान् अधिवक्ता कुणाल रवि सिंह ने इसमें के याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री वी. के. एस. चौधरी द्वारा 2010 की रिट याचिका सं. 3114 में किए गए तर्कों को अंगीकृत किया, अतएव, दोनों रिट याचिकाएं एक साथ विनिश्चित की जानी हैं ।

3. याची ने अपर जिला न्यायाधीश, न्यायालय सं. 2 इलाहाबाद द्वारा 2007 की सिविल पुनरीक्षण सं. 262 में पारित तारीख 8 जनवरी, 2010 के निर्णय और आदेश के साथ ही न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा 1999 की एस. सी. सी. वाद सं. 34 में पारित तारीख 9 मई, 2007 के निर्णय और डिक्री को अपास्त करने के लिए 2010 की रिट याचिका सं. 3114, अविनाश चन्द्र श्रीवास्तव बनाम श्रीमती किरण श्रीवास्तव फाइल की है ।

4. न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय ने 1999 की एस. सी. सी. वाद सं. 34 में तारीख 9 मई, 2007 के निर्णय और डिक्री द्वारा किराएदार याची को यह निर्देश दिया कि वह अपनी किराएदारी के अधीन प्रश्नगत आवास को खाली करे और दो माह की अवधि के भीतर इसका शांतिपूर्ण कब्जा मकान मालकिन को सौंप दे । पुनरीक्षण न्यायालय ने तारीख 8 जनवरी, 2010 के अपने निर्णय और आदेश द्वारा न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा पारित तारीख 9 मई, 2007 के निर्णय और डिक्री की पुष्टि कर दी ।

5. 2010 की रिट याचिका सं. 21442, अविनाश चन्द्र श्रीवास्तव बनाम श्रीमती किरण श्रीवास्तव, को अपर जिला न्यायाधीश, इलाहाबाद द्वारा

2009 की किराया नियंत्रण अपील सं. 262 में पारित तारीख 19 मार्च, 2010 के निर्णय और आदेश को अभिखंडित करने के लिए फाइल किया गया है, जिसके द्वारा विहित प्राधिकारी/सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड), इलाहाबाद द्वारा 1999 की पी. ए. वाद सं. 3 में पारित तारीख 21 मई, 2009 के निर्णय और डिक्री की पुष्टि करते हुए अपील खारिज कर दी गई थी । पूर्वोक्त निर्णय और आदेश व्यक्तिगत आवश्यकता के आधार पर प्रत्यर्थी की ओर से उत्तर प्रदेश शहरी भवन (पट्टा, किराया और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 की धारा 21(1)(क) के अधीन फाइल निर्मुक्ति आवेदन पर पारित किए गए हैं । आवेदन में मकान के मात्र उसी भाग के अनुतोष के लिए प्रार्थना की गई है और किराएदारी के उसी भाग से बेदखली के लिए ईप्सा की गई है जिसमें मूल किराएदारी याची के पक्ष में सम्पूर्ण मकान के लिए सृजित की गई थी ।

6. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि मकान मालिक श्री के. डी. मिश्रा ने मकान सं. 603/501, पन्ना लाल रोड, कोलोनेलगंज, इलाहाबाद को श्री अविनाश चन्द्र श्रीवास्तव को किराए पर उठाया था । श्रीमती किरण श्रीवास्तव श्री जाह्वी कुमार, जो याची का छोटा भाई है, की द्वितीय पत्नी है । याची ने यह दावा किया कि श्री जाह्वी कुमार वित्तीय रूप से कमजोर था, अतएव, उसने वर्ष 1964 से अनुज्ञप्तिधारी के रूप में उसे अपने मकान में रहने की अनुज्ञा दे दी थी ।

7. मकान मालिक श्री के. डी. मिश्रा ने विवादित मकान को तारीख 15 मार्च, 1965 को श्रीमती विजय लक्ष्मी को विक्रय कर दिया । उसने तारीख 15 सितम्बर, 1983 को उक्त मकान श्री नन्द गोपाल वधावन को विक्रय कर दिया, कि उसके बाद तारीख 4 नवम्बर, 1992 को उसकी मृत्यु हो गई और वह अपने पीछे अपनी विधवा, दो पुत्र जिसमें रवि भूषण वधावन सम्मिलित हैं और छह पुत्रियां छोड़ गया ।

8. याची द्वारा निचले न्यायालयों में स्थापित मामला यह था कि उसकी प्रथम पत्नी की मृत्यु के पश्चात् उसके छोटे भाई जाह्वी कुमार ने जाति के बाहर श्रीमती किरण पांडे से विवाह कर लिया जिससे याची और उसके भाई के बीच दरार पैदा हो गई जिसने यह अभिकथन करते हुए उसके विरुद्ध प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई कि याची ने न केवल उसे धमकी दी थी अपितु छत का प्रयोग करने के लिए उसके कुटुम्ब सदस्यों को आने-जाने वाले रास्ते को रोक दिया था ।

9. याची ने जाह्वी कुमार के विरुद्ध बेदखली के लिए तारीख 21 जुलाई, 1993 को 1993 की मूल वाद सं. 877 फाइल की क्योंकि अनुज्ञप्ति समाप्त कर दी गई थी जो अब तक लम्बित है । याची ने यह दावा किया कि तब जाह्वी कुमार ने याची के आधिपत्य भाग के उस परिसर में बाहरी लोगों को रखने की कोशिश की जिससे बाध्य होकर उसने जाह्वी कुमार के विरुद्ध 1993 की मूल वाद सं. 1080 फाइल की । उस वाद में अस्थायी व्यादेश मंजूर कर ली गई थी जिसकी पुष्टि उच्च न्यायालय ने कर दी थी । यह वाद अभी तक लम्बित होना कथित है । इसी बीच में श्रीमती किरण पत्नी जाह्वी कुमार प्रत्यर्थी मकान मालकिन ने विवादित मकान को रवि भूषण वधावन से तारीख 4 नवम्बर, 1998 को क्रय कर लिया और मकान मालकिन तथा मकान की स्वामी की हैसियत से याची को 6 माह के भीतर अपनी किराएदारी के अधीन वाले मकान को खाली करने के लिए तारीख 13 जनवरी, 1999 को एक नोटिस दिया । नोटिस में यह प्रकथन था कि सम्पूर्ण मकान उसकी व्यक्तिगत आवश्यकता के लिए अपेक्षित है । प्रत्यर्थी ने पुनः एक अन्य नोटिस तारीख 29 जनवरी, 1999 को याची द्वारा आधिपत्य भाग से याची की बेदखली के लिए इस आधार पर दिया कि उसने उस भाग का उप-पट्टा कर दिया है और खुले स्थान अर्थात् आंगन में किचन का निर्माण करते हुए तात्विक परिवर्तन कर दिया है जिसके कारण उस सम्पत्ति का उपभोग और मूल्य कम और नष्ट हो गया है ।

10. इसके पश्चात् याची ने व्यक्तिगत आवश्यकता के आधार पर किराएदार के रूप में उसके द्वारा आधिपत्य मकान के भाग से बेदखली के लिए 1999 की एस. सी. सी. वाद सं. 34 श्रीमती किरण श्रीवास्तव बनाम अविनाश चन्द्र श्रीवास्तव फाइल की थी । एक अन्य आवेदन अधिनियम की धारा 21(1)(क) के अधीन व्यक्तिगत आवश्यकता के आधार पर मकान के उस भाग की निर्मुक्ति के लिए फाइल की गई थी । यह आवेदन 1999 की पी. ए. वाद सं. 3 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया था । 1999 की एस. सी. सी. वाद सं. 34 का याची द्वारा यह लिखित कथन फाइल करते हुए विरोध किया गया कि जाह्वी कुमार और उसका कुटुम्ब अनुज्ञप्तिधारी है और उसके द्वारा सम्पत्ति में न कोई तात्विक परिवर्तन किया गया है न ही किसी प्रकार की क्षति कारित की गई है । लिखित कथन में यह भी कथित किया गया कि यह दर्शित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है कि किस प्रकार श्री रवि भूषण वधावन अकेले ही विवादित मकान का विक्रय

करने के लिए हकदार था और किस प्रकार प्रत्यर्थी उस सम्पूर्ण मकान का एकमात्र स्वामी हो गया जिसके एक भाग में उसका कुटुम्ब रहता है । उसके बाद प्रत्यर्थी ने 1999 की एस. सी. सी. वाद सं. 34 के वादपत्र में संशोधन के लिए एक आवेदन फाइल किया जिसके द्वारा उसने आवास के उस भाग का ठीक-ठीक वर्णन करते हुए पैराग्राफ 11(क) और 11(ख) जोड़ने की ईप्सा की जिसकी बेदखली ईप्सित थी । वादपत्र में संशोधन के आवेदन का विरोध करते हुए याची द्वारा फाइल आक्षेप को निचले न्यायालय द्वारा तारीख 19 जनवरी, 2000 के आदेश द्वारा मंजूर कर लिया गया था ।

11. याची द्वारा मकान मालकिन के दावे का खंडन करते हुए 1999 की पी. ए. वाद सं. 3 में तारीख 19 अप्रैल, 2001 को लिखित कथन फाइल किया गया । न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय ने तारीख 9 मई, 2007 के अपने आदेश द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि याची ने परिसर में किसी भाग का उप-पट्टा नहीं किया है और न ही उसके द्वारा सम्पत्ति में कोई तात्विक परिवर्तन या क्षति कारित की गई है । तथापि, उन्होंने इस आधार पर बेदखली के लिए वाद को डिक्री कर दिया कि उसका लिखित कथन प्रत्यर्थी के हक और किराया बढ़ाने से इनकार करने की कोटि में आता है । याची के अनुसार यह आदेश बिना अधिकारिता के है । इस बारे में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है कि किस प्रकार रवि भूषण वधावन अकेले ही सम्पत्ति विक्रय करने का हकदार था ।

12. सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड)/विहित प्राधिकारी, इलाहाबाद ने तारीख 21 जुलाई, 2009 के आदेश द्वारा प्रत्यर्थी द्वारा फाइल निर्मुक्ति आवेदन को व्यक्तिगत आवश्यकता और तुलनात्मक कठिनाई के आधार पर मंजूर कर लिया था ।

13. पूर्वोक्त तारीख 21 जुलाई, 2009 के आदेश से व्यथित होकर, याची ने अपर जिला न्यायाधीश, इलाहाबाद के समक्ष 2009 की किराया नियंत्रण अपील सं. 262 फाइल की, जिसे तारीख 8 जनवरी, 2010 के निर्णय और आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था जिससे व्यथित होकर यह रिट याचिका फाइल की गई है ।

14. याची के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री वी. के. एस. चौधरी ने यह निवेदन किया कि वाद तभी खारिज किया जाना चाहिए था जब न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता कि याची द्वारा न तो कोई तात्विक परिवर्तन किया गया था न ही उसकी किराएदारी से इतर किसी भाग का उसके द्वारा उप-

पट्टा किया गया था जिनके ही आधार पर प्रत्यर्थी द्वारा उसकी बेदखली की ईप्सा की गई थी । यह तर्क दिया गया कि याची द्वारा फाइल लिखित कथन में हक से कोई इनकार नहीं किया गया है, कि लिखित कथन को पैराग्राफ 1 से 6 मकान मालिक के हक से इनकार करने की कोटि में नहीं आता है क्योंकि इसे मात्र वादी ने अपना हक साबित करने के लिए रखा है और पैराग्राफ 21 उस स्थिति से संबंधित है जिसके कारण किराएदारी के मात्र विवादित भाग के लिए ही वाद फाइल करने के लिए हेतुक उद्भूत हुआ । यह निवेदन किया कि मकान मालिक और किराएदार का संबंध उसके अधिभोग के अधीन विवादित भाग के लिए मौजूद नहीं कहा जा सकता और यह कि लिखित कथन का पैराग्राफ 24 विवादित मकान का विक्रय करने के लिए श्री रवि भूषण वधावन के अधिकारों से संबंधित है क्योंकि वह उन 9 उत्तराधिकारियों में से एक है जिसे उनके पिता स्वर्गीय नन्दलाल वधावन की मृत्यु के पश्चात् सम्पत्तियों में हिस्सा मिला था । अतएव, उसे विक्रय-विलेख में निर्दिष्ट अभिकथित 'विल' के आधार पर प्रत्यर्थी को विवादित सम्पूर्ण मकान का विक्रय करने के लिए कोई विधिक अधिकार नहीं था जो प्रथमदृष्ट्या न तो दर्शित होता है न ही इसे निचले न्यायालयों में फाइल या साबित किया गया है । लिखित कथन के पैराग्राफ 29 में यह कथित है कि वादी को यह साबित करना चाहिए कि किस प्रकार वह सम्पूर्ण मकान का दावा कर रही है और न केवल अपने विक्रेता श्री रवि भूषण वधावन के हिस्से मात्र को, जिसका उसने विधिक अभिवाक् किया है और यह मकान मालिक के हक के इनकार की कोटि में नहीं आता है ।

15. इस दलील के समर्थन में विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री वी. के. एस. चौधरी ने **जगदीश प्रसाद गुप्ता** बनाम **कान्ति देवी**[1], **सगीर अनवर** बनाम **हशमत हुसैन**[2], **शीला** बनाम **फर्म प्रह्लाद राय प्रेम प्रकाश**[3] तथा **बनारसी लाल** बनाम **जटा शंकर**[4] वाले मामलों में दिए गए विनिश्चयों का अवलंब लिया है ।

16. उसके बाद, उन्होंने यह निवेदन किया कि उत्तर प्रदेश शहरी भवन (पट्टा, किराया और बेदखली विनियमन) अधिनियम, 1972 की धारा

---

[1] 1980 ए. डब्ल्यू. सी. 720.

[2] ए. डब्ल्यू. आर. 24.

[3] ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 1264.

[4] ए. आई. आर. 1971 (एफ. बी.) 112.

20(2) के उपबंधों के अधीन किराएदारी का अवधारण उस आधार पर किराएदारी के अवधारण से संबंधित है यदि इसका समपहरण हो जाता है न कि नोटिस दिए जाने पर और यह कि इस संबंध में सम्पत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 111 खंड (छ) विनिर्दिष्ट है । उनके अनुसार, किराएदारी का अवधारण समपहृत के रूप में पट्टा करने के आशय से पट्टागृहीता द्वारा लिखित में नोटिस दिए जाने के पश्चात् ही किया जाता है और इस प्रकार का नोटिस दिया जाना सम्पत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 111 के खंड (छ) में निर्दिष्ट है न कि अन्य किसी प्रकार से दिया गया नोटिस । यह कथित है कि क्योंकि इस प्रकार का कोई नोटिस नहीं दिया गया था और वाद पहले ही फाइल किया जा चुका था, अतएव, किराएदारी समपहृत हो जाना चाहिए था और यह कि इन परिस्थितियों में लिखित कथन में किए गए कथन को मात्र इसी प्रकाश में देखा जाना चाहिए कि प्रत्यर्थी मात्र इनकार करना चाहता था न कि इससे इनकार किया । यह कथित है कि उसने वादी को किराया संदत्त किया क्योंकि उसने स्वामियों की ओर से इसकी मांग की थी यह कार्य किसी अभिधारी की कोटि में नहीं आता है क्योंकि परिस्थितियों में ऐसा मूल किराएदारी के लिए ही हो सकता है न कि उस विवादित मकान के तात्पर्यित आधे भाग के लिए जिसमें जाह्वी वर्ष 1964 से अनुज्ञप्तिधारी के रूप में रह रहा था इस कारण से कि परिसरों के स्वामी भिन्न-भिन्न हैं इसलिए उनमें से मात्र एक व्यक्ति ही स्वामियों की ओर से किराया ले रहा था ।

17. उसके बाद, याची के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि उपयोग और उपभोग की क्षतियों के लिए किराए में वृद्धि नहीं की जा सकती यदि पट्टा अधिनियम द्वारा विनियमित है । उन्होंने इस बारे में **द्वारका प्रसाद** बनाम **सेन्ट्रल टल्काइज**[1] तथा कई अन्य मामलों का भी अवलंब लिया ।

18. उन्होंने अगला निवेदन यह किया कि किराएदारी आपत्ति योग्य है और परिसर के किसी भाग की बेदखली के लिए वाद फाइल नहीं किया जा सकता है । न तो कोई नवीयन अभिकथित है अथवा कानाफूसी है न ही ऐसा कोई वादियों का पक्षकथन है । इस संबंध में, उन्होंने **हब्बीबुन्ननिशा बेगम** बनाम **दोराई चेत्तियार**[2] और **सुश्री एस. सान्याल** बनाम

---

[1] ए. आई. आर. 1956 इला. 187.

[2] (2000) 1 एस. सी. सी. 74.

ज्ञान चन्द[1] वाले मामलों का अवलंब लिया ।

19. याची के विद्वान् काउंसेल ने यह तर्क दिया कि वादी और उसका पति अनुज्ञप्तिधारी हैं । उन्होंने 1996 की रिट याचिका सं. 40101, जाह्वी कुमार बनाम जिला न्यायाधीश, इलाहाबाद वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया जिसमें न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि जब भी अनुज्ञप्तिधारी कोई सम्पत्ति इसके स्वामी से क्रय करता है तो उसे उसके अनुज्ञापक से तब तक बेदखल नहीं किया जा सकता है जब तक कि वह उसे खाली कब्जा नहीं सौंप देता है । उनके अनुसार, यह अभिवाक् मामले की जड़ तक जाता है और उन्होंने इस संबंध में **संत लाल जैन** बनाम **अवतार सिंह**[2] वाले मामले का भी अवलंब लिया ।

20. अंततः, यह तर्क दिया कि स्वर्गीय नन्द किशोर वधावन की विधवा के अलावा दो पुत्र और छह पुत्रियां हैं और यह कि यह विल जो स्वर्गीय श्री नन्द लाल वधावन द्वारा निष्पादित की गई कथित है, को प्रकाश में नहीं लिया गया है क्योंकि मकान मालिकों में से एक व्यक्ति जिसकी सम्पत्ति में मात्र 1/9 हिस्सा है, से सम्पत्ति क्रय किया गया है तो उसे वैध नोटिस नहीं दिया जा सकता अथवा उसकी बेदखली के लिए वाद फाइल नहीं किया जा सकता ।

21. अपनी दलील के समर्थन में याची के विद्वान् काउंसेल ने **प्रयाग** बनाम **मोने सिंह**[3], **नन्द लाल गिरधारी लाल** बनाम **गुलाम नवी**[4] और **अब्दुल हमीद** बनाम **भुवनेश्वरी प्रसाद**[5] वाले मामलों का अवलंब लिया है ।

22. याची के विद्वान् काउंसेल श्री मंजरी सिंह ने तारीख 22 अप्रैल, 2010 के अनुपूरक शपथपत्र द्वारा विक्रय-विलेख को अभिलेख पर लाए जो विक्रेता स्वर्गीय नन्द गोपाल वधावन, निवासी 3 दरभंगा केस्टल कम्पाउंड इलाहाबाद द्वारा श्रीमती किरण श्रीवास्तव पत्नी श्री जाह्वी कुमार श्रीवास्तव उर्फ सरस कुमार बेरागी, निवासी मकान सं. 603/501, कोलोनेल गंज, इलाहाबाद के पक्ष में तारीख 3 जुलाई, 1996 को निष्पादित किया जाना कथित है ।

---

[1] ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 438.
[2] ए. आई. आर. 1985 एस. सी. 857.
[3] ए. आई. आर. 1914 इला. 160.
[4] ए. आई. आर. 1973 गुजरात 131.
[5] ए. आई. आर. 1953 नागपुर 80.

23. उक्त विक्रय-विलेख के सुसंगत उपबंध इस प्रकार हैं :–

"जबकि श्री नन्द गोपाल वधावन, विक्रेता प्रथम पक्षकार के पिता, ने 20,000/- रुपए के कुल विक्रय प्रतिफल के एवज में तारीख 9 सितम्बर, 1993 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख द्वारा स्वयं अर्जित पूर्णरूपेण धन से पूर्वोक्त मकान सं. 603/501 कोलोनेल गंज, इलाहाबाद के साथ भवन और संलग्न भूमि को इसके पूर्ववर्ती स्वामी श्रीमती विजय लक्ष्मी, पत्नी श्री कृष्ण मोहन वर्मा से क्रय किया जिसका वर्णन इस विलेख के अंत में है ।

जबकि श्री नन्द गोपाल वधावन ने अपने जीवनकाल के दौरान तारीख 14 अगस्त, 1992 को विल निष्पादित की और तद्द्वारा पूर्वोक्त मकान सं. 603/501, कोलोनेल गंज, इलाहाबाद के साथ भवन और संलग्न भूमि को विक्रेता प्रथम पक्षकार श्री नन्द गोपाल मृत तारीख 4 नवम्बर, 1992 के पक्ष में वसीयत किया गया और श्री नन्द गोपाल वधावन की मृत्यु के पश्चात् विक्रेता प्रथम पक्षकार इस विलेख के अंत में पूर्णरूपेण वर्णित पूर्वोक्त मकान सं. 603/501, कोलोनेल गंज, इलाहाबाद का कब्जे सहित अनन्य स्वामी हो गया । यह कथित है कि स्वर्गीय नन्द गोपाल वधावन, कोलोनेल गंज में मात्र एक मकान अर्थात् प्रश्नगत मकान का स्वामी था ।

जबकि विक्रेता प्रथम पक्षकार प्रश्नगत सम्पत्ति से समुचित विवरणी नहीं प्राप्त कर रहा है क्योंकि वे पुराने किराएदारों के आधिपत्य में है और उसे धन उधार लेने की भी आवश्यकता है, इसलिए, उसने पूर्वोक्त प्रश्नगत सम्पत्ति का विक्रय करने का विनिश्चय किया जो इस विलेख के अंत में पूर्णतया वर्णित हैं । विक्रेता प्रथम पक्षकार का विचार जानते हुए क्रेता द्वितीय पक्षकार ने पूर्वोक्त प्रश्नगत सम्पत्ति के विक्रय प्रतिफल के रूप में 3,00,000/- रुपए (तीन लाख रुपए) में प्रस्थापित किया जो नितान्त युक्तियुक्त है और उतनी या पूर्वोक्त रकम से अधिक रकम संदाय करने के लिए कोई अन्य व्यक्ति तैयार नहीं है और विक्रेता प्रथम पक्षकार ने क्रेता द्वितीय पक्षकार के पक्ष में पूर्वोक्त मकान सं. 603/501, कोलोनेल गंज, इलाहाबाद के साथ भवन और संलग्न भूमि कुल क्षेत्र 113.24 वर्ग मीटर माप 39 गज x 31.5 गज जो इस विलेख के अंत में पूर्णरूपेण वर्णित है, का विक्रय करने का विनिश्चय किया ।

अब इस विलेख में निम्नलिखित कथन किए जाते हैं –

1. क्रेता द्वितीय पक्षकार द्वारा संदत्त 3,00,000/- रुपए (तीन लाख रुपए मात्र) के प्रतिफल, लेखा अदाता बैंकर चैक संख्या 483774/931, तारीख 1 जुलाई, 1996, इंडियन ओवरसीज बैंक, इलाहाबाद द्वारा पूर्वोक्त विक्रेता श्री रवि भूषण वधावन (तद्द्वारा जिसकी प्राप्ति पर विक्रेता प्रथम पक्षकार को जानकारी हुई) के पक्ष में विक्रेता प्रथम पक्षकार को संदत्त किया गया । तद्द्वारा, कब्जे सहित अनन्य स्वामी के रूप में विक्रेता प्रथम पक्षकार ने विक्रय के माध्यम से मकान संख्या 603/501, कोलोनेल गंज, इलाहाबाद के साथ भवन और संलग्न भूमि कुल क्षेत्र 113.24 वर्ग मीटर माप 39 गज x 31.5 गज जो इस विलेख के अंत में पूर्णरूपेण वर्णित है, क्रेता द्वितीय पक्षकार को अन्तरित किया जिससे पूर्ण स्वामी के रूप में क्रेता द्वितीय पक्षकार ने उसे क्रय कर लिया ।

2. विक्रेता प्रथम पक्षकार ने क्रेता द्वितीय पक्षकार के साथ निम्नलिखित प्रसंविदा की –

(i) कि क्रेता द्वितीय पक्षकार द्वारा उक्त परिसरों में शांतिपूर्ण प्रवेश और भूमि का उपयोग किया जाएगा, विक्रेता प्रथम पक्षकार या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा बिना किसी हस्तक्षेप या बाधा के, जो उसके माध्यम से या उसके अधीन दावा करते हों और किसी व्यक्ति या अन्य व्यक्ति द्वारा बिना किसी विधिपूर्ण बाधा या हस्तक्षेप के ।

(ii) कि आज विक्रेता प्रथम पक्षकार, क्रेता द्वितीय पक्षकार को विक्रीत सम्पत्ति का वास्तविक और साम्पत्तिक कब्जा सौंपता है ।

(iii) कि विक्रेता प्रथम पक्षकार के सभी अधिकार, हक और हित क्रेता द्वितीय पक्षकार को अंतरित होते हैं । क्रेता द्वितीय पक्षकार विक्रीत सम्पत्ति का पूर्ण स्वामी हो जाएगी । वह स्वयं अपने खर्चों से सुसंगत अभिलेखों में अपना नाम दर्ज करा सकती है ।

(iv) कि क्रेता द्वितीय पक्षकार किसी भी तरीके से जैसा वह चाहे, विक्रीत सम्पत्ति का उपयोग और उपभोग कर सकती है ।"

24. उन्होंने यह निवेदन किया कि न्यायालय ने तारीख 25 जनवरी, 2010 के आदेश द्वारा याची को यह निर्देश दिया कि वह 4 सप्ताह के भीतर सम्पूर्ण डिक्रीत रकम जमा करे और विवादित आवास के उपयोग और उपभोग की क्षति के रूप में प्रतिमाह 3,500/- रुपए निरन्तर जमा करता रहे मूल किराया, जैसा प्रत्यर्थी द्वारा दावा किया गया है, 55/- रुपए प्रतिमाह है । उपयोग और उपभोग की क्षति के लिए विकसित क्षेत्र में मकान स्थित होने और याची द्वारा आधिपत्य क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए मनमाने तरीके से अधिकथित वृद्धि की गई है ।

25. उसके बाद यह निवेदन किया गया कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने **नियाज अहमद खान** बनाम **महमूद रहमत उल्ला खान**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि रिट याचिकाओं में अन्तरिम मापदंड के रूप में किराएदारों द्वारा किराए की वृद्धि करना समुचित नहीं है । मध्यवर्ती लाभों की विधि के अधीन भी माहवार किराए के आधार पर ही वृद्धि करने की डिक्री की जानी चाहिए । 55/- रुपए प्रतिमाह से किराया बढ़ाकर 3,500/- रुपए प्रतिमाह करना भी मनमाना और अयुक्तियुक्त है तथा बिना अधिकारिता के है । विचारण न्यायालय द्वारा डिक्री में वृद्धि करना अयुक्तियुक्त, मनमाना, दमनात्मक और आतंकित करने वाला है । यह बिना अधिकारिता के है, कि इस प्रकार, यह नोटिस किया गया कि यह याची ही है जिसने अपने छोटे भाई जाह्वी कुमार को आवास उपलब्ध कराया था और वर्ष 1964 से मकान में रहने की अनुज्ञा दी थी । प्रत्यर्थी, जाह्वी कुमार से विवाह करने के पश्चात्, याची की अनुज्ञप्तिधारी के रूप में अपने पति के साथ उसी मकान में रहती थी । उन्होंने याची की परोपकारिता का दुरुपयोग किया । उनके पक्ष में कोई साम्या नहीं है । वस्तुतः, यह याची ही है जिसके साथ गलत हुआ और उसके अच्छे आचरण का दुरुपयोग किया गया । याची का एकमात्र पुत्र मध्य प्रदेश में अध्यापक के रूप में नियोजित है । याची की एकमात्र आय माहवार पेंशन है जो वह अध्यापक के रूप में अपनी सेवानिवृत्ति से प्राप्त कर रहा है । यह उसके लिए संभव नहीं है कि वह अभिकथित मध्यवर्ती लाभों का संदाय या जमा कर सके । उसके पास कुछ बचा नहीं है । अन्तरिम आदेश द्वारा अधिरोपित शर्तें, न्यायालय में जाने हेतु याची के अधिकार से इनकार करने की कोटि में आता है ।

---

[1] (2008) 7 एस. सी. सी. 530.

26. उन्होंने यह भी निवेदन किया कि उत्तर प्रदेश शहरी भवन (पट्टा, किराया और बेदखली विनियमन) अधिनियम, 1972 की धारा 2(छ) के अनुसार, अधिनियम के उपबंध उन भवनों को लागू नहीं होते हैं जिनके किरायों में 2,000/- रुपए से अधिक की वृद्धि की जाती है । किराए में 3,500/- रुपए की वृद्धि परिस्थितियों को देखे बिना की गई है, इस प्रकार न्यायालय किराएदार के हित को संरक्षित करने में असफल रहा है जिसके लिए यह अधिनियमित है ।

27. उन्होंने अगला निवेदन यह किया कि अन्तरिम आदेश पारित करते समय न्यायालय के समक्ष कतिपय तथ्य नहीं रखे गए थे । न्यायालय ने प्रत्यर्थी द्वारा किए गए तथ्यतः गलत कथनों के आधार पर अन्तरिम आदेश पारित किया है । कुछ सुसंगत तथ्य इस प्रकार हैं :–

(क) याची 79 वर्ष का वृद्ध सेवानिवृत्त अध्यापक है, जो अपने माहवार पेंशन पर निर्भर (जीवित) है । बिना उसकी गलती के कारण और बिना किसी विधि के कारण दंड के रूप में किराए में इतनी बड़ी वृद्धि की गई है और जिससे कि मामले की परिस्थितियों में उसका विधिक कार्यवाहियां करने का अधिकार बाधित होगा । वृद्धि अयुक्तियुक्त है और वस्तुतः इससे याची बलपूर्वक मकान से बाहर हो जाएगा ।

(ख) विवादित मकान कोलोनेल गंज क्षेत्र में स्थित है जो इलाहाबाद का अत्यधिक पुराना क्षेत्र है । विवादित मकान 80 वर्षों से अधिक पुराना है जिसके सामने एक खुला नाला है और पीछे एक छोटा ईंट का रास्ता है । जिस क्षेत्र में मकान स्थित है वह विकसित क्षेत्र नहीं है अपितु अति संकुचित और गंदा है ।

(ग) मकान का सम्पूर्ण क्षेत्र लगभग 113.24 वर्ग मीटर है जिसमें संलग्न भूमि भी सम्मिलित है । इसमें से लगभग आधा क्षेत्र प्रयोग में है और प्रत्यर्थी के अधिभोग में है । खुली छत भी प्रत्यर्थी के कब्जे में है । मकान का क्षेत्र छोटा है यदि इसे विचार में लिया जाए तो यह विवादित मकान के आधे से अधिक है जो प्रयोग में है और प्रत्यर्थी के कब्जे में है ।

28. प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री आशीष कुमार श्रीवास्तव ने यह निवेदन किया कि प्रत्यर्थी/मकान मालिकन ने मकान सं. 603/501, कोलोनेल गंज, इलाहाबाद को इसके पहले के स्वामी श्री रवि भूषण वधावन

से तारीख 3 जुलाई, 1996 को रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख के माध्यम से क्रय किया है, कि याची मकान सं. 603/501, कोलोनेल गंज, इलाहाबाद का किराएदार है जिसके अधिभोग में भूमि तल पर चार कमरे, एक शयनयान, एक बरामदा, एक शौचालय, एक स्नानघर और एक रसोईघर, प्रथम तल पर जाने के लिए सीढ़ियां हैं, प्रथम तल पर एक कमरा, प्रथम तल पर एक बालकनी, प्रथम तल पर एक टीन शैड कमरा और द्वितीय तल के ऊपर खुली छत है, विक्रय-विलेख में यह उल्लिखित है कि उक्त मकान को रवि भूषण वधावन के पक्ष में उसके पिता श्री नन्द गोपाल वधावन ने तारीख 14 अगस्त, 1992 की विल द्वारा वसीयत की थी और यह कि प्रत्यर्थी मकान मालकिन द्वारा उक्त मकान क्रय करने के पश्चात् याची ने उसे 55/- रुपए प्रतिमाह की दर से किराया देना प्रारम्भ कर दिया था । वाद सं. 34/99 में याची की मुख्य परीक्षा में इस बारे में एक स्वीकृति है ।

29. उन्होंने यह निवेदन किया कि प्रत्यर्थी को किराया संदाय करते हुए याची ने अपने मकान मालकिन के रूप में प्रत्यर्थी को अभिधारी (विधितः अभिस्वीकृति) माना, कि शब्द 'हक' को उत्तर प्रदेश किराया नियंत्रण अधिनियम, 1972 के अधीन परिभाषित किया गया है, धारा 3(ञ) के अनुसार, भवन के संबंध में 'मकान मालिक' से अभिप्राय उस व्यक्ति से है जिसे किराया देय होता है, कि कुछ महीनों का किराया संदाय करने के पश्चात् याची ने किराया संदाय करना बंद कर दिया और मकान में कुछ तात्विक परिवर्तन कर दिया और इसलिए, प्रत्यर्थी ने याची से मकान खाली करने और उसका कब्जा उसे सौंपने का निवेदन किया, किन्तु याची ने उसके निवेदन पर कोई ध्यान नहीं दिया, कि परिस्थितियों से बाध्य होकर प्रत्यर्थी-मकान मालकिन ने तारीख 29 जनवरी, 1999 को सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 106 के अधीन याची पर एक नोटिस दिया जो उसे तारीख 23 फरवरी, 1999 को तामील हुआ, कि किराएदारी का अवधारण करने के पश्चात्, प्रत्यर्थी-मकान मालकिन ने उत्तर प्रदेश किराया नियंत्रण अधिनियम, 1972 की धारा 20(क) और (ग) के अधीन याची के विरुद्ध बेदखली के लिए एक वाद फाइल किया, कि प्रत्यर्थी-मकान मालकिन द्वारा फाइल उक्त 1999 की वाद सं. 34 में याची-किराएदार ने अपना लिखित कथन फाइल किया जिसमें उसने पैराग्राफ सं. 1, 6, 21, 24 और 29 में मकान मालकिन के हक से इनकार किया, कि जब याची ने प्रत्यर्थी-मकान मालकिन के हक से इनकार किया तो उसने वादपत्र में

संशोधन के लिए एक संशोधन आवेदन फाइल किया जिसे मंजूर कर लिया गया । संशोधन आवेदन मंजूर करने वाले उक्त आदेश के विरुद्ध याची ने किसी भी न्यायालय के समक्ष कोई अपील, पुनरीक्षण या रिट फाइल नहीं की और कि आदेश अंतिम हो गया था, कि याची द्वारा प्रत्यर्थी को किराया संदाय करने का तथ्य न केवल शपथ पर उसके स्वयं कथन से साबित होता है अपितु सूची 13(ग) के अनुसार वाद में फाइल मनी आर्डर कूपन से भी साबित होता है और पुनः इस तथ्य से भी साबित होता है कि याची ने अपनी मकान मालकिन के रूप में प्रत्यर्थी की अभिस्वीकृति दी थी और इसलिए, उसके पश्चात् उसे प्रत्यर्थी के हक से इनकार करने का कोई विधिक अधिकार नहीं है ।

30. उन्होंने अगला निवेदन यह किया कि विद्वान् निचले न्यायालय ने हक से इनकार करने से संबंधित विवाद्यक सं. 4 का विनिश्चय किया और यह सही ही अभिनिर्धारित किया कि याची ने मकान मालिक के हक को अवैध रूप से इनकार किया है और इसलिए, उत्तर प्रदेश किराया नियंत्रण अधिनियम, 1972 की धारा 20(2)(च) के अनुसार याची-किराएदार बेदखली के लिए दायी है ; कि विद्वान् निचले न्यायालय ने विवाद्यक सं. 4 का विनिश्चय करते हुए यह सही ही अभिनिर्धारित किया है कि विक्रय-विलेख और मनी आर्डर कूपनों के परिशीलन से यह सुस्पष्ट है कि याची को अपने मकान मालकिन के रूप में प्रत्यर्थी की अभिस्वीकृति थी और उसने अपने मकान मालिक के रूप में हक रखने वाले किसी अन्य व्यक्ति का भी उल्लेख नहीं किया है और इसलिए, वादी-प्रत्यर्थी का वाद तारीख 9 मई, 2007 को हक से इनकार करने के आधार पर डिक्री कर दिया गया था और यह कि पुनरीक्षण न्यायालय ने तारीख 8 जनवरी, 2010 के अपने आदेश में विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों की पुष्टि कर दी है ।

31. उन्होंने यह भी निवेदन किया कि एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य जिसका उल्लेख किया जाना आवश्यक है वह यह है कि याची के एकमात्र पुत्र ने कालिंदीपुरम् इलाहाबाद में स्वयं अपना मकान क्रय कर लिया है, जो खाली पड़ा है, क्योंकि याची का पुत्र विभाष चन्द्र गांधी ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, मध्य प्रदेश में प्राध्यापक है और वहीं पर रहता है और उक्त मकान खाली पड़ा है और जो याची के रहने के लिए पर्याप्त आवास है । तारीख 16 फरवरी, 1995 का विक्रय-विलेख और निर्धारण खसरा प्रति-शपथपत्र उपाबंध 4 के रूप में इसमें संलग्न है ।

32. उन्होंने यह भी निवेदन किया कि प्रत्यर्थी मकान मालकिन रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख द्वारा मकान क्रय करने के पश्चात् उस सम्पत्ति की स्वामी हो गई और उसके पश्चात् याची द्वारा कुछ महीनों तक 55/- रुपए प्रतिमाह की दर से मकान मालकिन को किराया संदाय करने का तथ्य 'अभिधारी' (मकान मालकिन के हक की अभिस्वीकृति) मानने की कोटि में आता है । यह सुस्थिर विधि है कि एक व्यक्ति मकान मालिक हो सकता है यद्यपि आवास के साम्पत्तिक हक उसमें निहित नहीं होते हैं । धारा 3(ञ) में शब्द 'हक', मकान मालिक के उस हक के प्रति निर्देश करता है कि जिसके आधार पर वह किराएदार की बेदखली का दावा कर सकता है और यह आवास में मात्र साम्पत्तिक अधिकारों को लेने के प्रति ही निर्देश नहीं कर सकता है जो सम्पूर्णतः अतात्विक हो सकता है जहां तक बेदखली के अधिकार का संबंध है । इस दलील के समर्थन में, प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने **हशमत हुसैन** बनाम **सगीर अहमद और अन्य**[1] वाले मामले का अवलंब लिया ।

33. उन्होंने यह भी निवेदन किया कि याची की यह दलील कि रवि भूषण वधावन नन्द गोपाल वधावन के बच्चों में से एक था इसलिए उसे प्रत्यर्थी-मकान मालकिन को प्रश्नगत मकान का विक्रय करने का कोई अधिकार नहीं था क्योंकि उक्त मकान के अन्य सह-हिस्सेदार भी थे, अवैध और अयुक्तियुक्त है क्योंकि स्वयं विक्रय-विलेख में पूर्वोक्त मकान सं. 603/501, कोलोनेल गंज, इलाहाबाद का वसीयत करते हुए श्री नन्द गोपाल वधावन द्वारा निष्पादित तारीख 14 अगस्त, 1992 के विल का उल्लेख है और उक्त विल को निचले न्यायालयों के समक्ष वाद की कार्यवाहियों में याची द्वारा कभी भी चुनौती नहीं दी गई है इसलिए, रवि भूषण वधावन द्वारा प्रत्यर्थी-मकान मालिक के पक्ष में विक्रय-विलेख निष्पादित करने के अधिकार से इनकार करना आधारहीन, अवैध और अयुक्तियुक्त है और यह कि उक्त मकान क्रय करने के पश्चात् प्रत्यर्थी-मकान मालकिन ने पहले के स्वामी के स्थान पर मकान में प्रवेश किया था और याची द्वारा उसे किराया संदाय करने का तथ्य, जैसा कि वाद में सूची 13(ग) के अनुसार फाइल मनी आर्डर कूपनों से सुस्पष्ट है, अभिधारी मानने की कोटि में आता है । याची द्वारा अपने मकान मालकिन के रूप में प्रत्यर्थी को अभिधारी मानने के पश्चात् उसके हक से इनकार नहीं किया जा सकता क्योंकि यह किराएदार के विरुद्ध भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872

[1] ए. आई. आर. 1958 इला. 847.

की धारा 116 द्वारा विबंधन के अधीन वर्जित है । पूर्वोक्त दलीलों के समर्थन में, उन्होंने **मोहम्मद इलियास और एक अन्य** बनाम **मोहम्मद आदिल और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया ।

34. उन्होंने अगला निवेदन यह किया कि किराएदार, किराएदारी आरम्भ होने के दौरान या उसके तत्पश्चात्, अभिधारी या किसी अन्य आचरण द्वारा मकान मालिक के हक की अभिस्वीकृति के पश्चात् अपने मकान मालिक के हक को इनकार करने से विबंधित होता है । उन्होंने **अनार देवी (श्रीमती)** बनाम **नाथू राम**[2], **सत्यम् विरजू और अन्य** बनाम **पेचेट्टी वेंकन्ना और अन्य**[3], **जोगेन्द्र सिंह और एक अन्य** बनाम **श्रीमती जोगिन्दरो और अन्य**[4] वाले मामलों में दिए गए निर्णयों का अवलंब लिया ।

35. उन्होंने यह भी निवेदन किया कि याची का यह तर्क कि मकान मालकिन का पति विभिन्न वादों में उक्त मकान के एक भाग का अनुज्ञप्तिधारी अभिनिर्धारित किया गया था, से वस्तुतः यह अभिप्राय नहीं निकाला जा सकता कि सम्पूर्ण मकान को प्रत्यर्थी-मकान मालकिन द्वारा क्रय कर लिया गया था, कि याची का यह तर्क कि सम्पत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 111(छ) के अनुसार, हक से इनकार करने के आधार पर वाद फाइल करने के पूर्व एक नया नोटिस दिया जाना अपेक्षित था, पूर्णरूपेण अवैध और अयुक्तियुक्त है क्योंकि वाद फाइल करने के पूर्व मकान मालकिन-प्रत्यर्थी ने संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 106 के अधीन नोटिस तामील किया था और उसके पश्चात् वाद फाइल किया था, उस समय याची ने मकान मालकिन के हक से इनकार नहीं किया था और प्रथम बार अपने लिखित कथन में ही उसने हक से इनकार किया, इसलिए, वाद फाइल करने के पश्चात् विधि में ऐसा कोई उपबंध नहीं है जो सम्पत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 111(छ) के अधीन नोटिस देने का उपबंध करती है और कि याची का यह तर्क कि वाद मात्र मकान के उस भाग के ही संबंध में फाइल किया गया था जबकि किराएदारी सम्पूर्ण मकान की थी, भी अवैध और अयुक्तियुक्त है क्योंकि उक्त मकान का क्रय करने के पश्चात् याची-किराएदार और प्रत्यर्थी-मकान मालिक के बीच किराएदारी की संविदा का कोई नवीकरण नहीं किया गया था और

---

[1] ए. आई. आर. 1994 दिल्ली 212.
[2] (1994) 4 एस. सी. सी. 250.
[3] ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 629.
[4] जे. टी. 1996 (1) एस. सी. 467.

इसलिए, बेदखली के लिए वाद मात्र उस भाग के लिए फाइल की गई थी जो याची के अधिभोग में थी और उक्त तथ्य का समर्थन उसके कथन में उसके स्वयं द्वारा की गई इस स्वीकृति से भी होता है कि वह मकान के मात्र एक भाग का ही किराएदार है ।

36. अंततः यह निवेदन किया गया कि दोनों निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए एक ही निष्कर्ष के प्रकाश में और इस तथ्य के प्रकाश में कि याची के पुत्र ने कालिंदीपुरम्, इलाहाबाद में मकान क्रय कर लिया है जो याची को रहने के लिए पर्याप्त आवास है, इसलिए, रिट याचिका सही ही खारिज किए जाने योग्य है ।

37. अभिलेखों के परिशीलन से यह प्रकट होता है कि याची के एकमात्र पुत्र ने कालिंदीपुरम्, इलाहाबाद में स्वयं अपना मकान क्रय कर लिया है, जो खाली पड़ा है । उसका पुत्र, सतना, मध्य प्रदेश में कार्य कर रहा है और इसलिए, उत्तर प्रदेश शहरी भवन (पट्टा, किराया और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 की धारा 21(2) के द्वितीय परन्तुक के स्पष्टीकरण को ध्यान में रखते हुए, याची उक्त मकान में किराएदार के रूप में अपने अधिकारों का प्रयोग नहीं कर सकता है । यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि दोनों भाइयों के बीच लम्बे समय से मुकदमेबाजी चल रही है । उनके बीच पिछले लगभग 15 वर्षों से एक दूसरे से अच्छे संबंध भी नहीं हैं । दोनों निचले न्यायालयों ने मकान मालिक के पक्ष में और किराएदार के विरुद्ध तथ्य के एक ही निष्कर्ष निकाले हैं । चूंकि किराएदार ने याची के कुटुम्ब सदस्यों में से एक से काफी पहले वर्ष 1995 में खाली दशा में मकान अर्जित किया था, इसलिए, याची यह दावा नहीं कर सकता कि 3,500/- रुपए प्रतिमाह की क्षतिपूर्तियां इस आधार पर अत्यधिक हैं कि इस कारण से किराया नहीं बढ़ाया जा सकता कि वह अपने पुत्र द्वारा मकान अर्जित करने के पश्चात् किराएदार का दावा करने के अधिकार से अपवर्जित हो गया है । इसलिए, वह अधिनियम के अधीन बाहरी व्यक्ति के रूप में मकान की क्षतियों के लिए संदाय करे जो किराएदार नहीं है जैसा कि न्यायालय द्वारा नियत किया गया है ।

38. इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए कि याची ने इस न्यायालय द्वारा तारीख 25 जनवरी, 2010 को पारित आदेश का भी अनुपालन नहीं किया है, जिसके द्वारा उसे जुलाई, 2010 तक 3,500/- रुपए प्रतिमाह की

दर से क्षतिपूर्तियां संदाय करने का निर्देश दिया गया है इसलिए, वह इस न्यायालय की किसी उदारतापूर्ण व्यवहार का हकदार नहीं है । इसलिए, इस संबंध में याची द्वारा उद्धृत मामले लागू नहीं होते हैं ।

39. याची के विद्वान् काउंसेल की यह दलील कि प्रत्यर्थी को मकान खाली करना चाहिए और उसके बाद मकान मालिक के रूप में प्रवेश करना चाहिए वह कुछ नहीं है अपितु एक विश्वास है क्योंकि प्रत्यर्थी श्रीमती किरण श्रीवास्तव के पति को उसकी पत्नी द्वारा विवादित मकान क्रय करने के पूर्व कुल किराया 55/- रुपए प्रतिमाह में से 30/- रुपए प्रतिमाह किराया याची संदत्त करता था । यहां यह उल्लेख किया जा सकता है कि स्वर्गीय श्री नन्द लाल वधावन के उत्तराधिकारियों में से किसी ने भी विवादित मकान में किसी हिस्से का दावा नहीं किया है जो उसके द्वारा अपने पुत्र रवि भूषण वधावन को वसीयत किया गया था उसे भी उसके भाइयों और बहनों में से किसी के भी द्वारा अथवा उसकी माता द्वारा भी कोई चुनौती नहीं दी गई है । अतएव, श्री रवि भूषण वधावन को इस सम्पत्ति का प्रत्यर्थी को विक्रय करने का पूर्ण अधिकार था । किसी भी दशा में इसे किराएदार द्वारा प्रश्नगत नहीं किया जा सकता है । उन्होंने यह स्वीकार किया कि नन्द लाल वधावन पिता रवि भूषण वधावन द्वारा रिट याचिका में याची द्वारा फाइल विल पर तर्क देने के पश्चात् विवादित सम्पत्ति में अन्य कुटुम्ब सदस्यों के हिस्से का दावा करते हुए मकान क्रय किया गया था जो स्वयमेव रवि भूषण वधावन के हक से इनकार करने की कोटि में आता है जिसने उसे तारीख 3 जुलाई, 1996 के विक्रय-विलेख द्वारा श्रीमती किरण श्रीवास्तव को अन्तरित किया था जिसने मकान मालिक के रूप में उस मकान में प्रवेश किया था, अतएव, इस संबंध में याची के विद्वान् काउंसेल द्वारा अवलंब लिए गए निर्णय भ्रांतिपूर्ण हैं और वे इन रिट याचिकाओं के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में लागू नहीं होते हैं । किराएदारी विवादित योग्य नहीं है क्योंकि पक्षकारों के बीच संबंध परिवर्तित हो गए हैं और प्रत्यर्थी का पति जो इसे 3 जुलाई, 1996 को क्रय कर लिया था, मकान मालिक हो गया था । जब एक किराएदार ऐसी कोई संपत्ति क्रय करता है जिसमें वह लम्बे समय से अनुज्ञप्तिधारी के रूप में रह रहा है तब वह उसमें उस हैसियत से नहीं रह सकता है जब वह इसे क्रय कर लेता है । तथापि, वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी ने यह दावा किया है कि उसका पति कुल किराया 55/- रुपए प्रतिमाह में से 30/- रुपए प्रतिमाह का संदाय कर रहा

था अतएव, याची का यह दावा कि उसका भाई एक अनुज्ञप्तिधारी था, संदेहपूर्ण है और इसे निचले न्यायालयों के समक्ष साबित नहीं किया गया है, जिन्होंने याची के विरुद्ध निष्कर्ष निकाला है ।

40. पूर्ववर्ती यथाकथित, याची द्वारा उद्धृत निर्णयज विधियां, वर्तमान मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में और वर्तमान मामले के तथ्यों से स्पष्टतः सुभिन्न होने के कारण याची की कोई सहायता नहीं करते हैं ।

41. इस प्रक्रम पर, याची के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री वी. के. एस. चौधरी ने तारीख 19 अगस्त, 2010 को यह निवेदन किया कि उसके मुवक्किल याची ने विवादित आवास खाली करने की अपनी इच्छा व्यक्त की है किन्तु मकान से अन्तरित होने के लिए कुछ समय देने की भी प्रार्थना की है ।

42. कार्यालय को यह निर्देश दिया जाता है कि याची द्वारा विवादित आवास खाली करने की इच्छा को ध्यान में रखते हुए न्यायालय के समक्ष एक आवेदन फाइल करने हेतु उसे समर्थ बनाने के लिए इन रिट याचिकाओं को तारीख 23 अगस्त, 2010 को फाइल पर प्रस्तुत करें जैसी कि याची के विद्वान् काउंसेल द्वारा प्रार्थना की गई है । याची की ओर से विवादित आवास खाली करने के लिए प्रार्थना करते हुए आवेदन फाइल किया गया है । इन परिस्थितियों में, गुणागुणों पर निर्णयज विधियों पर बिना कोई अन्य मताभिव्यक्ति करते हुए याचिकाएं खारिज की जाती हैं । खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

रिट याचिकाएं खारिज की गईं ।

क.

———

दीनानाथ उपाध्याय और अन्य

बनाम

विहित प्राधिकारी और अन्य

तारीख 14 सितम्बर, 2010

न्यायमूर्ति राकेश तिवारी

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 [सपठित 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम सं. 13 की धारा 3(ङ)] – रिट – मामले का अन्तरण – अन्तरण आदेश पारित करने की अधिकारिता पर आक्षेप – मामला विलम्बित करने के लिए आक्षेप फाइल करना – यदि सक्षम प्राधिकारी द्वारा अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए किसी मामले का अन्तरण किया जाता है तथा अभिलेख पर के तथ्यों से यह साबित होता है कि ऐसे अन्तरण आदेश पर आक्षेप मामला विलम्बित करने के आशय से फाइल किया गया है तो ऐसा आक्षेप कायम रखे जाने योग्य नहीं होगा और प्रथमदृष्ट्या ही खारिज कर दिया जाएगा ।

वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थियों द्वारा तारीख 2 अप्रैल, 1999 को फाइल 1999 का निर्मुक्ति आवेदन सं. 5, सोमरु राम बनाम दीनानाथ उपाध्याय और अन्य को मकान मालिक की अनुपस्थिति के कारण तारीख 11 मार्च, 2004 को खारिज कर दिया गया था । इसके पश्चात्, पुनः स्थापित आवेदन फाइल किया गया जिसे तारीख 2 फरवरी, 2007 को मंजूर कर लिया गया और मामले को इसके मूल संख्या में प्रत्यावर्तित कर लिया गया । तत्पश्चात्, मामला तारीख 18 जनवरी, 2010 को चतुर्थ सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड), वाराणसी को अन्तरित कर दिया गया । याचियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि पीठासीन अधिकारी अर्थात् चतुर्थ सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड), वाराणसी, 1999 की पी. ए. वाद सं. 5 का निपटारा करने में असाधारण हित रखते हैं इस कारण से कि उक्त पीठासीन अधिकारी का आवास इलाहाबाद में है जो मकान मालिक अर्थात् दिनेश कुमार वर्मा के पुत्र के आवास के आगे स्थित है जो कृषि संस्थान इलाहाबाद में अध्ययन कर रहा है, कि आवेदक ने अपनी दुकान के अन्दर उसके सगे भाई से दिनेश कुमार वर्मा द्वारा यह कहते हुए संयोग से

सुनकर आश्चर्य हुआ कि वह मामले में उसके पक्ष में आदेश प्राप्त करने की व्यवस्था कर लेगा, कि इस तथ्य की पुष्टि पीठासीन अधिकारी के उस आचरण द्वारा होती है जिन्होंने अन्य मामलों में लम्बे अन्तराल पर तारीखें नियत की हैं किन्तु उसके 1999 के पी. ए. वाद सं. 5 में अति संक्षिप्त तारीख नियत की है । पूर्वोक्त परिस्थितियों में, याचियों ने 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम सं. 13 की धारा 3(ङ) के अधीन अन्तरित आवेदन फाइल किया जिसे तारीख 21 अगस्त, 2010 को जिला न्यायाधीश, वाराणसी द्वारा नामंजूर कर दिया गया यह अभिनिर्धारित करते हुए कि मामला तारीख 18 मई, 2010 को सुनवाई के लिए नियत है और यह भी अभिनिर्धारित किया कि दिनेश कुमार वर्मा पुत्र राजकुमार वर्मा का पीठासीन अधिकारी के साथ कोई संबंध नहीं है । पूर्वोक्त मामलों में अधिकथित निर्णयाधार पर विचार करने के पश्चात् विद्वान् जिला न्यायाधीश ने यह निष्कर्ष निकाला कि मामला अन्तरित करने के लिए आवेदक के अभिकथन में कोई आधार नहीं है और यह कि न्यायालय जिनके समक्ष अन्तरित आवेदन फाइल किया गया है उसे ऐसे आवेदन को स्वीकार करने के पूर्व सभी तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करना चाहिए । जिला न्यायाधीश ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि अन्तरित आवेदन मंजूर करने के लिए कोई आधार नहीं है । अभिलेखों से यह प्रतीत होता है कि विहित प्राधिकारी के अनुसार अधिनियम की स्कीम में ऐसे मामले उपबंधित हैं जिनका अधिनियम के विभिन्न उपबंधों में विहित अवधि के भीतर विनिश्चय करना होता है और इसे देखते हुए लिखत और भावना के अनुसार अधिनियम के उपबंधों के अनुपालन में किराया मामलों में संक्षिप्त तारीखें नियत की जाती हैं और इस प्रयास से अधिनियम के उद्देश्य प्राप्त किए जाते हैं । यही इस आदेश में है जिसे वर्तमान रिट याचिका में चुनौती दी गई है । न्यायालय द्वारा रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान मामले में, याची ने विहित प्राधिकारी/चतुर्थ अपर सिविल न्यायाधीश, वाराणसी के किसी आदेश के विरुद्ध जिला न्यायाधीश के समक्ष अपील नहीं की । किन्तु, मामले के अन्तरण के लिए अधिनियम की धारा 3(ङ) के अधीन अन्तरण आवेदन फाइल किया । जिला न्यायाधीश जो जिला न्यायालय का प्रधान होता है, को एक न्यायालय से अन्य न्यायालय में मामला अन्तरित करने की प्रशासनिक शक्ति होती है । मामले के इस मत को ध्यान में रखते हुए, याची के विद्वान् काउंसेल की यह

दलील कि जिला न्यायाधीश को अन्तरण आवेदन ग्रहण करने की कोई अधिकारिता नहीं है, कायम नहीं रखा जा सकता । इसके अतिरिक्त, यदि जिला न्यायाधीश को कोई अधिकारिता नहीं थी तो याची के पास मामले का अन्तरण कराने के लिए उनके समक्ष अन्तरण आवेदन फाइल करने का कोई कारण नहीं था । इस मत को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय की राय यह है कि याचियों द्वारा उद्धृत मामले इस मामले के वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में लागू नहीं होते हैं । इसके अलावा, पूर्वोक्त दोनों निर्णयों में अधिकथित निर्णयासार उस खंड न्यायपीठ की खोज प्रतीत होती हैं जिसे अनुमति नहीं दी जानी चाहिए । न्यायिक अधिकारियों के विरुद्ध मात्र अभिकथन प्रमाण नहीं होते हैं जब तक कि उन्हें सुआधारित सबूतों द्वारा प्रमाणित नहीं किया जाता है । जिला न्यायाधीश ने यह निष्कर्ष निकाला कि अभिकथन आधारहीन हैं और बिना तर्कसंगत के हैं और यह कि याची के विद्वान् काउंसेल यह दर्शित या सिद्ध करने में समर्थ नहीं रहे हैं कि अधिकारियों के विरुद्ध अभिकथन सत्य हैं या उसकी सत्यता में कोई तथ्य है । उपर्युक्त कथित सभी कारणों से, इस न्यायालय का यह मत है कि 1999 की पी. ए. वाद सं. 5 मामले के कार्यवाहियों को मात्र विलम्ब करने के लिए दुर्भावनापूर्ण आशय से जिसे बेहतर तरीके से वही जानते हैं, फाइल किया गया है और पीठासीन अधिकारी के विरुद्ध किए गए अभिकथन बिना किसी आधार के प्रतीत होते हैं । (पैरा 15, 16, 17, 18 और 19)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2009] (2009) 8 एस. सी. सी. 646 :
नाहर इंडस्ट्रीयल इंटरप्राइजेज लिमिटेड बनाम
हांगकांग संघाई बैंकिंग कार्पोरेशन ; 5

[2008] 2009 (1) ए. आर. सी. 642 एस. सी. :
कुलविन्दर कौर उर्फ **कुलविन्दर गुरचरण सिंह**
बनाम **कान्दी फेन्दरन् एजूकेशन ट्रस्ट और अन्य** ; 5

[2005] ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 3353 :
सलेम एडवोकेट बार एसोसिएशन, तमिलनाडु
बनाम **भारत संघ** ; 20

[1998] 1998 (2) जे. सी. एल. आर. 865 (इला.) :
जहरुद्दीन उर्फ **बाबू** बनाम **श्री अशोक कुमार और अन्य** ; 14

[1995] (1995) 6 एस. सी. सी. 744 :
पी. के. घोष, आई. ए. एस. और एक अन्य
बनाम **जे. जी. राजपूत** ; 9

[1992] ए. आई. आर. 1992 एस. सी. 1133 :
पुष्पा देवी शर्राफ और अन्य बनाम **जय नारायण परशरामपुरिया और अन्य** । 5,13

आरम्भिक (सिविल) अधिकारिता : 2010 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 56662.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याचियों की ओर से श्री अरविन्द श्रीवास्तव

प्रत्यर्थियों की ओर से कोई नहीं

न्यायमूर्ति राकेश तिवारी – पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना और अभिलेखों का परिशीलन किया ।

2. प्रत्यर्थियों द्वारा तारीख 2 अप्रैल, 1999 को फाइल 1999 का निर्मुक्ति आवेदन सं. 5, सोमरु राम बनाम दीनानाथ उपाध्याय और अन्य को मकान मालिक की अनुपस्थिति के कारण तारीख 11 मार्च, 2004 को खारिज कर दिया गया था । इसके पश्चात्, पुनः स्थापित आवेदन फाइल किया गया जिसे तारीख 2 फरवरी, 2007 को मंजूर कर लिया गया और मामले को इसके मूल संख्या में प्रत्यावर्तित कर लिया गया । तत्पश्चात्, मामला तारीख 18 जनवरी, 2010 को चतुर्थ सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड), वाराणसी को अन्तरित कर दिया गया ।

3. याचियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि पीठासीन अधिकारी अर्थात् चतुर्थ सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड), वाराणसी, 1999 की पी. ए. वाद सं. 5 का निपटारा करने में असाधारण हित रखते हैं इस कारण से कि उक्त पीठासीन अधिकारी का आवास इलाहाबाद में है जो मकान मालिक अर्थात् दिनेश कुमार वर्मा के पुत्र के आवास के आगे स्थित है जो कृषि संस्थान इलाहाबाद में अध्ययन कर रहा है, कि आवेदक ने

अपनी दुकान के अन्दर उसके सगे भाई से दिनेश कुमार वर्मा द्वारा यह कहते हुए संयोग से सुनकर आश्चर्य हुआ कि वह मामले में उसके पक्ष में आदेश प्राप्त करने की व्यवस्था कर लेगा, कि इस तथ्य की पुष्टि पीठासीन अधिकारी के उस आचरण द्वारा होती है जिन्होंने अन्य मामलों में लम्बे अन्तराल पर तारीखें नियत की हैं किन्तु उसके 1999 के पी. ए. वाद सं. 5 में अति संक्षिप्त तारीख नियत की है ।

4. पूर्वोक्त परिस्थितियों में, याचियों ने 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम सं. 13 की धारा 3(ङ) के अधीन अन्तरित आवेदन फाइल किया जिसे तारीख 21 अगस्त, 2010 को जिला न्यायाधीश, वाराणसी द्वारा नामंजूर कर दिया गया यह अभिनिर्धारित करते हुए कि मामला तारीख 18 मई, 2010 को सुनवाई के लिए नियत है और यह भी अभिनिर्धारित किया कि दिनेश कुमार वर्मा पुत्र राजकुमार वर्मा का पीठासीन अधिकारी के साथ कोई संबंध नहीं है ।

5. जिला न्यायाधीश ने आवेदक द्वारा उद्धृत निम्नलिखित मामलों पर विचार किया – **कुलविन्दर कौर** उर्फ **कुलविन्दर गुरचरण सिंह** बनाम **कान्दी फेन्दरन् एजूकेशन ट्रस्ट और अन्य**[1], **पुष्पा देवी शर्राफ और अन्य** बनाम **जय नारायण परशरामपुरिया और अन्य**[2] तथा **नाहर इंडस्ट्रीयल इंटरप्राइजेज लिमिटेड** बनाम **हांगकांग संघाई बैंकिंग कार्पोरेशन**[3] ।

6. पूर्वोक्त मामलों में अधिकथित निर्णयाधार पर विचार करने के पश्चात् विद्वान् जिला न्यायाधीश ने यह निष्कर्ष निकाला कि मामला अन्तरित करने के लिए आवेदक के अभिकथन में कोई आधार नहीं है और यह कि न्यायालय जिनके समक्ष अन्तरित आवेदन फाइल किया गया है उसे ऐसे आवेदन को स्वीकार करने के पूर्व सभी तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करना चाहिए । जिला न्यायाधीश ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि अन्तरित आवेदन मंजूर करने के लिए कोई आधार नहीं है ।

7. अभिलेखों से यह प्रतीत होता है कि विहित प्राधिकारी के अनुसार अधिनियम की स्कीम में ऐसे मामले उपबंधित हैं जिनका अधिनियम के विभिन्न उपबंधों में विहित अवधि के भीतर विनिश्चय करना होता है और

---

[1] 2009 (1) ए. आर. सी. 642 एस. सी.

[2] ए. आई. आर. 1992 एस. सी. 1133.

[3] (2009) 8 एस. सी. सी. 646.

इसे देखते हुए लिखत और भावना के अनुसार अधिनियम के उपबंधों के अनुपालन में किराया मामलों में संक्षिप्त तारीखें नियत की जाती हैं और इस प्रयास से अधिनियम के उद्देश्य प्राप्त किए जाते हैं । यही इस आदेश में है जिसे वर्तमान रिट याचिका में चुनौती दी गई है ।

8. याची के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया है कि वर्तमान रिट याचिका में जिला न्यायाधीश, वाराणसी द्वारा पारित आक्षेपित आदेश बिना अधिकारिता के है क्योंकि 2010 का अन्तरण आवेदन सं. 125 उनके द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता था ।

9. याची के विद्वान् काउंसेल ने **पी. के. घोष, आई. ए. एस. और एक अन्य** बनाम **जे. जी. राजपूत**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय के पैरा 10 का अवलंब लिया ।

10. पूर्वोक्त निर्णय का पैरा 10 निम्नलिखित उद्धृत है :–

> "विधि शासन का आधार तत्व यह है कि 'न केवल न्याय किया जाना चाहिए अपितु इसे किया जाना प्रतीत भी होना चाहिए ।' यदि आधार ऐसा है जिसे एक मुकदमेबाज के लिए अयुक्तियुक्त रूप में नहीं माना जा सकता है सिवाय इसके कि उसके मामले को एक विशेष न्यायाधीश द्वारा नहीं सुना जाना चाहिए और ऐसी बाध्यकारी आवश्यकता नहीं है तो ऐसे विकल्प के अभाव में यह समुचित है कि विद्वान् न्यायाधीश को उस मामले की सुनवाई करने वाले पीठ से अपने को अलग कर लेना चाहिए । यह कदम विद्वान् न्यायाधीश द्वारा न केवल इस कारण से उठाया जाना अपेक्षित है अपितु इस कारण से भी कि वे न्याय करने में किसी भी तरीके से प्रभावित न हों किन्तु मामले में उनकी सुनवाई के कारण मुकदमेबाज के विवेक में यह युक्तियुक्त प्रत्याशा भी उद्भूत कर सकता है कि विद्वान् न्यायाधीश का विवेक अचेतन हो सकता है जिसके कारण वे विनिश्चय करने में कुछ बाहरी कारकों द्वारा प्रभावित हो सकते हैं, विशिष्टतया जब यह विरोधी पक्षकार के पक्ष में हो जाता है । न्याय देने की व्यवस्था के अधीन कार्य करने की विश्वसनीयता और प्रभावित पक्षकारों की युक्तियुक्त प्रत्याशा सुसंगत है जब न्यायपालिका की विश्वसनीयता

---

[1] (1995) 6 एस. सी. सी. 744.

और निष्पक्षता में विश्वास रखते हुए लोगों को न्याय सुनिश्चित किया जाता है । यह न केवल न्याय करने के लिए आवश्यक है अपितु यह भी सुनिश्चित करने के लिए कि न्याय किया जाना प्रतीत होता है ।"

11. पूर्वोक्त पैरा के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि माननीय न्यायाधीशों द्वारा अधिकथित निर्णयाधार यह है कि समुचित प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए जब मामले की सुनवाई करने वाले न्यायाधीश के विरुद्ध युक्तियुक्त आधार पर आक्षेप किया जाता है अर्थात् यदि यह कि तथ्यों पर न्यायाधीश पक्षपाती था । पूर्वोक्त मामले में, 'बी' काउंसेल के रूप में रिट याचिका में निलम्बित नगर निगम कर्मचारी की ओर से उपस्थित हुआ था और निलम्बन पर रोक आदेश प्राप्त किया था – उसके बाद 'बी' को उसी उच्च न्यायालय के न्यायपीठ के समक्ष उपस्थित होने से हटा दिया गया और उसके पश्चात् उक्त कर्मचारी का प्रतिनिधित्व एक अन्य काउंसेल द्वारा किया गया । उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका में एक समझौता किया गया । कथन अभिलिखित करने के पश्चात् उच्च न्यायालय ने रिट याचिका वापस लेने की अनुज्ञा दे दी । तत्पश्चात् कर्मचारी द्वारा फाइल पुनर्विलोकन आवेदन को उच्च न्यायालय द्वारा इस आधार पर नामंजूर कर दिया गया कि समझौते के निबंधनों का पहले ही अनुपालन किया जा चुका है । इसके पश्चात् कर्मचारी पर एक आरोपपत्र तामील किया गया था । उक्त आरोपपत्र के अनुसरण में जांच रोकने के लिए कर्मचारी के आवेदन, न्यायालय की अवमानना के लिए नगर निगम के अधिकारियों को दंडित करने के लिए और रिट याचिका वापस लेने को पुनः स्थापित करने के लिए आवेदन को उच्च न्यायालय द्वारा नामंजूर कर दिया गया । तथापि, कर्मचारी उक्त रिट याचिका के संविवाद में निकाले गए निष्कर्ष को स्वीकार नहीं किया और एक अवमान याचिका फाइल की । उच्च न्यायालय के खंड न्यायपीठ जिसमें 'बी' और एक अन्य माननीय न्यायाधीश सम्मिलित थे, ने मामले में नोटिस जारी किया । नोटिस की वापसी की तारीख पर, नगर निगम ने खंड न्यायपीठ जिसमें 'बी' सम्मिलित थे, मामले की सुनवाई करने पर आक्षेप किया और गुणागुणों पर अवमान आवेदन का भी विरोध किया ।

12. इन परिस्थितियों में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि 'बी' के लिए यह समुचित था कि वह अवमान मामले की सुनवाई से स्वयं को अलग रखते – अतएव, उक्त न्यायपीठ

द्वारा पारित अवमान याचिका के विरुद्ध विभागीय जांच के अन्तरिम रोक के आदेश को दूषित अभिनिर्धारित किया जाता है ।

13. याची के विद्वान् काउंसेल ने **पुष्पा देवी शर्राफ और अन्य** बनाम **जय नारायण परशरामपुरिया और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए पैरा 9 का अवलंब लिया जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधीश द्वारा निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "तथापि, हम यह महसूस करते हैं कि विद्वान् पीठासीन अधिकारी अपने विरुद्ध अधिरोपित अभिकथनों द्वारा असम्यक् रूप से प्रभावित हुए हैं, जैसा कि उनकी रिपोर्ट से प्रकट होता है । मामले के इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए हमारा यह सुविचारित मत है कि यह स्वयमेव विद्वान् पीठासीन अधिकारी के हित में हैं कि वाद को दूसरे न्यायालय में भेज दिया जाए । तद्नुसार, हम विद्वान् जिला न्यायाधीश, कानपुर से यह निवेदन करते हैं कि उक्त वाद (सप्तम् अपर जिला न्यायाधीश, कानपुर के फाइल पर 1944 की वाद सं. 537) को ऐसे अन्य अपर जिला न्यायाधीश के पास अन्तरित कर दें जैसा कि वे इस एवज में नामोदिष्ट कर सकते हैं । ऐसा अन्तरिती-न्यायालय तत्परतापूर्वक वाद में कार्यवाही करेगा जैसा इस न्यायालय द्वारा निर्देशित किया जाए ।"

14. याची के विद्वान् काउंसेल ने अन्ततः **जहरुद्दीन** उर्फ **बाबू** बनाम **श्री अशोक कुमार और अन्य**[2] वाले मामले में दिए गए निर्णय के पैरा 10 का अवलंब लिया, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि :–

> "किराया नियंत्रण अधिनियम की धारा 22 के उपबंधों के अधीन जिला न्यायाधीश अपीलों की सुनवाई करने के लिए सशक्त किया गया है किन्तु उसी समय पर ऐसी अपीलों को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के उपबंधों के अधीन अपील योग्य नहीं बनाया गया है । सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के मात्र उन उपबंधों जो या तो धारा 34(1) में या नियम 22 में विनिर्दिष्ट किया गया है, में ही अपील योग्य बनाया गया है । अधिनियम की स्कीम के अधीन जिला न्यायाधीश मात्र एक अपील प्राधिकारी के रूप में ही कार्य कर सकता

---

[1] ए. आई. आर. 1992 एस. सी. 1133.

[2] 1998 (2) जे. सी. एल. आर. 865 (इला.).

है न कि एक सिविल न्यायालय के रूप में अथवा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अर्थान्तर्गत एक सिविल अधिकारिता के न्यायालय के रूप में । सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 24 में प्रयुक्त शब्द अपील मात्र उन्हीं अपीलों के प्रति निर्दिष्ट करती हैं जो किसी सिविल अधिकारिता के न्यायालय में लम्बित हैं, जो उच्च न्यायालय या जिला न्यायालय के अधीनस्थ है, जैसी भी दशा हो, और मेरी राय में, यह शब्द किराया नियंत्रण अधिनियम की धारा 22 के अधीन फाइल अपील से संबंधित नहीं होता है ।"

15. वर्तमान मामले में, याची ने विहित प्राधिकारी/चतुर्थ अपर सिविल न्यायाधीश, वाराणसी के किसी आदेश के विरुद्ध जिला न्यायाधीश के समक्ष अपील नहीं की । किन्तु, मामले के अन्तरण के लिए अधिनियम की धारा 3(ङ) के अधीन अन्तरण आवेदन फाइल किया । अधिनियम की धारा 3(ङ) वर्तमान संदर्भ के लिए उद्धृत है :–

"विहित प्राधिकारी से अभिप्राय जिला न्यायाधीश द्वारा इस अधिनियम के अधीन विहित प्राधिकारी की सभी या किन्हीं शक्तियों, कृत्यों और कर्तव्यों के प्रयोग, अनुपालन या उन्मोचन करने के लिए प्राधिकृत सिविल न्यायिक अधिकारी या न्यायिक मजिस्ट्रेट से है और ऐसे भिन्न अधिकारियों से है जिन्हें विभिन्न क्षेत्रों या मामलों या मामलों के वर्गों के संबंध में इस प्रकार प्राधिकृत किया जा सकता है और जिला न्यायाधीश ऐसे किसी अधिकारी से कोई मामला मंगा सकता है और इसके निपटारे के लिए किसी अन्य ऐसे अधिकारी को अन्तरित कर सकता है ।"

16. जिला न्यायाधीश जो जिला न्यायालय का प्रधान होता है, को एक न्यायालय से अन्य न्यायालय में मामला अन्तरित करने की प्रशासनिक शक्ति होती है । मामले के इस मत को ध्यान में रखते हुए, याची के विद्वान् काउंसेल की यह दलील कि जिला न्यायाधीश को अन्तरण आवेदन ग्रहण करने की कोई अधिकारिता नहीं है, कायम नहीं रखा जा सकता । इसके अतिरिक्त, यदि जिला न्यायाधीश को कोई अधिकारिता नहीं थी तो याची के पास मामले का अन्तरण कराने के लिए उनके समक्ष अन्तरण आवेदन फाइल करने का कोई कारण नहीं था ।

17. इस मत को ध्यान में रखते हुए, मेरी राय यह है कि याचियों

द्वारा उद्धृत मामले इस मामले के वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में लागू नहीं होते हैं । इसके अलावा, पूर्वोक्त दोनों निर्णयों में अधिकथित निर्णयासार उस खंड न्यायपीठ की खोज प्रतीत होती हैं जिसे अनुमति नहीं दी जानी चाहिए । न्यायिक अधिकारियों के विरुद्ध मात्र अभिकथन प्रमाण नहीं होते हैं जब तक कि उन्हें सुआधारित सबूतों द्वारा प्रमाणित नहीं किया जाता है ।

18. जिला न्यायाधीश ने यह निष्कर्ष निकाला कि अभिकथन आधारहीन हैं और बिना तर्कसंगत के हैं और यह कि याची के विद्वान् काउंसेल यह दर्शित या सिद्ध करने में समर्थ नहीं रहे हैं कि अधिकारियों के विरुद्ध अभिकथन सत्य हैं या उसकी सत्यता में कोई तथ्य है ।

19. उपर्युक्त कथित सभी कारणों से, इस न्यायालय का यह मत है कि 1999 की पी. ए. वाद सं. 5 मामले के कार्यवाहियों को मात्र विलम्ब करने के लिए दुर्भावनापूर्ण आशय से जिसे बेहतर तरीके से वही जानते हैं, फाइल किया गया है और पीठासीन अधिकारी के विरुद्ध किए गए अभिकथन बिना किसी आधार के प्रतीत होते हैं ।

20. **सलेम एडवोकेट बार एसोसिएशन, तमिलनाडु** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "जहां तक निर्णय के समय पर खर्चे अधिनिर्णीत करने का संबंध है, खर्चे का अधिनिर्णय साधारणतया आज्ञापक समझा जाना चाहिए, क्योंकि न्यायालयों का तुच्छ मामलों में या तुच्छ और अनावश्यक विवाद्यकों पर वाद फाइल करने वाले पक्षकारों को स्वयं अपने खर्चे वहन करने का निर्देश देने का स्वतंत्र दृष्टिकोण होता है । खर्चों को घटनाओं का अनुसरण करते हुए एक ही तरह से अधिनिर्णीत करने चाहिए । जहां पक्षकार अन्ततोगत्वा एक ही विवाद्यक या मुद्दे पर सफल होते हैं किन्तु कई विवाद्यकों या मुद्दों पर असफल हो जाते हैं, जो अनावश्यक रूप से उद्भूत किए जाते हैं । खर्चे समुचित तरीके से विभाजित किए जाने चाहिए । विशेष कारण समनुदेशित किए जाने चाहिए यदि खर्चे अधिनिर्णीत नहीं किए जाते हैं । खर्चों को प्रवर्तित नियमों के अनुसार निर्धारित किया जाना चाहिए । यदि पक्षकारों में से

---

[1] ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 3353.

कोई अनावश्यक रूप से कार्यवाहियों को रोकता है तो न्यायाधीश को स्थगित तारीखों पर हाजिर होने के प्रयोजन के लिए खर्चे को ध्यान में रखते हुए अनुकरणीय खर्चे अधिरोपित करने के लिए विवेकाधिकार का प्रयोग करना चाहिए ।"

21. **सलेम एडवोकेट बार एसोसिएशन** (उपर्युक्त) वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि से यह प्रकट होता है कि खर्चे संदाय नहीं करने का एक अपवाद यह है कि उसके लिए न्यायालय द्वारा विशेष कारण दिया जाना चाहिए और यह कि साधारण परिस्थितियों में खर्चे उस पक्षकार को अधिनिर्णीत किया जाना चाहिए जिसके पक्ष में विवाद्यक विनिश्चित किया जाता है जिसे अनावश्यक रूप से मामले में घसीटा गया है । उच्च न्यायालय नियम 1951 के अध्याय xxii के नियम 9 और अध्याय xxi के नियम 11 के उपबंधों और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 34, 35क, 35ख के उपबंधों पर विचार करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि उस पक्षकार को ब्याज अधिनिर्णीत करते समय जिसे मूल रकम या कोई बकाया रकम संदाय नहीं किया गया है, पर भी न्यायालय द्वारा विचार किया जाना चाहिए और न केवल ब्याज अपितु ब्याज दंड भी अधिनिर्णीत किया जा सकता है । इस प्रकार अधिरोपित खर्चे नियमों के अनुसार होने चाहिए और यदि कार्यवाहियों को अनावश्यक रूप से रोका या स्थगित किया जाता है तो इन्हें भी ध्यान में रखते हुए, न्यायाधीशों को प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए अनुकरणीय या निवारक खर्चे भी अधिरोपित करने का भी विवेकाधिकार होता है ।

22. तद्नुसार, यह रिट याचिका, इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों तथा माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय को ध्यान में रखते हुए, 15,000/- रुपए निवारक खर्चे सहित खारिज की जाती है ।

तद्नुसार, रिट याचिका खारिज की गई ।

क.

जामिया रज़विया मेराजुल उलूम, चिलमपुर, जिला गोरखपुर और एक अन्य

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और तीन अन्य

तारीख 15 सितम्बर, 2010

न्यायमूर्ति अमित्व लाला और न्यायमूर्ति शबीहुल हसनैन

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – धारा 96 [सपठित सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 की धारा 4 और धारा 25(2)] – विशेष अपील – एक रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी के प्रबन्ध समिति के सदस्यों में से एक सदस्य की सदस्यता विवादित होना – प्रबन्ध समिति का निर्वाचन विवादित नहीं होना – रजिस्ट्रार द्वारा सम्बन्धित विहित नियमों के अनुसरण में विवाद्यक का निपटारा करना – आक्षेप – यदि किसी रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी के प्रबन्ध समिति के सदस्यों में से किसी एक की सदस्यता विवादित है और सम्बन्धित रजिस्ट्रार द्वारा विहित नियमों के अनुसरण में उसका निपटारा कर दिया जाता है तो उसके आदेश को इस आधार पर आक्षेपित नहीं किया जा सकता है कि रजिस्ट्रार ने अपनी अधिकारिता के बाहर कार्य किया है वह भी तब जब यह साबित कर दिया जाता है कि विवाद्यक सदस्यता से सम्बन्धित है न कि निर्वाचन से सम्बन्धित है ।

वर्तमान मामले में तथ्य यह हैं कि सोसाइटी, जामिया रज़विया मेराजुल उलूम, चिलमपुर, जिला गोरखपुर के रूप में ज्ञात एक मदरसा चलाती है जो सम्यक् रूप से मान्यताप्राप्त एक मदरसा है और यह राज्य सरकार के सहायता अनुदान की सूची में भी है । सोसाइटी के पदाधिकारियों का कार्यकाल पांच वर्ष है और इसका समय-समय पर नवीकरण होता है । अंतिम नवीकरण फरजन्द अली, याची सं. 2 का पिता द्वारा प्रस्तुत तारीख 8 नवम्बर, 2006 के आवेदन पर किया गया था । इस प्रकार, नवीकरण प्रमाणपत्र पांच वर्षों की अवधि के लिए तारीख 15 नवम्बर, 2006 को प्रदान किया गया था, जो तारीख 7 अगस्त, 2011 तक प्रवर्तित था । याची/अपीलार्थी के अनुसार उक्त निर्वाचन के पश्चात् कतिपय घटनाएं घटित हुईं, जो इस प्रकार हैं :– (i) सदस्य मोहम्मद यूसुफ खान **उर्फ** कन्छेद को तारीख 11 दिसम्बर, 2006 को आयोजित बैठक में भी

तीन बैठकों में निरन्तर अनुपस्थित रहने के लिए सोसाइटी की सदस्यता से हटा दिया गया और उनके स्थान पर याची सं. 2 को सदस्य के रूप में नामांकित किया गया । (ii) श्री करीमुल्ला खान प्रत्यर्थी सं. 4 जो सोसाइटी का सहायक सचिव था, उसने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया जिसे स्वीकार कर लिया गया और उसके स्थान पर तारीख 25 मार्च, 2007 के सोसाइटी के संकल्प द्वारा श्री जफर अहमद को सहायक सचिव के रूप में निर्वाचित किया गया । (iii) तत्पश्चात्, तारीख 20 मई, 2007 को श्री फरजन्द अली, सचिव ने भी सचिव के पद से त्यागपत्र दे दिया और उसके स्थान पर श्री जफर अहमद सचिव के रूप में निर्वाचित हुआ । (iv) तारीख 7 मार्च, 2008 को श्री जफर अहमद खान ने भी सचिव के पद से त्यागपत्र दे दिया जिसे तारीख 9 मार्च, 2008 के संकल्प में स्वीकार कर लिया गया और याची सं. 2 मोहम्मद फखरुद्दीन खान तारीख 9 मार्च, 2008 को प्रबन्धक/सचिव के रूप में निर्वाचित हुआ । (v) याची सं. 2 ने भी सहायक रजिस्ट्रार, फर्म, सोसाइटी और चिट्स को तारीख 18 मार्च, 2008 को एक पत्र भेजा यह सूचित करते हुए कि वह प्रबन्धक के रूप में निर्वाचित किया गया है और पदाधिकारियों की रजिस्ट्रीकृत सूची जो वर्ष 2007-08, 2008-09 के लिए पदाधिकारियों की सूची सहायक रजिस्ट्रार द्वारा सम्यक् रूप से प्रमाणित थी । मोहम्मद फखरुद्दीन खान ने भी जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी को भी कागजात भेजे जिन्होंने तारीख 2 मई, 2008 को मदरसा के प्रबन्धक के रूप में मोहम्मद फखरुद्दीन खान का हस्ताक्षर प्रमाणित किया था । उसके प्रबन्धक होने के ठीक पश्चात् करीमुल्ला खान ने कुछ बाधाएं डालनी आरम्भ कर दीं । पूर्व में करीमुल्ला खान ने एक अस्थायी अध्यापक श्रीमती शर्मिला बेगम द्वारा की गई शिकायत को जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष दिया और जिला मजिस्ट्रेट ने तारीख 6 अक्तूबर, 2008 के आदेश द्वारा मोहम्मद फखरुद्दीन खान की शक्ति को गलत तौर पर समाप्त कर दिया था, उक्त आदेश को इस न्यायालय द्वारा प्रबन्धक समिति द्वारा फाइल 2008 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 55257 में रोक लगा दी थी । उक्त रिट याचिका आज तक लम्बित है । शौकत अली नूरी मदरसा का प्रधानाध्यापक था तथापि, प्रबन्ध समिति द्वारा पारित तारीख 14 अगस्त, 2009 के संकल्प द्वारा उक्त प्रधानाध्यापक को लम्बित विभागीय कार्यवाहियों में प्रारम्भिक जांच के आधार पर निलम्बित कर दिया गया था, जिसे तारीख 22 सितम्बर, 2009 के पत्र द्वारा उक्त मदरसा के प्रबन्धक द्वारा उसे संसूचित कर दिया गया था और उसे समाचारपत्रों में भी प्रकाशित किया गया था । तारीख 14

अगस्त, 2009 को प्रधानाचार्य/प्रबन्धक को निलम्बित किया गया और कबीर अहमद, करीमुल्ला खान, फरजन्द अली को सोसाइटी की सदस्यता से हटा दिया गया । उक्त संकल्प तारीख 22 सितम्बर, 2009 के पत्र द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 के अनुसार था । यह भी अभिकथित किया गया है कि दूसरी ओर, करीमुल्ला खान, जिसने निलम्बित प्रधानाध्यापक से दुरभिसंधि कर ली थी, ने सहायक रजिस्ट्रार के समक्ष एक आवेदन फाइल किया जिसके साथ उसने तारीख 16 अगस्त 2009 की अभिकथित बैठक का संकल्प भी संलग्न किया, जिसपर सहायक रजिस्ट्रार ने याचियों को तारीख 12 अक्तूबर, 2009 और तारीख 14 अक्तूबर, 2009 को दो नोटिसें भेजीं जिसका मोहम्मद फखरुद्दीन खान याची सं. 1 ने तारीख 26 अक्तूबर, 2009 को सविस्तार उत्तर प्रस्तुत किया । चूंकि करीमुल्ला खान ने मोहम्मद अफजल मरकाजी दारुल इफ्ता, 82 सौदागरन, बरेली शरीफ द्वारा जारी तारीख 16 अगस्त, 2009 के अपने संकल्प में तारीख 6 जुलाई, 2009 के फतवा का अवलंब लिया था । उक्त फतवा के बारे में जानकारी होने के पश्चात् मोहम्मद फखरुद्दीन खान ने मोहम्मद अफजल मरकाजी दारुल इफ्ता, 82 सौदागरन, बरेली शरीफ को तारीख 15 जनवरी, 2010 को एक पत्र भेजा जिसने फतवा जारी किया था । तारीख 4 नवम्बर, 2009 को पूर्ववर्ती संकल्प और अभिलेखों के साथ एक आवेदन किया । तारीख 14 नबम्बर, 2009 और तारीख 15 दिसम्बर, 2009 को जो तारीख नियत की गई थी, को फखरुद्दीन खान ने तारीख 15 दिसम्बर, 2009 को कोई उत्तर प्रस्तुत नहीं किया । उसने प्रत्यर्थी सं. 2 के समक्ष उत्तर प्रस्तुत किया जिसे याचियों पर तारीख 30 दिसम्बर, 2009 को तामील किया गया । तारीख 30 दिसम्बर, 2009 को मामला तारीख 16 फरवरी, 2010 के लिए स्थगित कर दिया जबकि तारीख 16 फरवरी, 2010 को पीठासीन अधिकारी शहर से बाहर था इसलिए, मामला तारीख 5 मार्च, 2010 के लिए स्थगित कर दिया गया । तारीख 30 दिसम्बर, 2009 को मामला तारीख 28 जनवरी, 2010 के लिए स्थगित कर दिया गया और उसी दिन मामला तारीख 5 मार्च, 2010 के लिए नियत किया गया क्योंकि पीठासीन अधिकारी शहर से बाहर था । तारीख 5 मार्च, 2010 को शुक्रवार था, याची सं. 2 पूर्वाह्न 10.00 बजे से 12.00 बजे तक प्रत्यर्थी सं. 2 के कार्यालय में उपस्थित रहा । यद्यपि, उसके काउंसेल के अनुसार वह प्राप्त तारीख को शुक्रवार की प्रार्थना करने गया था । काउंसेल मामले की देखभाल करता रहा किन्तु, तारीख 5 मार्च, 2010 को न तो उसे मामले में बुलाया गया न ही सुनवाई की गई और विद्वान् प्रत्यर्थी सं. 2 ने एकपक्षीय सुनवाई आरम्भ

किए बिना आदेशों को आरक्षित रख लिया था । इन तथ्यों के प्रतिकूल निष्कर्षों से आक्षेपित आदेश गलत हैं और प्रतिकूल हैं । तारीख 8 मार्च, 2010 को याचियों ने प्रत्यर्थी सं. 2 के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया । याचियों को सुनवाई का अवसर दिए बिना प्रत्यर्थी सं. 2 ने तारीख 27 मार्च, 2010 के आदेश द्वारा आक्षेपित आदेश पारित किया । प्रत्यर्थी सं. 2 ने तारीख 27 मार्च, 2010 के आक्षेपित आदेश में यह गलत मताभिव्यक्तियां की हैं कि मोहम्मद फखरुद्दीन ने तारीख 9 अप्रैल, 2008 को त्यागपत्र दिया था, करीमुल्ला खान ने परिवाद तारीख 7 मई, 2009 को या तारीख 8 सितम्बर, 2009 को प्रस्तुत किया था, वास्तव में, करीमुल्ला खान द्वारा परिवाद तारीख 5 सितम्बर, 2008 को प्रस्तुत किया गया था । याचियों को तारीख 7 मई, 2008 और तारीख 8 सितम्बर, 2008 के परिवाद की कोई प्रति नहीं दी गई न ही याचियों को कभी भी इसकी प्रति दी गई न ही उन्हें इसकी जानकारी थी कि मामले की सुनवाई तारीख 4 मार्च, 2010 को होनी थी । इससे व्यथित होकर वर्तमान विशेष अपील फाइल की गई । न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह प्रतीत होता है कि वर्तमान मामला नियम की धारा 25 के बजाय धारा 4 के अधीन ही आता है । रजिस्ट्रार ने साधारण तौर पर यह घोषित किया है कि फखरुद्दीन खान प्रबन्ध समिति का वैध सदस्य नहीं है, अतएव, प्रबन्ध समिति के सचिव/प्रबन्धक के रूप में उसकी नियुक्ति को भी अनुमोदित नहीं किया जा सकता । रजिस्ट्रार ने अपने आदेश में साधारण तौर पर सदस्यता विवाद्यक का विनिश्चय किया न कि निर्वाचन विवाद्यक का विनिश्चय किया । अतएव, अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल की प्रथम दलील इस सीमा तक असफल होती है कि रजिस्ट्रार इस आबद्धता के अधीन था कि वह मामले को विहित प्राधिकारी के पास भेजे । रजिस्ट्रार सदस्यता विवाद्यक पर विनिश्चय करने के लिए पूर्णतः सक्षम था जिसे उसने तारीख 27 मार्च, 2010 के अपने आदेश द्वारा विनिश्चित किया है । प्रश्न, जो अब विनिश्चय के लिए बचता है वह यह है कि क्या रजिस्ट्रार का विनिश्चय वैध है या नहीं और क्या रजिस्ट्रार ने विधि के अनुसरण में कार्यवाही की है या नहीं । दो सुसंगत तारीखें हैं, एक तारीख 14 अगस्त, 2009 है और दूसरा तारीख 16 अगस्त, 2009 है । करीमुल्ला खान द्वारा विरोधी पक्षकार के विद्वान् काउंसेल की दलील यह है कि तारीख 14 अगस्त, 2009 को कोई बैठक नहीं हुई है । बैठक को मात्र कागजातों में ही दर्शित किया गया है और यह पिछली तारीख की है । याचियों-अपीलार्थियों की दलील यह है कि तारीख 16 अगस्त, 2009 को आयोजित

बैठक विधिक तौर पर मान्य नहीं है क्योंकि सदस्य जिनका बैठक में मत देना कथित है, उन्हें तारीख 14 अगस्त, 2009 के संकल्प द्वारा पहले ही हटा दिया गया था । तारीख 14 अगस्त, 2009 को आयोजित बैठक के बारे में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इसे अयुक्तियुक्त विलम्ब के साथ रजिस्ट्रार के पास भेजा गया था और यह रजिस्ट्रार के कार्यालय में तारीख 4 नवम्बर, 2009 को पहुंचा था । याचियों/अपीलार्थियों का पक्षकथन यह है कि तारीख 14 अगस्त, 2009 को सोसाइटी की प्रबन्ध समिति ने एक संकल्प पारित करते हुए करीमुल्ला खान, कबीर अहमद और फरजन्द अली को सोसाइटी के साधारण सभा की सदस्यता से हटा दिया था । उक्त संकल्प को सहायक रजिस्ट्रार ने तारीख 22 सितम्बर, 2009 को अनुमोदित किया था । दूसरी ओर, यह अभिकथित किया गया है कि सोसाइटी की प्रबन्ध समिति ने तारीख 16 अगस्त, 2009 के संकल्प द्वारा मोहम्मद फखरुद्दीन खान को साधारण सभा की सदस्यता के साथ ही सोसाइटी की प्रबन्ध समिति के पदभार से भी हटा दिया था, क्योंकि उसे सोसाइटी की उपविधि के खंड 12 के उल्लंघन में नामांकित किया गया था और इस प्रभाव का तारीख 6 जुलाई, 2009 का फतवा मोहम्मद अफजल रिजवी मरकाजी दारुल इफता, 82, सौदागरन, बरेली शरीफ, बरेली द्वारा जारी किया गया था । याचियों/अपीलार्थियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री कादिर का मुख्य तर्क यह है कि जब करीमुल्ला खान को तारीख 14 अगस्त, 2009 को आयोजित बैठक में सोसाइटी की साधारण सभा की सदस्यता से हटाया गया था तो वह तारीख 16 अगस्त, 2009 को आयोजित प्रबन्ध समिति की बैठक में भाग नहीं ले सकता था न ही वह सोसाइटी की प्रबन्ध समिति के सचिव/प्रबन्धक के रूप में कार्य कर सकता था । इस बैठक में लिए गए विनिश्चय का कोई परिणाम नहीं है क्योंकि बैठक की गणपूर्ति पूरी नहीं होती है यदि सदस्य जिसे तारीख 4 अगस्त, 2009 को हटा दिया गया हो, को अपवर्जित कर दिया जाता है । उनका अगला तर्क यह है कि फखरुद्दीन खान यथाअपेक्षित सच्चा सुन्नी है और उसकी सदस्यता सोसाइटी की उपविधि के नियम 12 के उल्लंघन में नहीं है । उसे इस आधार पर हटाया नहीं जा सकता था और रजिस्ट्रार सदस्यता सूची से उसका नाम अपवर्जित करने में प्रकटतः गलती की है । आगे, रजिस्ट्रार को मोहम्मद फखरुद्दीन को अपना उत्तर फाइल करने के लिए कोई अवसर दिए बिना तारीख 7 फरवरी, 2010 को जारी फतवा का अवलंब नहीं लेना चाहिए था, वस्तुतः वे फतवा का पालन करने के लिए कभी भी सहमत नहीं थे जैसा कि उन्होंने आक्षेपित आदेश में उल्लिखित किया है । माननीय

एकल न्यायाधीश ने विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता के प्रत्येक तर्कों पर विचार किया । माननीय एकल न्यायाधीश ने यह निष्कर्ष निकाला कि रजिस्ट्रार ने साधारणतया फतवा पर कार्य नहीं किया । आरम्भतः फतवा बरेली शरीफ द्वारा तारीख 6 जुलाई, 2009 को जारी किया गया था जिसके आधार पर प्रबन्ध समिति ने तारीख 16 अगस्त, 2009 को मोहम्मद फखरुद्दीन खान को साधारण सभा से हटा दिया था और तत्पश्चात् सचिव/प्रबन्धक के पद से भी हटा दिया था । उसके बाद तारीख 7 फरवरी, 2010 को सुस्पष्टतः यह फतवा दिया गया था कि मोहम्मद फखरुद्दीन सुन्नत जमात का सच्चा सदस्य नहीं था, अतएव, रजिस्ट्रार ने तारीख 16 अगस्त, 2009 के संकल्प के आधार पर ही कार्य किया है, जो वस्तुतः फतवा द्वारा समर्थित है । रजिस्ट्रार की कार्रवाई फतवा के बजाय प्रबन्ध समिति के संकल्प पर आधारित है । रजिस्ट्रार द्वारा फतवा का प्रयोग उपविधि के खंड 12 की अपेक्षा के बारे में अपने विवेक का स्पष्टीकरण के लिए किया गया था । यह देखने के अनुक्रम में कि क्या तारीख 16 अगस्त, 2009 को प्रबंध समिति द्वारा पारित संकल्प खंड 12 की भावना के अनुसरण में था, रजिस्ट्रार ने फतवा का अवलंब लिया है । यह एक धार्मिक मामला है, धार्मिक संस्था द्वारा जारी फतवा रजिस्ट्रार की मात्र यह निष्कर्ष निकालने में सहायता कर सकता था कि तारीख 16 अगस्त, 2009 के संकल्प द्वारा मोहम्मद फखरुद्दीन के नाम को हटाना वस्तुतः उपविधि की भावना के अनुसरण में था । आगे, सहायक रजिस्ट्रार ने दोनों पक्षकारों को तारीख 12 अक्तूबर, 2009 को अपने समक्ष उपस्थित होने और अपना साक्ष्य फाइल करने के लिए नोटिस जारी किया था । माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा यह भी मत व्यक्त किया गया है कि तारीख 7 फरवरी, 2010 का फतवा दोनों पक्षकारों की सहमति से जारी किया गया था । यह प्रतीत होता है कि माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा मामले पर विचार करते हुए सभी पहलुओं पर विचार किया गया है । जहां तक तारीख 14 अगस्त, 2009 के संकल्प का संबंध है याचियों/अपीलार्थियों द्वारा उसे सहायक रजिस्ट्रार को संसूचित करने में हुए विलम्ब के बारे में कोई समाधानप्रद उत्तर नहीं दिया गया है । इसके अतिरिक्त, यह भी स्पष्ट नहीं है कि मोहम्मद फखरुद्दीन खान के लिए तारीख 14 अगस्त, 2009 का संकल्प पारित करने और तीन सदस्यों को निष्काषित करने का क्या कारण था । माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा यह कारण दिया गया है कि तारीख 14 अगस्त, 2009 का संकल्प पिछली तारीख का प्रतीत होता है, यद्यपि यह किसी तथ्यात्मक साक्ष्य पर आधारित नहीं है किन्तु इससे यह अतिसमाधानप्रद और तार्किक निष्कर्ष निकलता है

कि संकल्प कूटरचित और पिछली तारीख का था जिससे कि तारीख 16 अगस्त, 2009 के संकल्प के प्रभाव को अकृत किया जा सके । इस प्रकार, दोनों विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ताओं के क्रमशः तर्कों को सुनने के पश्चात्, उद्धृत निर्णयज विधियों का परिशीलन करने और संलग्न दस्तावेजों का परिशीलन करने के पश्चात् न्यायालय इस सुनिश्चित निष्कर्ष पर पहुंचता है कि इस मामले में कोई निर्वाचन विवाद्यक नहीं था । रजिस्ट्रार के समक्ष साधारणतया सदस्यता का विवाद्यक था जिसे रजिस्ट्रार द्वारा अधिनियम के अधीन उसमें निहित शक्तियों के आधार पर अच्छी तरह से विनिश्चित किया जा सकता था । रजिस्ट्रार के समक्ष ऐसी कोई सामग्री नहीं थी कि वह अधिनियम की धारा 25 के अधीन मामले को विहित प्राधिकारी के समक्ष निर्दिष्ट करे । रजिस्ट्रार ने यह विनिश्चित किया कि अपीलार्थी सोसाइटी का वैध सदस्य नहीं है क्योंकि उसे उपविधि के नियम 12 के उल्लंघन में सदस्यता दी गई थी । इस निष्कर्ष पर पहुंचने में उन्होंने अपीलार्थी को नोटिस दिया है । माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा सभी तर्कों पर समाधानप्रद रूप से विचार किया गया है । न्यायालय उनके द्वारा अपनाए गए मत से पूर्णरूपेण सहमत हैं । (पैरा 17, 18, 19, 20, 21 और 22)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[1995] (1995) 2 यू. पी. एल. बी. ई. सी. 1242 :
प्रबन्ध समिति, किसान शिक्षा सदन, बंकशाही, जिला बस्ती और एक अन्य बनाम **सहायक रजिस्ट्रार, फर्म, सोसाइटी और चिट्स, गोरखपुर खंड, गोरखपुर और एक अन्य** ; 16

[1988] (1988) यू. पी. एल. बी. ई. सी. 515 :
उरवा बाजार, शिक्षा सोसाइटी, गोरखपुर और अन्य बनाम **सहायक रजिस्ट्रार, फर्म, सोसाइटी और यूनिट, खंड गोरखपुर और अन्य** ; 11

[1987] (1987) यू. पी. एल. बी. ई. सी. 989 :
प्रबन्ध समिति, ग्रामोदय शिक्षा परिषद् ग्रामोत्थान जूनियर हाई स्कूल, वरवाला, जिला मुजफ्फरनगर और एक अन्य बनाम **जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, मुजफ्फरनगर और एक अन्य** ; 14

[1981] (1981) यू. पी. एल. बी. ई. सी. 308 :
विजय नारायण सिंह बनाम **रजिस्ट्रार, फर्म, सोसाइटी और चिट्स रजिस्ट्रीकरण, उत्तर प्रदेश, लखनऊ और अन्य** । 13

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2010 की विशेष अपील सं. 790.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन विशेष अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से	सर्वश्री एम. ए. कादिर, ज्येष्ठ अधिवक्ता और शमीम अहमद
प्रत्यर्थी सं. 1, 2 और 3 की ओर से	सर्वश्री एम. एस. पाइपरसेनिया और (डा.) वाई. के. श्रीवास्तव, स्थायी काउंसेल
प्रत्यर्थी सं. 4 की ओर से	सर्वश्री अशोक खरे, ज्येष्ठ अधिवक्ता और डब्ल्यू. ए. सिद्दीकी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अमित्व लाला ने दिया ।

न्या. लाला – अपीलार्थियों के ज्येष्ठ अधिवक्ता, श्री एम. ए. कादिर, जिनकी सहायता अधिवक्ता शमीम अहमद ने की और विरोधी पक्षकार सं. 4 के ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे, जिनकी सहायता श्री डब्ल्यू. ए. सिद्दीकी ने की तथा विरोधी पक्षकार सं. 1, 2 और 3 के विद्वान् स्थायी काउंसेल सर्वश्री एम. एस. पाइपरसेनिया एवं (डा.) वाई. के. श्रीवास्तव को सुना ।

2. यह विशेष अपील विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा 2010 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 21478 में पारित तारीख 5 मई, 2010 के आदेश और निर्णय के विरुद्ध निर्देशित है ।

3. यह रिट याचिका जामिया रज़विया मेराजुल उलूम, चिलमपुर, जिला गोरखपुर, जिसे इसमें इसके पश्चात् 'सोसाइटी' कहा गया है, द्वारा अपने सचिव/प्रबन्धक मोहम्मद फखरुद्दीन खान पुत्र फरजन्द अली के माध्यम से फाइल की गई है और मोहम्मद फखरुद्दीन खान ने सहायक रजिस्ट्रार, फर्म, सोसाइटी और चिट्स, गोरखपुर, जिसे इसमें इसके पश्चात् 'सहायक रजिस्ट्रार' कहा गया है, द्वारा पारित तारीख 27 मार्च, 2010 के आदेश को अपास्त करने के लिए स्वयं को सचिव/प्रबन्धक होने का दावा किया । सहायक रजिस्ट्रार ने इस आदेश द्वारा सोसाइटी की प्रबन्ध समिति के गठन के बारे में याची मोहम्मद फखरुद्दीन खान और प्रत्यर्थी सं. 4 करीमुल्लाह

खान द्वारा प्रस्तुत कागजातों को अनुमोदित नहीं किया था और यह निर्देश दिया था कि सोसाइटी की प्रबन्ध समिति का निर्वाचन सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 की धारा 25(2) के अधीन कराई जाए । क्रम सं. 17 पर दर्शित मोहम्मद फखरुद्दीन खान को अपवर्जित करने के पश्चात् सोसाइटी की साधारण सभा के 45 सदस्यों की सूची और निर्वाचन आयोजित करने के लिए निर्वाचन अधिकारी के रूप में जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी, गोरखपुर को नामांकित किया ।

4. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि सोसाइटी, जामिया रज़विया मेराजुल उलूम, चिलमपुर, जिला गोरखपुर के रूप में ज्ञात एक मदरसा चलाती है जो सम्यक् रूप से मान्यताप्राप्त एक मदरसा है और यह राज्य सरकार के सहायता अनुदान की सूची में भी है । सोसाइटी के पदाधिकारियों का कार्यकाल पांच वर्ष है और इसका समय-समय पर नवीकरण होता है । अंतिम नवीकरण फरजन्द अली, याची सं. 2 का पिता द्वारा प्रस्तुत तारीख 8 नवम्बर, 2006 के आवेदन पर किया गया था । इस प्रकार, नवीकरण प्रमाणपत्र पांच वर्षों की अवधि के लिए तारीख 15 नवम्बर, 2006 को प्रदान किया गया था, जो तारीख 7 अगस्त, 2011 तक प्रवर्तित था ।

5. याची/अपीलार्थी के अनुसार उक्त निर्वाचन के पश्चात् कतिपय घटनाएं घटित हुईं, जो इस प्रकार हैं – (i) सदस्य मोहम्मद यूसुफ खान **उर्फ** कन्छेद को तारीख 11 दिसम्बर, 2006 को आयोजित बैठक में भी तीन बैठकों में निरन्तर अनुपस्थित रहने के लिए सोसाइटी की सदस्यता से हटा दिया गया और उनके स्थान पर याची सं. 2 को सदस्य के रूप में नामांकित किया गया । (ii) श्री करीमुल्ला खान प्रत्यर्थी सं. 4 जो सोसाइटी का सहायक सचिव था, उसने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया जिसे स्वीकार कर लिया गया और उसके स्थान पर तारीख 25 मार्च, 2007 के सोसाइटी के संकल्प द्वारा श्री जफर अहमद को सहायक सचिव के रूप में निर्वाचित किया गया । (iii) तत्पश्चात्, तारीख 20 मई, 2007 को श्री फरजन्द अली, सचिव ने भी सचिव के पद से त्यागपत्र दे दिया और उसके स्थान पर श्री जफर अहमद सचिव के रूप में निर्वाचित हुआ । (iv) तारीख 7 मार्च, 2008 को श्री जफर अहमद खान ने भी सचिव के पद से त्यागपत्र दे दिया जिसे तारीख 9 मार्च, 2008 के संकल्प में स्वीकार कर लिया गया और याची सं. 2 मोहम्मद फखरुद्दीन खान तारीख 9 मार्च, 2008 को प्रबन्धक/सचिव के रूप में निर्वाचित हुआ । (v) याची सं. 2 ने

भी सहायक रजिस्ट्रार, फर्म, सोसाइटी और चिट्स को तारीख 18 मार्च, 2008 को एक पत्र भेजा यह सूचित करते हुए कि वह प्रबन्धक के रूप में निर्वाचित किया गया है और पदाधिकारियों की रजिस्ट्रीकृत सूची जो वर्ष 2007-08, 2008-09 के लिए पदाधिकारियों की सूची सहायक रजिस्ट्रार द्वारा सम्यक् रूप से प्रमाणित थी । मोहम्मद फखरुद्दीन खान ने भी जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी को भी कागजात भेजे जिन्होंने तारीख 2 मई, 2008 को मदरसा के प्रबन्धक के रूप में मोहम्मद फखरुद्दीन खान का हस्ताक्षर प्रमाणित किया था । उसके प्रबन्धक होने के ठीक पश्चात् करीमुल्ला खान ने कुछ बाधाएं डालनी आरम्भ कर दीं । पूर्व में करीमुल्ला खान ने एक अस्थायी अध्यापक श्रीमती शर्मिला बेगम द्वारा की गई शिकायत को जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष दिया और जिला मजिस्ट्रेट ने तारीख 6 अक्तूबर, 2008 के आदेश द्वारा मोहम्मद फखरुद्दीन खान की शक्ति को गलत तौर पर समाप्त कर दिया था, उक्त आदेश को इस न्यायालय द्वारा प्रबन्ध समिति द्वारा फाइल 2008 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 55257 में रोक लगा दी थी । उक्त रिट याचिका आज तक लम्बित है ।

6. शौकत अली नूरी मदरसा का प्रधानाध्यापक था तथापि, प्रबन्ध समिति द्वारा पारित तारीख 14 अगस्त, 2009 के संकल्प द्वारा उक्त प्रधानाध्यापक को लम्बित विभागीय कार्यवाहियों में प्रारम्भिक जांच के आधार पर निलम्बित कर दिया गया था, जिसे तारीख 22 सितम्बर, 2009 के पत्र द्वारा उक्त मदरसा के प्रबन्धक द्वारा उसे संसूचित कर दिया गया था और उसे समाचारपत्रों में भी प्रकाशित किया गया था । तारीख 14 अगस्त, 2009 को प्रधानाचार्य/प्रबन्धक को निलम्बित किया गया और कबीर अहमद, करीमुल्ला खान, फरजन्द अली को सोसाइटी की सदस्यता से हटा दिया गया । उक्त संकल्प तारीख 22 सितम्बर, 2009 के पत्र द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 के अनुसार था ।

7. यह भी अभिकथित किया गया है कि दूसरी ओर, करीमुल्ला खान, जिसने निलम्बित प्रधानाध्यापक से दुरभिसंधि कर ली थी, ने सहायक रजिस्ट्रार के समक्ष एक आवेदन फाइल किया जिसके साथ उसने तारीख 16 अगस्त, 2009 की अभिकथित बैठक का संकल्प भी संलग्न किया, जिस पर सहायक रजिस्ट्रार ने याचियों को तारीख 12 अक्तूबर, 2009 और तारीख 14 अक्तूबर, 2009 को दो नोटिसें भेजीं जिसका मोहम्मद फखरुद्दीन खान याची सं. 1 ने तारीख 26 अक्तूबर, 2009 को सविस्तार उत्तर प्रस्तुत किया ।

8. चूंकि करीमुल्ला खान ने मोहम्मद अफजल मरकाजी दारुल इफ्ता,

82 सौदागरन, बरेली शरीफ द्वारा जारी तारीख 16 अगस्त, 2009 के अपने संकल्प में तारीख 6 जुलाई, 2009 के फतवा का अवलंब लिया था । उक्त फतवा के बारे में जानकारी होने के पश्चात् मोहम्मद फखरुद्दीन खान ने मोहम्मद अफजल मरकाजी दारुल इफ्ता, 82 सौदागरन, बरेली शरीफ को तारीख 15 जनवरी, 2010 को एक पत्र भेजा जिसने फतवा जारी किया था । तारीख 4 नवम्बर, 2009 को पूर्ववर्ती संकल्प और अभिलेखों के साथ एक आवेदन किया । तारीख 14 नवम्बर, 2009 और तारीख 15 दिसम्बर, 2009 को जो तारीख नियत की गई थी, को फखरुद्दीन खान ने तारीख 15 दिसम्बर, 2009 को कोई उत्तर प्रस्तुत नहीं किया । उसने प्रत्यर्थी सं. 2 के समक्ष उत्तर प्रस्तुत किया जिसे याचियों पर तारीख 30 दिसम्बर, 2009 को तामील किया गया । तारीख 30 दिसम्बर, 2009 को मामला तारीख 16 फरवरी, 2010 के लिए स्थगित कर दिया जबकि तारीख 16 फरवरी, 2010 को पीठासीन अधिकारी शहर से बाहर था इसलिए, मामला तारीख 5 मार्च, 2010 के लिए स्थगित कर दिया गया । तारीख 30 दिसम्बर, 2009 को मामला तारीख 28 जनवरी, 2010 के लिए स्थगित कर दिया गया और उसी दिन मामला तारीख 5 मार्च, 2010 के लिए नियत किया गया क्योंकि पीठासीन अधिकारी शहर से बाहर था । तारीख 5 मार्च, 2010 को शुक्रवार था, याची सं. 2 पूर्वाह्न 10.00 बजे से 12.00 बजे तक प्रत्यर्थी सं. 2 के कार्यालय में उपस्थित रहा । यद्यपि, उसके काउंसेल के अनुसार वह प्राप्त तारीख को शुक्रवार की प्रार्थना करने गया था । काउंसेल मामले की देखभाल करता रहा किन्तु, तारीख 5 मार्च, 2010 को न तो उसे मामले में बुलाया गया न ही सुनवाई की गई और विद्वान् प्रत्यर्थी सं. 2 ने एकपक्षीय सुनवाई आरम्भ किए बिना आदेशों को आरक्षित रख लिया था । इन तथ्यों के प्रतिकूल निष्कर्षों से आक्षेपित आदेश गलत हैं और प्रतिकूल हैं । तारीख 8 मार्च, 2010 को याचियों ने प्रत्यर्थी सं. 2 के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया । याचियों को सुनवाई का अवसर दिए बिना प्रत्यर्थी सं. 2 ने तारीख 27 मार्च, 2010 के आदेश द्वारा आक्षेपित आदेश पारित किया । प्रत्यर्थी सं. 2 ने तारीख 27 मार्च, 2010 के आक्षेपित आदेश में यह गलत मताभिव्यक्तियां की हैं कि मोहम्मद फखरुद्दीन ने तारीख 9 अप्रैल, 2008 को त्यागपत्र दिया था, करीमुल्ला खान ने परिवाद तारीख 7 मई, 2009 को या तारीख 8 सितम्बर, 2009 को प्रस्तुत किया था, वास्तव में, करीमुल्ला खान द्वारा परिवाद तारीख 5 सितम्बर, 2008 को प्रस्तुत किया गया था । याचियों को तारीख 7 मई, 2008 और तारीख 8 सितम्बर, 2008 के परिवाद की कोई प्रति नहीं दी गई न ही याचियों को कभी भी इसकी प्रति दी गई न ही उन्हें इसकी जानकारी थी कि मामले की सुनवाई तारीख 4 मार्च, 2010 को होनी थी ।

9. प्रत्यर्थी सं. 2 को आक्षेपित आदेश पारित करने का न तो कोई अधिकार था अथवा न ही कोई प्राधिकार क्योंकि उन्होंने आक्षेपित आदेश पारित करने के पूर्व याचियों को सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया है । इस प्रकार, प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा पारित तारीख 27 मार्च, 2010 का आदेश पूर्णतया बिना अधिकारिता के है और खारिज किए जाने योग्य है । उन्होंने वर्ष 2006-07 में रजिस्ट्रीकृत सूची के आधार पर नए निर्वाचन कराने के लिए जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी को गलत निर्देश दिया है ।

10. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री एम. ए. कादिर की दो मुख्य दलीलें हैं, प्रथमतः, उन्होंने यह तर्क दिया कि यह एक निर्वाचन विवाद्यक है और सहायक रजिस्ट्रार को सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 की धारा 25(2) के अधीन मामले को विहित प्राधिकारी को निर्दिष्ट करना चाहिए था और द्वितीयतः, उन्होंने यह तर्क दिया कि यद्यपि रजिस्ट्रार को मामले का विनिश्चय करने की शक्ति थी फिर भी उन्होंने इसे गलत तौर पर विनिश्चित किया और अतएव, रजिस्ट्रार के आदेश के साथ ही माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा पुष्ट भाग भी गलत है । सुविधा के लिए सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 की धारा 25 नीचे प्रस्तुत की जा रही है :–

> "25. **पदाधिकारियों के निर्वाचन से संबंधित विवाद्यक** – (1) विहित प्राधिकारी रजिस्ट्रार द्वारा या उत्तर प्रदेश में रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी के कम से एक-चौथाई सदस्यों द्वारा निर्देश किए जाने पर ऐसी सोसाइटी के निर्वाचन या एक पदधारी के पद में बने रहने से संबंधित किसी संदेह या विवाद्यक के बारे में संक्षिप्त तरीके से सुनवाई और विनिश्चय कर सकता है और उसके संबंध में ऐसा आदेश पारित कर सकता है जैसा वह ठीक समझे ।"

इसके आधारभूत घटकों का विखंडन करने पर इस धारा के निम्नलिखित अवयव हैं :–

(क) एक विहित प्राधिकारी जो संक्षिप्ततः यह विनिश्चित कर सकता है –

(i) निर्वाचन के संबंध में किसी संदेह या विवाद्यक,

(ii) ऐसी सोसाइटी के पदधारियों के पद में बने रहने, वह यह कर सकता है,

(iii) रजिस्ट्रार द्वारा किए गए निर्देश पर, अथवा

(iv) उत्तर प्रदेश में रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी के एक चौथाई

सदस्यों द्वारा किए गए निर्देश पर ।

11. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने मुद्दा सं. 1 पर बल देते हुए अपील में यह आधार लिया कि उसके द्वारा चार निर्णयज विधियों को निर्दिष्ट किया गया है जिन पर विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा किसी भी प्रकार से विचार नहीं किया गया । उन्होंने यह तर्क दिया कि इन निर्णयों में यह अधिकथित है कि रजिस्ट्रार को निर्वाचन विवाद्यक के मामले को विहित प्राधिकारी के समक्ष निर्दिष्ट करना चाहिए । इस संबंध में, अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा निर्दिष्ट प्रथम मामला **उरवा बाजार, शिक्षा सोसाइटी, गोरखपुर और अन्य** बनाम **सहायक रजिस्ट्रार, फर्म, सोसाइटी और यूनिट, खंड गोरखपुर और अन्य**[1] है । पूर्वोक्त मामले के तथ्यों का ध्यानपूर्वक परीक्षा करने पर यह प्रतीत होता है कि सोसाइटी के रजिस्ट्रीकरण के नवीकरण के लिए पक्षकारों के विरोधी दावे सहायक रजिस्ट्रार के समक्ष लम्बित थे । तारीख 29 जनवरी, 1986 को आयोजित निर्वाचन के संबंध में सूची का कोई हल नहीं दिया गया था । जिला विद्यालय निरीक्षक को न तो उत्तर प्रदेश इन्टरमीडिएट शिक्षा अधिनियम अथवा न ही उसके अधीन विरचित विनियमों के अधीन ऐसी शक्ति निहित थी कि वह समिति की मान्यता के बारे में कोई आदेश पारित करे जब तक कि विवाद्यक विधिक तौर पर विनिश्चित नहीं हो जाता है । जिला विद्यालय निरीक्षक, गोरखपुर ने इस तथ्य को विवेक में रखते हुए और कर्मचारियों तथा अध्यापकों की दुर्दशा के सुधार को ध्यान में रखते हुए, वेतन संदाय अधिनियम, 1971 की धारा 5(1) के अधीन तात्पर्यित तारीख 29 मार्च, 1986 का आदेश पारित किया । इसी प्रकार, जिला विद्यालय निरीक्षक ने प्रबन्धक के रूप में नरसिंह प्रसाद सिंह को एक समिति की मान्यता देते हुए तारीख 17 अप्रैल, 1986 को एक नया आदेश पारित किया, यह ही इस रिट याचिका में विवाद्यक है ।

12. उपर्युक्त उल्लिखित मामले के तथ्यों से यह स्पष्ट है कि विरोधी समितियों में से एक की मान्यता को रजिस्ट्रार द्वारा विनिश्चित नहीं किया जा सकता है । इसमें इस प्रश्न का अवधारण अन्तर्वलित है कि किस समिति का उपर्युक्त नामित किस व्यक्ति को सम्यक् रूप से निर्वाचित किया गया है । सहायक रजिस्ट्रार ने इस विवाद्यक को विनिश्चित करने की प्रक्रिया आरम्भ की और उस सोसाइटी के रजिस्ट्रीकरण का नवीकरण किया जिसका खिरोधी सिंह प्रबन्धक था । यह सहायक रजिस्ट्रार के क्षेत्राधिकार या क्षमता के भीतर नहीं था । इसे विहित प्राधिकारी के समक्ष

---

[1] (1988) यू. पी. एल. बी. ई. सी. 515.

निर्दिष्ट किया जाना चाहिए था और अतएव आदेश अभिखंडित किए जाने योग्य है । इसलिए, यह अत्यधिक स्पष्ट है कि मामले के तथ्य वर्तमान विवाद्यक के तथ्यों से पूर्णरूपेण भिन्न है अतएव, यह निर्णयज विधि सुनिश्चित तौर पर वर्तमान रिट याचिका में संविवाद को विनिश्चित करने के लिए अच्छा प्राधिकार नहीं है, अतएव, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने इस पर सही तौर पर ध्यान नहीं दिया ।

13. श्री कादिर द्वारा निर्दिष्ट द्वितीय मामला **विजय नारायण सिंह** बनाम **रजिस्ट्रार, फर्म, सोसाइटी और चिट्स रजिस्ट्रीकरण, उत्तर प्रदेश, लखनऊ और अन्य**[1] है । यह पुनः दोहराया गया कि निर्वाचन विवाद्यक को विहित प्राधिकारी के समक्ष निर्दिष्ट किया जाना चाहिए । इस विधि को किसी ने भी विवादित नहीं किया है किन्तु वर्तमान मामले के तथ्य अन्यथा हैं, अतएव, यह निर्णयज विधि भी लागू नहीं होती है ।

14. तृतीय निर्णयज विधि, **प्रबन्ध समिति, ग्रामोदय शिक्षा परिषद् ग्रामोत्थान जूनियर हाई स्कूल, वरवाला, जिला मुजफ्फरनगर और एक अन्य** बनाम **जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, मुजफ्फरनगर और एक अन्य**[2] है । निर्णय का पैरा 5 निम्नलिखित उद्धृत है :–

> पक्षकारों के बीच विवाद्यक यह है कि किसका निर्वाचन वैध है एक वह जो तारीख 10 फरवरी, 1986 को आयोजित हुआ था जिसमें प्रत्यर्थी संतोष कुमार प्रबन्धक के रूप में निर्वाचित किया गया है अथवा एक वह जो तारीख 23 फरवरी, 1986 को आयोजित हुआ है जिसमें याची प्रबन्धक के रूप में निर्वाचित हुआ है ? सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 25 में अन्तर्विष्ट उपबंधों के अधीन सहायक रजिस्ट्रार के समक्ष निर्वाचन के संबंध में विवाद्यक आते हैं और ऐसी परिस्थितियों में, यह सहायक रजिस्ट्रार पर पदभार होता है कि वह अधिनियम की धारा 25 के अधीन विहित प्राधिकारी के समक्ष पक्षकारों के बीच विवाद्यक को निर्दिष्ट करें । ऐसा करने के बजाय उससे विधि के अधीन अन्यथा अपेक्षित नहीं होता है, सहायक रजिस्ट्रार ने तारीख 22/24 मई, 1986 के अपने आदेश में यह मत व्यक्त किया है कि यह याची के लिए खुला था कि वह अधिनियम की धारा 25(1) के अधीन सोसाइटी के एक चौथाई सदस्यों के साथ

---

[1] (1981) यू. पी. एल. बी. ई. सी. 308.

[2] (1987) यू. पी. एल. बी. ई. सी. 989.

विहित प्राधिकारी की अधिकारिता का अवलंब ले सके । सहायक रजिस्ट्रार का यह दृष्टिकोण सुस्पष्टतः उचित नहीं था और यह उपर्युक्त निर्दिष्ट कई मुकदमों में अच्छी तरह से साबित होता है ।'

15. यह पुनः सुस्पष्ट है कि इस मामले में स्पष्ट निर्वाचन विवाद्यक है और अतएव, रजिस्ट्रार द्वारा मामले को विहित प्राधिकरण के समक्ष निर्दिष्ट किया जाना चाहिए था किन्तु उस मामले के तथ्य वर्तमान मामले में लागू नहीं होते हैं ।

16. जहां तक मामला सं. 4, **प्रबन्ध समिति, किसान शिक्षा सदन, बंकशाही, जिला बस्ती और एक अन्य** बनाम **सहायक रजिस्ट्रार, फर्म, सोसाइटी और चिट्स, गोरखपुर खंड, गोरखपुर और एक अन्य**[1] है जिसके निर्णय के पैरा 3 में निम्नलिखित अधिकथित किया गया है :–

"अधिनियम के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए, हम प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल के निवेदन में बल पाते हैं । अधिनियम की धारा 4 यह उपबंध करती है कि एक सोसाइटी की प्रबंध निकाय के सदस्यों की सूची रजिस्ट्रार के समक्ष फाइल की जाएगी । वह सूची रजिस्ट्रार के रूप में अपने प्रशासनिक कृत्यों के अनुपालन करने के प्रयोजन के लिए रजिस्ट्रार द्वारा कायम रखी जाती है । अधिनियम की धारा 25 यह उपबंध करती है कि जब कभी सोसाइटी के प्रबंध निकाय के सदस्यों के निर्वाचन के बारे में कोई संदेह या विवाद्यक उद्भूत किया जाता है तो रजिस्ट्रार ऐसे संदेह या विवाद्यक को विहित प्राधिकारी के समक्ष उसके विनिश्चय के लिए निर्दिष्ट कर सकता है । किन्तु जब सोसाइटी के एक चौथाई सदस्यों द्वारा प्रबंध निकाय या सोसाइटी के सदस्यों के निर्वाचन से संबंधित कोई संदेह या विवाद्यक उद्भूत किया जाता है तो मामला स्वतः विहित प्राधिकारी के समक्ष विनिश्चय के लिए चला जाता है और ऐसे मामले में रजिस्ट्रार की कोई भूमिका नहीं होती है । रजिस्ट्रार, इस शक्ति का प्रयोग करते समय कि क्या सोसाइटी की प्रबंध निकाय के सदस्यों के निर्वाचन से संबंधित किसी संदेह या विवाद्यक को विहित प्राधिकारी के समक्ष निर्दिष्ट करना चाहिए या नहीं, तो रजिस्ट्रार, मामले के तथ्यों में अपना विवेक लागू करता है और विनिश्चय लेता है । ऐसा विनिश्चय लेते समय, रजिस्ट्रार द्वारा सभी सुसंगत परिस्थितियों को ध्यान में रखना नितांत न्यायोचित होगा, जैसा कि उसने वर्तमान मामले में किया है । यदि

[1] (1995) 2 यू. पी. एल. बी. ई. सी. 1242.

एक आक्षेप एक व्यक्ति की सदस्यता के बारे में उद्भूत किया जाता है । हमारे मत में, रजिस्ट्रार का यह कर्तव्य है कि वह अपने प्रशासनिक प्रयोजन के लिए इस बात की जांच करे कि क्या संबंधित व्यक्ति सोसाइटी का सदस्य है या नहीं । यदि रजिस्ट्रार इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि ऐसा व्यक्ति सोसाइटी का सदस्य नहीं है तो वह इस बात के लिए आबद्ध नहीं है कि वह उसके निर्वाचन से संबंधित विवाद्यक या संदेह को विहित प्राधिकारी के समक्ष विनिश्चय के लिए निर्दिष्ट करें । वर्तमान मामले में, रजिस्ट्रार ने यह निष्कर्ष निकालने के लिए मामले के तथ्यों में अपना विवेक लागू किया है कि क्या इसमें के द्वितीय अपीलार्थी शिक्षा सदन का सदस्य था या नहीं । उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि वह कभी भी सोसाइटी का सदस्य नहीं था । यह शुद्धतः तथ्य का प्रश्न है । यदि कोई व्यक्ति ऐसे विनिश्चय से व्यथित महसूस करता है तो समुचित अनुक्रम में उसे सिविल न्यायालय के समक्ष जाना चाहिए और समुचित अनुतोष की ईप्सा करनी चाहिए । रजिस्ट्रार सिविल न्यायालय के विनिश्चय द्वारा आबद्ध है और उसका विनिश्चय सिविल न्यायालय द्वारा पारित डिक्री के अध्यधीन होगा ।"

17. इस निर्णय का विनिश्चयाधार यह है कि क्या सोसाइटी के लिए एक व्यक्ति की प्राथमिक सदस्यता विवादित है या क्या यह शिकायत प्राप्त हुई है कि एक सदस्य सोसाइटी का वैध सदस्य नहीं है तो रजिस्ट्रार जो अधिनियम की धारा 4 के अधीन सदस्यों की सूची रखता है, संज्ञान ले सकता है और तथ्यों में अपना विवेक लागू कर सकता है तथा यह घोषित कर सकता है कि एक व्यक्ति वैध सदस्य है या नहीं । यह प्रतीत होता है कि वर्तमान मामला नियम की धारा 25 के बजाय धारा 4 के अधीन ही आता है । रजिस्ट्रार ने साधारण तौर पर यह घोषित किया है कि फखरुद्दीन खान प्रबन्ध समिति का वैध सदस्य नहीं है, अतएव, प्रबन्ध समिति के सचिव/प्रबन्धक के रूप में उसकी नियुक्ति को भी अनुमोदित नहीं किया जा सकता । रजिस्ट्रार ने अपने आदेश में साधारण तौर पर सदस्यता विवाद्यक का विनिश्चय किया न कि निर्वाचन विवाद्यक का विनिश्चय किया । अतएव, अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल की प्रथम दलील इस सीमा तक असफल होती है कि रजिस्ट्रार इस आबद्धता के अधीन था कि वह मामले को विहित प्राधिकारी के पास भेजे । रजिस्ट्रार सदस्यता विवाद्यक पर विनिश्चय करने के लिए पूर्णतः सक्षम था जिसे उसने तारीख 27 मार्च, 2010 के अपने आदेश द्वारा विनिश्चित किया है ।

18. प्रश्न, जो अब विनिश्चय के लिए बचता है वह यह है कि क्या रजिस्ट्रार का विनिश्चय वैध है या नहीं और क्या रजिस्ट्रार ने विधि के अनुसरण में कार्यवाही की है या नहीं । दो सुसंगत तारीखें हैं, एक तारीख 14 अगस्त, 2009 है और दूसरा तारीख 16 अगस्त, 2009 है । करीमुल्ला खान द्वारा विरोधी पक्षकार के विद्वान् काउंसेल की दलील यह है कि तारीख 14 अगस्त, 2009 को कोई बैठक नहीं हुई है । बैठक को मात्र कागजातों में ही दर्शित किया गया है और यह पिछली तारीख की है । याचियों-अपीलार्थियों की दलील यह है कि तारीख 16 अगस्त, 2009 को आयोजित बैठक विधिक तौर पर मान्य नहीं है क्योंकि सदस्य जिनका बैठक में मत देना कथित है, उन्हें तारीख 14 अगस्त, 2009 के संकल्प द्वारा पहले ही हटा दिया गया था । तारीख 14 अगस्त, 2009 को आयोजित बैठक के बारे में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इसे अयुक्तियुक्त विलम्ब के साथ रजिस्ट्रार के पास भेजा गया था और यह रजिस्ट्रार के कार्यालय में तारीख 4 नवम्बर, 2009 को पहुंचा था ।

19. याचियों/अपीलार्थियों का पक्षकथन यह है कि तारीख 14 अगस्त, 2009 को सोसाइटी की प्रबन्ध समिति ने एक संकल्प पारित करते हुए करीमुल्ला खान, कबीर अहमद और फरजन्द अली को सोसाइटी के साधारण सभा की सदस्यता से हटा दिया था । उक्त संकल्प को सहायक रजिस्ट्रार ने तारीख 22 सितम्बर, 2009 को अनुमोदित किया था । दूसरी ओर, यह अभिकथित किया गया है कि सोसाइटी की प्रबन्ध समिति ने तारीख 16 अगस्त, 2009 के संकल्प द्वारा मोहम्मद फखरुद्दीन खान को साधारण सभा की सदस्यता के साथ ही सोसाइटी की प्रबन्ध समिति के पदभार से भी हटा दिया था, क्योंकि उसे सोसाइटी की उपविधि के खंड 12 के उल्लंघन में नामांकित किया गया था और इस प्रभाव का तारीख 6 जुलाई, 2009 का फतवा मोहम्मद अफजल रिजवी मरकाजी दारुल इफता, 82, सौदागरन, बरेली शरीफ, बरेली द्वारा जारी किया गया था ।

20. याचियों/अपीलार्थियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री कादिर का मुख्य तर्क यह है कि जब करीमुल्ला खान को तारीख 14 अगस्त, 2009 को आयोजित बैठक में सोसाइटी की साधारण सभा की सदस्यता से हटाया गया था तो वह तारीख 16 अगस्त, 2009 को आयोजित प्रबन्ध समिति की बैठक में भाग नहीं ले सकता था न ही वह सोसाइटी की प्रबन्ध समिति के सचिव/प्रबन्धक के रूप में कार्य कर सकता था । इस बैठक में लिए गए विनिश्चय का कोई परिणाम नहीं है क्योंकि बैठक की गणपूर्ति पूरी नहीं

होती है यदि सदस्य जिसे तारीख 4 अगस्त, 2009 को हटा दिया गया हो, को अपवर्जित कर दिया जाता है । उनका अगला तर्क यह है कि फखरुद्दीन खान यथाअपेक्षित सच्चा सुन्नी है और उसकी सदस्यता सोसाइटी की उपविधि के नियम 12 के उल्लंघन में नहीं है । उसे इस आधार पर हटाया नहीं जा सकता था और रजिस्ट्रार सदस्यता सूची से उसका नाम अपवर्जित करने में प्रकटतः गलती की है । आगे, रजिस्ट्रार को मोहम्मद फखरुद्दीन को अपना उत्तर फाइल करने के लिए कोई अवसर दिए बिना तारीख 7 फरवरी, 2010 को जारी फतवा का अवलंब नहीं लेना चाहिए था, वस्तुतः वे फतवा का पालन करने के लिए कभी भी सहमत नहीं थे जैसा कि उन्होंने आक्षेपित आदेश में उल्लिखित किया है ।

21. माननीय एकल न्यायाधीश ने विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता के प्रत्येक तर्कों पर विचार किया । माननीय एकल न्यायाधीश ने यह निष्कर्ष निकाला कि रजिस्ट्रार ने साधारणतया फतवा पर कार्य नहीं किया । आरम्भतः फतवा बरेली शरीफ द्वारा तारीख 6 जुलाई, 2009 को जारी किया गया था जिसके आधार पर प्रबन्ध समिति ने तारीख 16 अगस्त, 2009 को मोहम्मद फखरुद्दीन खान को साधारण सभा से हटा दिया था और तत्पश्चात् सचिव/ प्रबन्धक के पद से भी हटा दिया था । उसके बाद तारीख 7 फरवरी, 2010 को सुस्पष्टतः यह फतवा दिया गया था कि मोहम्मद फखरुद्दीन सुन्नत जमात का सच्चा सदस्य नहीं था, अतएव, रजिस्ट्रार ने तारीख 16 अगस्त, 2009 के संकल्प के आधार पर ही कार्य किया है, जो वस्तुतः फतवा द्वारा समर्थित है । रजिस्ट्रार की कार्रवाई फतवा के बजाय प्रबन्ध समिति के संकल्प पर आधारित है । रजिस्ट्रार द्वारा फतवा का प्रयोग उपविधि के खंड 12 की अपेक्षा के बारे में अपने विवेक का स्पष्टीकरण के लिए किया गया था । यह देखने के अनुक्रम में कि क्या तारीख 16 अगस्त, 2009 को प्रबंध समिति द्वारा पारित संकल्प खंड 12 की भावना के अनुसरण में था, रजिस्ट्रार ने फतवा का अवलंब लिया है । यह एक धार्मिक मामला है, धार्मिक संस्था द्वारा जारी फतवा रजिस्ट्रार की मात्र यह निष्कर्ष निकालने में सहायता कर सकता था कि तारीख 16 अगस्त, 2009 के संकल्प द्वारा मोहम्मद फखरुद्दीन के नाम को हटाना वस्तुतः उपविधि की भावना के अनुसरण में था । आगे, सहायक रजिस्ट्रार ने दोनों पक्षकारों को तारीख 12 अक्तूबर, 2009 को अपने समक्ष उपस्थित होने और अपना साक्ष्य फाइल करने के लिए नोटिस जारी किया था । माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा यह भी मत व्यक्त किया गया है कि तारीख 7 फरवरी, 2010 का फतवा दोनों पक्षकारों की सहमति से जारी किया गया था । यह प्रतीत होता है कि

माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा मामले पर विचार करते हुए सभी पहलुओं पर विचार किया गया है । जहां तक तारीख 14 अगस्त, 2009 के संकल्प का संबंध है याचियों/अपीलार्थियों द्वारा उसे सहायक रजिस्ट्रार को संसूचित करने में हुए विलम्ब के बारे में कोई समाधानप्रद उत्तर नहीं दिया गया है । इसके अतिरिक्त, यह भी स्पष्ट नहीं है कि मोहम्मद फखरुद्दीन खान के लिए तारीख 14 अगस्त, 2009 का संकल्प पारित करने और तीन सदस्यों को निष्काषित करने का क्या कारण था । माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा यह कारण दिया गया है कि तारीख 14 अगस्त, 2009 का संकल्प पिछली तारीख का प्रतीत होता है, यद्यपि यह किसी तथ्यात्मक साक्ष्य पर आधारित नहीं है किन्तु इससे यह अतिसमाधानप्रद और तार्किक निष्कर्ष निकलता है कि संकल्प कूटरचित और पिछली तारीख का था जिससे कि तारीख 16 अगस्त, 2009 के संकल्प के प्रभाव को अकृत किया जा सके ।

22. इस प्रकार, दोनों विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ताओं के क्रमशः तर्कों को सुनने के पश्चात्, उद्धृत निर्णयज विधियों का परिशीलन करने और संलग्न दस्तावेजों का परिशीलन करने के पश्चात् हम इस सुनिश्चित निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि इस मामले में कोई निर्वाचन विवाद्यक नहीं था । रजिस्ट्रार के समक्ष साधारणतया सदस्यता का विवाद्यक था जिसे रजिस्ट्रार द्वारा अधिनियम के अधीन उसमें निहित शक्तियों के आधार पर अच्छी तरह से विनिश्चित किया जा सकता था । रजिस्ट्रार के समक्ष ऐसी कोई सामग्री नहीं थी कि वह अधिनियम की धारा 25 के अधीन मामले को विहित प्राधिकारी के समक्ष निर्दिष्ट करे । रजिस्ट्रार ने यह विनिश्चित किया कि अपीलार्थी सोसाइटी का वैध सदस्य नहीं है क्योंकि उसे उपविधि के नियम 12 के उल्लंघन में सदस्यता दी गई थी । इस निष्कर्ष पर पहुंचने में उन्होंने अपीलार्थी को नोटिस दिया है । माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा सभी तर्कों पर समाधानप्रद रूप से विचार किया गया है । हम, उनके द्वारा अपनाए गए मत से पूर्णरूपेण सहमत हैं ।

23. अपील भ्रांतिपूर्ण है और गुणागुण रहित है । तद्नुसार, यह खारिज की जाती है । तथापि, कोई खर्चा अधिरोपित नहीं किया जा रहा है ।

अपील खारिज की गई ।

क.

सेठ हबीब-उर-रहमान और अन्य

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

तारीख 5 अक्तूबर, 2010

मुख्य न्यायमूर्ति फरदीनो इनासियो रिबैलो और न्यायमूर्ति ए. पी. साही

उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा अधिनियम, 1921 – धारा 16-क – माध्यमिक विद्यालय – प्रबंधतंत्र – कार्यकाल के विस्तार के लिए संकल्प – प्राधिकारियों द्वारा अनुमोदन – ऐसे विस्तार का फायदा भविष्य में चयनित समिति को प्राप्त होगा न कि संकल्प प्रस्थापित करने वाली समिति को ।

यह अपील एक रिट याचिका में इस न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश के निर्णय की विधिमान्यता को प्रशनगत करते हुए हमारे समक्ष के तीन अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई है, जिसके द्वारा जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा तारीख 15 मई, 2004 को पारित आदेश को और तत्पश्चात् संयुक्त शिक्षा निदेशक की अध्यक्षता में क्षेत्रीय स्तर समिति द्वारा तारीख 31 मई, 2007 को पारित आदेश को आक्षेपित किया गया है और परिणामस्वरूप, जिसके द्वारा प्रत्यर्थी सं. 4 को ओ. के. एम. इंटर कालेज, लार, जिला देवरिया और ए. आर. कन्या उच्चतर माध्यमिक स्कूल, लार, जिला देवरिया की प्रबंध समिति के प्रबंधक के रूप में मान्यता दी गई है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – तारीख 4 अगस्त, 2003 को एक सरकारी आदेश जारी किया गया था जिसके द्वारा यह उपबंध किया गया था कि प्रशासनिक स्कीम में संशोधन का अनुमोदन करने वाला आदेश जो सक्षम प्राधिकारी द्वारा प्रबंध समिति के कार्यकाल को 3 वर्ष से 5 वर्ष के लिए बढ़ाने के लिए पारित किया गया था, नई चयनित समिति को लागू होगा न कि उस समिति को जिसने अपने कार्यकाल के दौरान ऐसे विस्तार के लिए संकल्प पारित किया था । परिणामतः उक्त सरकारी आदेश के आधार पर विस्तार का लाभ भविष्य में चयनित प्रबंध समिति के लिए उपलब्ध होगा न कि उस प्रबंध समिति को जिसने ऐसा संकल्प पारित किया था । किसी संशोधन का स्वतः प्रवर्तन नहीं होता है और यह सक्षम प्राधिकारी द्वारा अनुमोदन के अध्यधीन होता है । न तो रिट याचिका में और न ही वर्तमान अपील में

अभिवचनों को साबित करने के लिए ऐसा कोई दस्तावेज या संपुष्टि साक्ष्य अभिलेख पर पेश किया गया है कि प्रबंधतंत्र ने ऐसे किसी संशोधन के लिए आवेदन किया था या उसे वर्ष 1983 में सक्षम प्राधिकारी द्वारा अनुमोदित किया गया था । अपीलार्थियों की ओर से श्री अरविन्द श्रीवास्तव ने यह दलील दी कि पूर्वोक्त तथ्य की 1987 की रिट याचिका सं. 9897 के अभिवचनों में प्रबंध समिति द्वारा की गई स्वीकृति को ध्यान में रखते हुए जांच किए जाने की आवश्यकता नहीं है और चूंकि स्वीकृति साक्ष्य का बेहतर भाग होगी इसलिए किसी अतिरिक्त सबूत की आवश्यकता नहीं होगी । हमने इसका परिशीलन किया और यह पाया कि न्यायालय ने निर्वाचन की विधिमान्यता की जांच करने के लिए शिक्षा उप निदेशक को निदेश दिया था और तत्पश्चात् यह विनिश्चय किया था कि क्या वहां किसी प्रशासक की नियुक्ति की जा सकती है जहां प्रबंध समिति का कार्यकाल 3 वर्ष ओर एक मास के पश्चात् समाप्त हो गया था । हमारी राय में उक्त विनिश्चय यह अभिनिर्धारित नहीं करता कि इसमें प्रशासनिक स्कीम में किसी संशोधन को अनुमोदित करते हुए आदेश किया गया था जैसी कि अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा दलील दी गई है । न्यायालय ने इस उपधारणा के आधार पर कार्यवाही की थी कि यदि ऐसी स्थिति थी तो प्राधिकारी तद्नुसार अपनी शक्ति का प्रयोग करेगा । तथ्यतः यह नहीं पाया गया था कि प्रशासनिक स्कीम पहले ही संशोधित की जा चुकी थी और 3 वर्ष और एक मास की समाप्ति के बाद प्रशासक की नियुक्ति की जा सकती थी । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए, हमें इस दलील के समर्थन में कोई सामग्री प्रतीत नहीं होती कि स्वीकृततः प्रशासनिक स्कीम 3 वर्ष और एक मास पूरा करने पर प्रबंध समिति की अवधि की समाप्ति के पश्चात् प्रशासक की नियुक्ति के लिए किसी उपबंध को निगमित करते हुए वर्ष 1983 में संशोधित कर दी गई थी । इसलिए अपीलार्थियों की ओर से इस बिंदु पर दी गई दलील स्वीकृत नहीं की जा सकती । इसके अलावा, यह अभिलेख पर है कि समिति का तारीख 2 मई, 1999 को चयन हुआ था, जिसका कि प्रत्यर्थी सं. 4, वर्ष 2001 में प्रबंधक था जिसने प्रबंध समिति के कार्यकाल को 3 वर्ष से 5 वर्ष के लिए बढ़ाने के लिए एक संशोधन प्रस्तावित किया था । इसे संयुक्त शिक्षा निदेशक द्वारा तारीख 30 सितम्बर, 2001 को अनुमोदित किया गया था जिसे अपीलार्थियों द्वारा चुनौती नहीं दी गई है । इस प्रकार जिस संशोधन का अनुमोदन हुआ था वह सभी अन्य संशोधनों को अधिक्रांत करता है जिसे पूर्व में पुरःस्थापित किया गया था । जैसाकि ऊपर निष्कर्ष निकाला गया है,

चूंकि माडल प्रशासनिक स्कीम संस्था में लागू किए जाने के लिए अनुमोदित नहीं हुई थी और चूंकि तारीख 30 सितम्बर, 2001 को अनुमोदित पश्चात्वर्ती संशोधन को चुनौती नहीं दी गई थी, इसलिए अपीलार्थियों की यह दलील कि वर्ष 1999 में चुने हुए पदाधिकारी उस समय तक पद पर निरन्तर बने रहने के हकदार नहीं थे जब तब उनके उत्तराधिकारी उक्त अवधि के संबंध में चुने नहीं गए थे, स्वीकार नहीं की जा सकती । अतः, हमारा यह मत है कि विद्यमान प्रशासनिक स्कीम के अधीन तारीख 2 मई, 1999 को चयनित पदाधिकारी 3 वर्ष की अवधि के परे उस समय तक पद पर बने रहने के हकदार थे जब तक कि नए चुनाव नहीं हो जाते । (पैरा 6, 16, 17 और 18)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2009] 2009 (1) ई. सी. एस. 371 :
आर. ए. कन्या इण्टर कालेज, बुलंदशहर और अन्य बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** । 22

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2010 की विशेष अपील सं. 1612.

2007 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 16160 में माननीय न्यायालय द्वारा तारीख 18 अगस्त, 2010 का पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री अरविन्द श्रीवास्तव

प्रत्यर्थी की ओर से श्री टी. एन. तिवारी मुख्य स्थायी काउंसेल

न्यायालय का निर्णय माननीय मुख्य न्यायमूर्ति फरदीनो इनासियो रिबैलो और न्यायमूर्ति ए. पी. साही ने दिया ।

निर्णय

यह अपील एक रिट याचिका में इस न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश के निर्णय की विधिमान्यता को प्रश्नगत करते हुए हमारे समक्ष के तीन अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई है, जिसके द्वारा जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा तारीख 15 मई, 2004 को पारित आदेश को और तत्पश्चात् संयुक्त शिक्षा निदेशक की अध्यक्षता में क्षेत्रीय स्तर समिति द्वारा तारीख 31 मई, 2007 को पारित आदेश को आक्षेपित किया गया है और परिणामस्वरूप, जिसके द्वारा प्रत्यर्थी सं. 4 को ओ. के. एम. इंटर कालेज, लार, जिला

देवरिया और ए. आर. कन्या उच्चतर माध्यमिक स्कूल, लार, जिला देवरिया की प्रबंध समिति के प्रबंधक के रूप में मान्यता दी गई है ।

2. विद्वान् एकल न्यायाधीश ने विवाद से संबंधित आवश्यक तथ्यों को अभिलिखित करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि अपीलार्थियों-याचियों की ओर से प्रबंध समिति के कार्यकाल के विस्तार के संबंध में दी गई दलील स्वीकार नहीं की जा सकती । तथापि, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह भी निदेश दिया कि तारीख 14 मई, 2004 के चुनाव के संबंध में किसी विवाद की तीन मास की अवधि के भीतर क्षेत्रीय स्तर समिति द्वारा जांच की जा सकती है ।

3. अतः प्रत्यर्थी सं. 4 ने एकल न्यायाधीश द्वारा जारी निदेश की सीमा तक तारीख 14 मई, 2004 को आयोजित निर्वाचन की विधिमान्यता की परीक्षा करने के लिए उसी आदेश को आक्षेपित करते हुए 2010 की विशेष अपील सं. 5141 प्रस्तुत की जिसका 2010 की विशेष अपील सं. 1541 के निर्णय के साथ पृथक्तः निपटान किया जा रहा है ।

4. अविवादित तथ्य इस प्रकार हैं कि अंतिम निर्वाचन तारीख 2 मई, 1999 को हुए थे जिसमें प्रत्यर्थी सं. 4 प्रबंधक के रूप में निर्वाचित हुआ था । प्रबंध समिति का कार्यकाल 3 वर्ष है । उक्त अवधि समाप्त होने से पूर्व, प्रत्यर्थी सं. 4 ने यह दावा किया कि तारीख 30 मार्च, 1998 के सरकारी आदेश को ध्यान में रखते हुए 3 वर्ष से 5 वर्ष के लिए प्रबंध समिति का कार्यकाल बढ़ाने के लिए तारीख 27 मई, 2001 को एक संकल्प पारित हुआ था । पूर्वोक्त सरकारी आदेश प्रबंध समिति के कार्यकाल को बढ़ाने के लिए ऐसी संस्था के प्रबंधतंत्र को अनुज्ञात करते हुए उपबंध करता है । संयुक्त शिक्षा निदेशक ने 3 वर्ष से 5 वर्ष के लिए प्रबंध समिति के कार्यकाल को बढ़ाने के लिए प्रबंध समिति के प्रस्ताव की जांच की थी और उसका तारीख 30 सितम्बर, 2001 को अनुमोदन किया था ।

5. यथा प्रस्तावित पूर्वोक्त अनुमोदन के अधीन, प्रत्यर्थी सं. 4 ने यह दलील दी है कि समिति ने जो तारीख 2 मई, 1999 को निर्वाचित हुई थी, 5 वर्ष की अवधि तक लगातार कार्य किया था और तारीख 14 मई, 2004 को नया निर्वाचन हुआ था । प्रत्यर्थी सं. 4 के हस्ताक्षर तारीख 15 मई, 2004 को संस्था के प्रबंधक के रूप में सत्यापित किए गए थे ।

6. तारीख 4 अगस्त, 2003 को एक सरकारी आदेश जारी किया गया था जिसके द्वारा यह उपबंध किया गया था कि प्रशासनिक स्कीम में

संशोधन का अनुमोदन करने वाला आदेश जो सक्षम प्राधिकारी द्वारा प्रबंध समिति के कार्यकाल को 3 वर्ष से 5 वर्ष के लिए बढ़ाने के लिए पारित किया गया था, नई चयनित समिति को लागू होगा न कि उस समिति को जिसने अपने कार्यकाल के दौरान ऐसे विस्तार के लिए संकल्प पारित किया था । परिणामतः उक्त सरकारी आदेश के आधार पर विस्तार का लाभ भविष्य में चयनित प्रबंध समिति के लिए उपलब्ध होगा न कि उस प्रबंध समिति को जिसने ऐसा संकल्प पारित किया था ।

7. यह प्रतीत होता है कि प्रबंध समिति के चुनावों के जो वर्ष 2004 में आयोजित हुए थे, कागज अनुमोदन के लिए क्षेत्रीय स्तरीय समिति को जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा भेजे गए थे और क्षेत्रीय स्तरीय समिति ने तारीख 31 मई, 2007 के आदेश द्वारा वर्ष, 2004 में प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा आयोजित चुनाव अनुमोदित कर दिए थे ।

8. अपीलार्थी ने वर्ष 2004 के चुनावों को मान्यता देने वाले जिला विद्यालय निरीक्षक और क्षेत्रीय स्तरीय समिति द्वारा पारित आदेशों की विधिमान्यता को प्रश्नगत करते हुए 2007 की रिट याचिका सं. 16160 फाइल की थी जिससे वर्तमान अपील उद्भूत हुई है । चुनौती देने के आधार ये थे कि समिति को, जो चयनित हुई थी, उस समिति ने चयनित कराया था, जिसकी अवधि वर्ष 2002 में पहले ही समाप्त हो चुकी थी और इसलिए नए चुनाव प्राधिकारी द्वारा नियुक्त किए जाने वाले किसी प्रशासक द्वारा कराए जाने चाहिए थे । निःवर्तमान समिति द्वारा आयोजित चुनाव एक अविधिमान्य प्रयोग था, जिसे जिला विद्यालय निरीक्षक या संयुक्त शिक्षा निदेशक दोनों में किसी के द्वारा मान्यता नहीं दी जानी चाहिए थी ।

9. अपीलार्थियों-याचियों के विद्वान् काउंसेल श्री अरविन्द श्रीवास्तव ने यह दलील दी कि इस तथ्य के अतिरिक्त कि चुनाव पुरानी समिति द्वारा आयोजित किए गए थे, अन्यथा भी चुनाव प्रशासनिक स्कीम के अनुसार नहीं हुए थे और इसलिए तारीख 14 मई, 2004 के चुनाव की मान्यता प्राधिकारियों द्वारा गलती से दी गई थी । अतः, उन्होंने यह दलील दी है कि प्रशासनिक स्कीम के अनुसार जो प्रबंध समिति के कार्यकाल को बढ़ाने के लिए संशोधित की गई थी, प्रत्यर्थी सं. 4 को न तो नए चुनाव आयोजित कराने का प्राधिकार था और न ही विधिमान्य चुनाव कराया गया था । अतः याची ने मान्यता के आदेश को अभिखंडित करने का अनुरोध किया ।

10. प्रत्यर्थी सं. 4 ने इस आधार पर रिट याचिका का विरोध किया कि इस प्रशासनिक स्कीम में ऐसा कोई उपबंध नहीं था जिसके अधीन

नि:वर्तमान समिति को अक्रियाशील होना समझा जा सकता है और अनुमोदित प्रशासनिक स्कीम के खण्ड-9 में अन्तर्विष्ट उपबंध प्रबंध समिति के पदाधिकारियों को उस समय तक रहने की अनुज्ञा प्रदान करते हैं जब तक कि उनके उत्तराधिकारियों का चयन नहीं होता । उन्होंने यह भी दलील दी है कि 2004 की प्रबंध समिति का कार्यकाल पहले ही समाप्त हो चुका था और वर्ष, 2009 में नए चुनाव कराए गए थे तथा, इसलिए क्षेत्रीय स्तर समिति को उसका न्यायनिर्णयन करने के लिए निदेश देने की अधिकारिता नहीं थी । उन्होंने यह भी दलील दी कि 2004 के चुनावों में कोई अनियमितता नहीं थी और प्रशासनिक स्कीम के अनुसार कराए गए थे । उन्होंने यह भी दलील दी कि जब एक बार समिति का कार्यकाल बढ़ा दिया गया था, तब तारीख 30 मार्च, 1998 के सरकारी आदेश को ध्यान में रखते हुए, उक्त विस्तार वर्ष 1999 में चयनित समिति को भी लागू होता है जो 2004 तक विधिमान्य रूप से बनी रही थी । अतः उन्होंने यह दलील दी कि अपीलार्थियों द्वारा फाइल रिट याचिका विधिविरुद्ध थी और इसलिए कोई अनुतोष प्रदान नहीं किया जाना चाहिए । उन्होंने यह भी दलील दी कि इस निष्कर्ष की, कि तारीख 4 अगस्त, 2003 का सरकारी आदेश भूतलक्षी प्रभाव से लागू नहीं किया जा सकता, पुष्टि की जानी चाहिए और यह पहले ही मंजूर तथा उस तारीख से पूर्व संयुक्त शिक्षा निदेशक द्वारा अनुमोदित निष्कर्ष को लागू नहीं होता ।

11. प्रत्युत्तर में श्री अरविन्द श्रीवास्तव ने प्रबलता से यह दलील दी है कि 1987 की रिट याचिका सं. 9897 में तारीख 30 नवम्बर, 1998 को दिए गए निर्णय से यह साबित होता है कि प्रशासनिक स्कीम एक पूर्ववर्ती संशोधन के अध्यधीन थी जिसके द्वारा खंड-9 के उपबंध उन पदाधिकारियों के निरन्तर बने रहने तक लागू रहते हैं जब तक कि उनके उत्तराधिकारी चुने नहीं जाते और उन्हें माडल प्रशासनिक स्कीम के उपबंधों द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है जो उसके खण्ड-8 में अन्तर्विष्ट है, और उक्त विनिश्चय प्रत्यर्थी सं. 4 पर आबद्धकर है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि 1999 में चुनी गई समिति अक्रियाशील हो गई थी ।

12. विद्वान् स्थायी काउंसेल ने यह दलील दी है कि विद्वान् एकल न्यायाधीश ने निदेश जारी किए हैं और इसलिए तारीख 14 मई, 2004 को आयोजित चुनावों की विधिमान्यता से संबंधित विवाद का विधि के अनुसार विनिश्चय किया जाएगा और विद्वान् एकल न्यायाधीश के निदेशों के अनुसार कार्यवाहियां की जाएंगी जिसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है ।

13. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात् यह प्रतीत होता है कि प्रश्नगत संस्था उत्तर प्रदेश इण्टरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के उपबंधों द्वारा विनियमित होती है और अधिनियम, 1921 की धारा 16-क के अधीन यथा उपबंधित उसकी एक अनुमोदित प्रशासनिक स्कीम है । उक्त स्कीम जैसी कि यह मूल रूप में है, खण्ड-9 में अन्तर्विष्ट है जो इस प्रकार है :–

> "सदस्यों का कार्यकाल – (I) पदाधिकारियों का कार्यकाल और पदेन सदस्य के सिवाय सदस्य का कार्यकाल उस तारीख से तीन वर्ष का होगा जब से वे चुने गए हैं बशर्ते कि प्रत्येक पदाधिकारी का कार्यकाल, उस समय तक सतत समझा जाएगा जब तक कि उसका उत्तराधिकारी न चुना जाए ।"

14. उक्त उपबंध के परिशीलन से इसमें संदेह की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती है कि पदाधिकारियों का कार्यकाल, पदेन सदस्यों के सिवाय इस शर्त के अध्यधीन 3 वर्ष होगा कि वे उस अवधि तक बने रहेंगे जब तक कि उनके उत्तराधिकारियों का चुनाव नहीं होता ।

15. अपीलार्थी की दलील यह है कि उक्त खण्ड वर्ष 1983 में माडल प्रशासनिक स्कीम के पुरःस्थापन के साथ परिवर्तित किया गया है । इसके लिए, रिट याचिका के पैरा सं. 11 और 12 में प्रकथन किए गए हैं । उक्त प्रकथनों से प्रत्यर्थी सं. 4 की ओर से फाइल किए प्रति-शपथपत्र के क्रमशः पैरा सं. 11 और 12 में इनकार किया गया है । प्रशासनिक स्कीम में कोई संशोधन प्रवृत्त करने के लिए कानूनी उपबंध अधिनियम, 1921 की धारा 16-क की उपधारा 5 में अन्तर्विष्ट हैं, जिन्हें नीचे उद्धृत किया जाता है :–

> "16-क (5) प्रत्येक संस्था की प्रशासनिक स्कीम निदेशक के अनुमोदन के अध्यधीन होगी और प्रशासनिक स्कीम में संशोधन या परिवर्तन निदेशक के पूर्व अनुमोदन के बिना नहीं किया जाएगा :
>
> [परंतु जहां किसी संस्था का प्रबंधतंत्र प्रशासनिक स्कीम में किसी संशोधन या परिवर्तन के अनुमोदन से इनकार करने के निदेशक के किसी आदेश द्वारा व्यथित हुआ है, वहां यदि प्रबंधतंत्र के अभ्यावेदन करने पर राज्य सरकार का यह समाधान हो जाता है कि प्रशासनिक स्कीम में प्रस्तावित संशोधन या परिवर्तन संस्था के हित में है तो राज्य सरकार अनुमोदन के लिए निदेशक को आदेश करेगी और निदेशक तद्नुसार कार्रवाई करेगा ।"]

16. अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी संशोधन का स्वतः प्रवर्तन नहीं होता है और यह सक्षम प्राधिकारी द्वारा अनुमोदन के अध्यधीन होता है । न तो रिट याचिका में और न ही वर्तमान अपील में अभिवचनों को साबित करने के लिए ऐसा कोई दस्तावेज या संपुष्टि साक्ष्य अभिलेख पर पेश किया गया है कि प्रबंधतंत्र ने ऐसे किसी संशोधन के लिए आवेदन किया था या उसे वर्ष 1983 में सक्षम प्राधिकारी द्वारा अनुमोदित किया गया था । अपीलार्थियों की ओर से श्री अरविन्द श्रीवास्तव ने यह दलील दी कि पूर्वोक्त तथ्य की 1987 की रिट याचिका सं. 9897 के अभिवचनों में प्रबंध समिति द्वारा की गई स्वीकृति को ध्यान में रखते हुए जांच किए जाने की आवश्यकता नहीं है और चूंकि स्वीकृति साक्ष्य का बेहतर भाग होगी इसलिए किसी अतिरिक्त सबूत की आवश्यकता नहीं होगी ।

17. हमने इसका परिशीलन किया और यह पाया कि न्यायालय ने निर्वाचन की विधिमान्यता की जांच करने के लिए शिक्षा उप निदेशक को निदेश दिया था और तत्पश्चात् यह विनिश्चय किया था कि क्या वहां किसी प्रशासक की नियुक्ति की जा सकती है जहां प्रबंध समिति का कार्यकाल 3 वर्ष और एक मास के पश्चात् समाप्त हो गया था । हमारी राय में उक्त विनिश्चय यह अभिनिर्धारित नहीं करता कि इसमें प्रशासनिक स्कीम में किसी संशोधन को अनुमोदित करते हुए आदेश किया गया था जैसी कि अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा दलील दी गई है । न्यायालय ने इस उपधारणा के आधार पर कार्यवाही की थी कि यदि ऐसी स्थिति थी तो प्राधिकारी तद्नुसार अपनी शक्ति का प्रयोग करेगा । तथ्यतः यह नहीं पाया गया था कि प्रशासनिक स्कीम पहले ही संशोधित की जा चुकी थी और 3 वर्ष और एक मास की समाप्ति के बाद प्रशासक की नियुक्ति की जा सकती थी । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए, हमें इस दलील के समर्थन में कोई सामग्री प्रतीत नहीं होती कि स्वीकृततः प्रशासनिक स्कीम 3 वर्ष और एक मास पूरा करने पर प्रबंध समिति की अवधि की समाप्ति के पश्चात् प्रशासक की नियुक्ति के लिए किसी उपबंध को निगमित करते हुए वर्ष 1983 में संशोधित कर दी गई थी । इसलिए अपीलार्थियों की ओर से इस बिंदु पर दी गई दलील स्वीकृत नहीं की जा सकती ।

18. इसके अलावा, यह अभिलेख पर है कि समिति का तारीख 2 मई, 1999 को चयन हुआ था, जिसका कि प्रत्यर्थी सं. 4, वर्ष 2001 में प्रबंधक था जिसने प्रबंध समिति के कार्यकाल को 3 वर्ष से 5 वर्ष के लिए बढ़ाने के लिए एक संशोधन प्रस्तावित किया था । इसे संयुक्त शिक्षा निदेशक

द्वारा तारीख 30 सितम्बर, 2001 को अनुमोदित किया गया था जिसे अपीलार्थियों द्वारा चुनौती नहीं दी गई है । इस प्रकार जिस संशोधन का अनुमोदन हुआ था वह सभी अन्य संशोधनों को अधिक्रांत करता है जिसे पूर्व में पुरःस्थापित किया गया था । जैसाकि ऊपर निष्कर्ष निकाला गया है, चूंकि माडल प्रशासनिक स्कीम संस्था में लागू किए जाने के लिए अनुमोदित नहीं हुई थी और चूंकि तारीख 30 सितम्बर, 2001 को अनुमोदित पश्चात्वर्ती संशोधन को चुनौती नहीं दी गई थी, इसलिए अपीलार्थियों की यह दलील कि वर्ष 1999 में चुने हुए पदाधिकारी उस समय तक पद पर निरन्तर बने रहने के हकदार नहीं थे जब तक उनके उत्तराधिकारी उक्त अवधि के संबंध में चुने नहीं गए थे, स्वीकार नहीं की जा सकती । अतः, हमारा यह मत है कि विद्यमान प्रशासनिक स्कीम के अधीन तारीख 2 मई, 1999 को चयनित पदाधिकारी 3 वर्ष की अवधि के परे उस समय तक पद पर बने रहने के हकदार थे जब तक कि नए चुनाव नहीं हो जाते ।

19. इसे दृष्टिगत करते हुए, हमारा यह भी मत है कि उक्त समिति नि:वर्तमान समिति है और स्वीकृततः जिसका संस्था पर वस्तुतः नियंत्रण था, इसलिए उस बैठक को बुलाने का विधिक प्राधिकार प्राप्त था जो तारीख 14 मई, 2004 को आयोजित हुई थी ।

20. जहां तक श्री अरविन्द श्रीवास्तव द्वारा दी गई दलील के इस दूसरे भाग का संबंध है, कि तारीख 4 अगस्त, 2003 का सरकारी आदेश वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू होता है और विद्वान् एकल न्यायाधीश ने इसका अर्थ निकालने में गलती की है, यह स्पष्ट होता है कि तारीख 30 मार्च, 1998 का सरकारी आदेश, जिसे विद्वान् एकल न्यायाधीश ने निर्णय में उद्धृत किया है, विद्यमान प्रबंध समिति को ऐसा संशोधन लागू करने पर कोई निर्बंधन उपदर्शित नहीं करता । किसी ऐसे विवरण के अभाव में पूर्वोक्त सरकारी आदेश का जो उक्त विवाद्यक पर मूक है, यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि किया गया संशोधन विद्यमान प्रबंध समिति को लागू नहीं होगा ।

21. श्री श्रीवास्तव की यह दलील कि तारीख 4 अगस्त, 2003 का सरकारी आदेश केवल स्पष्टीकारक प्रकृति का है और यह कोई नई स्थिति स्थापित नहीं करता, स्वीकार नहीं की जा सकती क्योंकि उक्त सरकारी आदेश जैसा कि विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा मत व्यक्त किया गया है, प्राधिकारी द्वारा प्रबंध समिति के कार्यकाल को बढ़ाने से संबंधित अनुमोदन के प्रभाव को लागू करने के लिए पूर्णतया नए मत को प्रस्थापित करना है । वर्तमान मामले में, 5 वर्ष की अवधि बढ़ाने वाले संशोधन के लिए अनुमोदन

बहुत पहले वर्ष 2001 में उक्त सरकारी आदेश को प्रवृत्त करने से लगभग 2 वर्ष पूर्व मंजूरी दी गई है ।

22. इसके अतिरिक्त, तारीख 4 अगस्त, 2003 का सरकारी आदेश वर्ष 2002 में 3 वर्ष समाप्त होने के बहुत बाद अस्तित्व में आया । ऐसी स्थिति में, उस समय की प्रबंध समिति तारीख 30 सितम्बर, 2001 को यथा अनुमोदित विस्तार के कारण सतत रूप से पद धारित करने में न्यायोचित थी । अतः श्री अरविन्द श्रीवास्तव द्वारा दी गई दलीलें इस कारण से सही प्रतीत नहीं होतीं और इसलिए विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा **आर. ए. कन्या इण्टर कालेज, बुलंदशहर और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में निर्णय के प्रभाव पर विचार करने के पश्चात् विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष दुर्बलता से ग्रस्त होना नहीं कहा जा सकता । तद्नुसार, हम विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा दिए उक्त निष्कर्ष की पुष्टि करते हैं और अपीलार्थियों की ओर से दी गई दलीलों को खारिज करते हैं ।

23. तथ्यों पर विचार करने से भी यह स्पष्ट होता है कि विवाद के अधीन निर्वाचन तारीख 14 मई, 2004 को हुए हैं । प्रत्यर्थियों ने यह अभिकथित किया है कि नए निर्वाचन वर्ष 2009 में कराए गए हैं । ऐसी स्थिति में वर्ष 2004 के निर्णयन के संबंध में अपीलार्थियों की ओर से दी गई दलील पर भी आगे विचार करने की आवश्यकता नहीं है । इस सीमा तक अपील जिसके द्वारा अपीलार्थियों के विरुद्ध यथा उपदर्शित विवाद्यकों के संबंध में विद्वान् एकल न्यायाधीश के तारीख 18 अगस्त, 2010 के आदेश को आक्षेपित किया गया है, खारिज किया जाता है । अपील की खारिजी उपर्युक्त सीमा तक अपीलार्थियों की शिकायत तक सीमित है न कि क्षेत्रीय स्तर समिति द्वारा विवाद के विनिश्चय के लिए विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा जारी किए गए निदेशों के संबंध में, जो कि उस 2010 की विशेष अपील सं. 1541 की विषय-वस्तु है जिसे आज पृथक् रूप से हमारे द्वारा निपटाया जा रहा है । खर्चों के संबंध में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

विशेष अपील खारिज की गई ।

मही./मह.

---

[1] 2009 (1) ई. सी. एस. 371.

बोबन जोसफ़

बनाम

मणिकान्तन नायर और अन्य

तथा

विजय लक्ष्मी और एक अन्य

बनाम

मणिकान्तन नायर और अन्य

तथा

के. एस. श्रीकुमार

बनाम

ज्योलाजिस्ट

तारीख 25 जून, 2010

न्यायमूर्ति सी. एन. रामचन्द्रन नायर और न्यायमूर्ति पी. एस. गोपीनाथन

खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 (1957 का 67) – धारा 15 [सपठित केरल लघु खनिज रियायत नियम, 1957 के नियम 8 का उप-नियम (1)(ङ)] – रेत का खनन – यांत्रिक उपकरणों का उपयोग – आस-पास के भू-स्वामियों द्वारा नियम को इस आधार पर आक्षेपित किया जाना कि यांत्रिक उपकरणों के उपयोग से आस-पास की भूमियां प्रभावित होंगी – चूंकि खनन के लिए अनुज्ञप्ति ऐसे निबंधनों और शर्तों के अध्यधीन जारी की जाती है जिससे आस-पास की भूमि को नुकसान न हो इसलिए आस-पास के भू-स्वामियों को किसी नुकसान की संभावना नहीं होती – सरकार द्वारा आक्षेपित नियम प्रदत्त शक्तियों के अधीन अधिनियमित किया गया है – अतः इसे संविधान के अनुच्छेद 21 के अतिक्रमण में नहीं कहा जा सकता ।

सरकार द्वारा खनन हेतु परमिट जारी किए जाने से व्यथित होकर याचियों ने केरल लघु खनिज रियायत नियम, 1957 के नियम 8 को अधिकारातीत घोषित करने के लिए रिट याचिका फाइल की थी जो

स्वीकार की गई । अतः अपीलार्थियों द्वारा रिट अपीलें और रिट याचिका फाइल की गई । रिट अपीलें और रिट याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – अधिनियम की धारा 15(1) के अधीन राज्य को यह शक्ति प्राप्त है कि वह खनन को विनियमित करने के लिए ऐसी शर्तों पर अनुज्ञप्तियां जारी करे जिन्हें अधिरोपित करने के लिए सरकार स्वतंत्र है । वस्तुतः जब खनन राज्य द्वारा विनियमित किया जाता है और खनन के लिए अनुज्ञप्तियां ऐसी शर्तों पर जारी की जाती हैं, तब राज्य को खनन से संबंधित प्रयोजनों के लिए कोई नियम विहित करने की सभी आनुषंगिक शक्तियां होती हैं । स्वीकृततः सभी खनन अनुज्ञप्तियां उन खुदाइयों के संबंध में जिनके लिए खुदाई अनुज्ञात की जाती है, सोच-विचार के पश्चात् कड़ी शर्तों के साथ जारी की जाती हैं और निकटवर्ती संपत्तियों के उपांत छोड़े जाते हैं, खनन के कारण बने गड्ढों के भरने के कर्तव्य सहित अनुज्ञप्ति धारक द्वारा सावधानीपूर्वक शर्तें पूरी की जाती हैं । इसलिए खनन अनुज्ञप्तियों पर ऐसी शर्तें अधिरोपित करने से पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव निष्प्रभावित हो जाते हैं । इसी प्रकार निकटवर्ती मालिकों और उनकी संपत्ति के संरक्षण के लिए नियमों के अधीन जारी की जाने वाली अनुज्ञप्तियों में भी कड़ी शर्तें अधिरोपित की जाती हैं । आक्षेपित नियम तारीख 12 मार्च, 2008 को पुर:स्थापित किया गया था, जो स्वतः खनन में यांत्रिक युक्तियों के उपयोग पर इस न्यायालय के कई निर्णयों में उल्लिखित शर्तों को अधिरोपित करता है । भारत के संविधान का अनुच्छेद 19(1)(छ) नागरिकों को कोई भी वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारबार करने का अधिकार प्रदत्त करता है, जिसका स्पष्ट अर्थ यह है कि अधिकार का प्रयोग सफलतापूर्वक और लाभदायी रूप से व्यापार या कारबार करने के लिए किया जा सकता है । यदि खनन काम पर लगे मजदूरों द्वारा सफलतापूर्वक या लाभप्रद रूप से नहीं किया जा सकता तो अनुज्ञप्ति धारक इस बात के लिए पूर्णतया स्वतंत्र होगा कि वह यांत्रिक युक्तियों का उपयोग करे, जिससे कि खनन लाभप्रद हो सके । केवल यह अपेक्षित है कि जब यांत्रिक युक्तियों का उपयोग किया जाए तब अनुज्ञप्तिधारकों द्वारा अनुज्ञप्ति की शर्तों का हनन न किया जाए । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने उन प्रतिकूल प्रभावों पर विचार किया था जो यांत्रिक युक्तियों के उपयोग से हो सकते हैं और उनकी यह धारणा थी कि यांत्रिक युक्तियों के उपयोग के परिणामस्वरूप पर्यावरण प्रदूषण और समीप की संपत्तियों को नुकसान

होता है । जब भी अनुज्ञप्ति शर्तों पर जारी की गई है तब यह अनुज्ञप्तिधारक पर निर्भर करता है कि वह खनन कार्य इस प्रकार से करे कि उससे कोई उल्लंघन न हो, इस तथ्य को ध्यान में रखे बिना कि उसके द्वारा लगाई गई मशीन से अनुज्ञप्ति में दी गई सीमा से अधिक खनन न हो । दूसरे शब्दों में, जब भी खनन कार्य में लगाई गई मशीनें जारी की गईं अनुज्ञप्ति के निबंधनों और शर्तों के अनुसार खनन में प्रयुक्त की जाएंगी तब किसी भी व्यक्ति को कोई आपत्ति नहीं होगी । दूसरे शब्दों में, अनुज्ञप्तिधारी खनन के लिए किसी भी अनुज्ञेय रीति का उपयोग करने के लिए स्वतंत्र है चाहे वह यांत्रिक हो या हस्तचालित और एक मात्र शर्त यह है कि खनन अनुज्ञप्ति के निबंधनों और शर्तों के अनुसार किया जाना चाहिए । न्यायालय का यह मत है कि धारा 15(1) का पश्चात्वर्ती भाग जो राज्य सरकार को अधिकार देता है कि वह खनन से संबंधित प्रयोजनों के लिए नियम बनाने की शक्ति प्रदत्त करता है, राज्य सरकार को यह शक्ति भी देता है कि वह खनन में यांत्रिक युक्ति के उपयोग का अधिकार प्रदत्त करे । न्यायालय का यह मत है कि नियम 8(1)(ङ) केवल स्पष्टीकारक प्रकृति का है और अनुज्ञप्तिधारी किसी भी यांत्रिक युक्ति के उपयोग के लिए स्वतंत्र है तथा एकमात्र प्रतिबंध यह है कि खनन कार्य अनुज्ञप्ति के निबंधनों और शर्तों के अनुसार ही किया जाना चाहिए । इसलिए न्यायालय विद्वान् एकल न्यायाधीश के निष्कर्षों को उलटते हुए यह अभिनिर्धारित करता है कि धारा 15(1) के अधीन यह बात पूर्णतया सरकार की शक्ति के अधीन है कि वह उपरोक्त नियम विहित करे । अगला विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या आक्षेपित नियम को भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन यह मानते हुए कि रेत के खनन में यांत्रिक युक्तियों के प्रयोग किए जाने से समीप के मालिकों और स्थानीय जनता पर प्रभाव पड़ता है, अतिक्रमणकारी घोषित किया जा सकता है । न्यायालय का यह मत है कि विद्वान् एकल न्यायाधीश की यह आशंका बलहीन है और आधारयुक्त नहीं है क्योंकि स्थानीय जनता, समीप के मालिकों आदि के हितों के संरक्षण के लिए निबंधन अधिरोपित करते हुए अनुज्ञप्ति प्रदत्त की जाती है । तथ्यतः अनुज्ञप्ति देने वाला प्राधिकारी खनन अनुज्ञप्ति मंजूर करते समय खानों के स्थान, प्रभावित होने वाले पड़ोस, प्रदूषण की संभावनाओं आदि का निरीक्षण करते हैं और यह सुनिश्चित करते हुए कि कोई पर्यावरण संबंधी समस्या या आस-पड़ोस के मालिकों को कोई नुकसान न हो, शर्तें अधिरोपित करते हैं । वस्तुतः खनन से प्रदूषण तब भी होता है जब खनन बिना यांत्रिक

उपकरणों के किया जाता है । प्रदूषण एक ऐसा पहलू है जिस पर दूसरा अभिकर्ता अनुज्ञप्तिधारक पर अपनी शक्तियों का प्रयोग करता है । न्यायालय के मतानुसार, विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा यांत्रिक उपकरणों द्वारा खनन से प्रदूषण की आशंका व्यक्त करना पूर्णतया निरर्थक और अवास्तविक है । इसलिए, न्यायालय को ऐसा प्रतीत नहीं होता कि आक्षेपित नियम किसी भी तरह से भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण करता है क्योंकि यह यांत्रिक खनन के दौरान प्रदूषण को अनुज्ञप्त नहीं करता या उचित नहीं मानता है । वस्तुतः ऐसी निर्जन जलीय भूमि में किए जाने वाले खनन कार्य से प्रदूषण होने के आरोप नहीं लगाए गए हैं और किसी भी प्रकार से प्रदूषण के पहलू के संबंध में प्रदूषण नियंत्रण अधिनियम जो कि एक केन्द्रीय विधान है, के अधीन कार्रवाई की जाती है । (पैरा 3 और 4)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2004]	(2004) 3 के. एल. टी. 577 : **सोमन** बनाम **ज्योलाजिस्ट** ।	2

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2009 की रिट अपील सं. 2749, 2010 की रिट अपील सं. 295 और 2010 की डब्ल्यू. पी. सी. सं. 16007.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन फाइल सिविल रिट याचिकाओं में पारित निर्णय और आदेशों के विरुद्ध रिट अपीलें ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री एस. श्रीकुमार, एन. रथीश, श्रीमती सुमा रथीश और श्री पी. मार्टिन जोंस

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री दिनेश मैथ्यू, जे. मुरिकेन, राजेश थामस, जी. पी. श्रीलक्ष्मी नारायणन, एलियास एम. चेरियन, जोबी जोस कोनडोडी, श्रीमती आयशा यूसुफ, मोली जेकब, श्रीमती राबिया बेगम और श्री जोबी ए. थम्पी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सी. एन. रामचन्द्रन नायर ने दिया ।

न्या. नायर – ये रिट अपीलें विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा केरल लघु खनिज रियायत नियम, 1957 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "नियम" कहा गया है) के नियम 8 के उपनियम (1) के खंड (ङ) को खान और खनिज (विकास और विनियम) अधिनियम, 1957 की धारा 15 के उपबंधों के अधीन अवैध और अस्वीकार्य घोषित करने के एक जैसे निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई हैं । डब्ल्यू. पी. सी. में जिसे रिट अपीलों, के साथ सुना जा रहा है, याची द्वारा उसे रेत के खनन के लिए यांत्रिक उपकरणों का उपयोग करने के लिए प्रत्यर्थियों को निदेश देने की प्रार्थना की गई है । हमने अपीलार्थियों की ओर से उपस्थित काउंसेल, याची की ओर से उपस्थित काउंसेल, राज्य और उसके अभिकरणों की ओर से उपस्थित विद्वान् स्थायी काउंसेल को सुना ।

2. डब्ल्यू. पी. सी. में याची आर्द्र भूमि के मालिक हैं जिन्होंने उपरोक्त नियम को इस आधार पर चुनौती दी है कि नियमों के अधीन मशीनों द्वारा रेत के खनन को मंजूरी दिए जाने से नजदीक के धान के खेतों को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा तथा इससे उनकी संपत्ति का विनाश होगा । तथापि, रिट अपील के स्तर पर, नोटिस प्राप्त होने पर भी याची न्यायालय के सम्मुख न तो काउंसेल के माध्यम से और न ही वैयक्तिक रूप से उपस्थित हुए । विद्वान् न्यायाधीश द्वारा उपरोक्त नियम अवैध घोषित कर दिया गया जिसके द्वारा अनुज्ञप्ति धारकों को यांत्रिक युक्ति का उपयोग करके रेत का खनन करने का अधिकार प्राप्त हो गया । सुविधा के लिए हम नीचे डब्ल्यू. पी. सी. में विवादित नियम को और उपबंध से संबंधित आशय को उद्धृत कर रहे हैं जिसके अधीन सरकार ने उसे विहित किया था :–

> "8. शर्तें जिन पर खुदाई की अनुज्ञप्ति दी जा सकेगी – (1) नियम 4 के अधीन मंजूर प्रत्येक खुदाई का परमिट निम्नलिखित शर्तों के अध्यधीन होगा अर्थात् –
>
> *** *** *** ***
>
> (ङ) खुदाई अनुज्ञप्ति धारक को अधिकार होगा कि वह खुदाई के लिए यांत्रिकी युक्ति, जिसके अन्तर्गत जैकहैमर और पम्प भी हैं, का उपयोग करे ।

(2) नियम 4 के अधीन मंजूर प्रत्येक अनुज्ञप्ति ऐसी अन्य शर्तों के अध्यधीन होगी, जो यथास्थिति, सक्षम प्राधिकारी या अनुज्ञप्ति प्रदत्त करने वाला अधिकारी निम्नलिखित मामलों में आवश्यक समझे, अर्थात् –

*** *** *** ***

धारा 15. लघु खनिजों के बारे में राज्य सरकार की नियम बनाने की शक्ति –

(1) राज्य सरकार, शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, लघु खनिजों और उससे संबद्ध विषयों (खुदाई पट्टे या अन्य खनिज रियायतों) के बारे में प्रदाय को विनियमित करने के लिए नियम बना सकेगी ।

(1क) विशेष रूप से पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ऐसे नियम, निम्नलिखित सभी या किसी विषय के लिए उपबंध कर सकेगी, अर्थात् –

(क) उस व्यक्ति के बारे में और उस रीति के बारे में जिसमें खुदाई पट्टे, खनन पट्टे या अन्य खनिज रियायतों के लिए आवेदन दिए जा सकेंगे और उस फीस के बारे में जिसका उसके लिए संदाय किया जाएगा ;

*** *** *** ***

(ङ) खुदाई पट्टे, खनन पट्टे या अन्य खनिज रियायतें प्राप्त करने की प्रक्रिया के बारे में ;

(च) खुदाई पट्टे, खनन पट्टे या अन्य खनिज रियायतों के धारकों द्वारा सरकार द्वारा खनन कार्यों संबंधी अनुसंधान और प्रशिक्षण के लिए तैनात किए गए व्यक्तियों को सुविधाएं प्रदान करने के बारे में ;

(ज) उस रीति के बारे में जिसमें तृतीय पक्षकार के अधिकारों का संरक्षण किया जा सकेगा (चाहे वह प्रतिकर के भुगतान द्वारा हो या अन्यथा) उस दशा में जहां ऐसा पक्षकार किसी पूर्वेक्षा या खनन क्रिया के कारण प्रतिकूल रूप में प्रभावित हुआ हो ।"

डब्ल्यू. पी. सी. में याचियों द्वारा दी गई और विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा स्वीकार की गई दलील यह थी कि धारा 15 राज्य को अधिकार नहीं देती कि वह खनन पट्टा धारकों को खनन के लिए यांत्रिक युक्तियों के उपयोग हेतु नियम 8(1)(ङ) बनाए । दूसरी दलील यह दी गई थी कि नियम 8(1) असंवैधानिक है क्योंकि यह आस-पास के मालिकों और जनता के संबंध में भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण करता है । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने दोनों आधारों पर नियम के विरुद्ध किए गए आक्षेप को मंजूर किया और यह घोषित किया कि यह अविधिमान्य है, इसलिए रिट अपीलें फाइल की गई हैं । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने अपने निष्कर्षों के समर्थन में **सोमन** बनाम **ज्योलाजिस्ट**[1] वाले मामले में खंडपीठ के निर्णय का निर्देश किया है जिसमें न्यायालय ने परमिट की उन शर्तों की पुष्टि की जिसके द्वारा रेलवे लाइन से 75 मीटर और पानी के टैंक, तालाब, नहर आदि से 50 मीटर तक खनन को प्रतिषिद्ध किया था ।

3. अपीलार्थियों के काउंसेल ने यह दलील दी कि आक्षेपित नियम, अर्थात् नियम 8(1)(ङ) पूर्णतः अधिनियम की धारा 15(1) के अधीन राज्य की उन शक्तियों के अनुरूप है जो कि राज्य सरकार को नियमों के अधीन मंजूर खुदाई या खनन अनुज्ञप्तियों के संबंध में सभी प्रयोजनों के लिए नियम बनाने के लिए प्राधिकृत करती है । राज्य की ओर से उपस्थित सरकारी प्लीडर ने भी अपीलार्थियों के इस आधार का समर्थन किया है कि आक्षेपित नियम, अधिनियम की धारा 15(1) के अधीन सरकार की नियम बनाने की शक्तियों के अंतर्गत आता है । यद्यपि, पंचायत की ओर से उपस्थित काउंसेल ने अपीलार्थियों के कथन का समर्थन नहीं किया है तथापि, उन्होंने यह दलील दी है कि पंचायत खनन में उपयोग किए जाने वाली यांत्रिक युक्तियों के पूर्णतः विरुद्ध नहीं है किन्तु उसे समीप के स्वामियों और जनता के व्यापक कल्याण की चिंता है जो खनन में प्रयोग किए जाने वाली यांत्रिक युक्तियों के कारण प्रतिकूल रूप से प्रभावित हो सकते हैं । हमारे विचार में, विद्वान् एकल न्यायाधीश का निर्णय कायम रखे जाने योग्य नहीं है क्योंकि अधिनियम की धारा 15(1) के अधीन राज्य को यह शक्ति प्राप्त है कि वह खनन को विनियमित करने के लिए ऐसी शर्तों पर अनुज्ञप्तियां जारी करे जिन्हें अधिरोपित करने के लिए सरकार स्वतंत्र है । वस्तुतः जब खनन राज्य द्वारा विनियमित किया जाता है और खनन के

---

[1] (2004) 3 के. एल. टी. 577.

लिए अनुज्ञप्तियां ऐसी शर्तों पर जारी की जाती हैं, तब राज्य को खनन से संबंधित प्रयोजनों के लिए कोई नियम विहित करने की सभी आनुषंगिक शक्तियां होती हैं । स्वीकृततः सभी खनन अनुज्ञप्तियां उन खुदाइयों के संबंध में जिनके लिए खुदाई अनुज्ञात की जाती है, सोच-विचार के पश्चात् कड़ी शर्तों के साथ जारी की जाती हैं और निकटवर्ती संपत्तियों के उपांत छोड़े जाते हैं, खनन के कारण बने गड्ढों के भरने के कर्तव्य सहित अनुज्ञप्ति धारक द्वारा सावधानीपूर्वक शर्तें पूरी की जाती हैं । इसलिए खनन अनुज्ञप्तियों पर ऐसी शर्तें अधिरोपित करने से पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव निष्प्रभावित हो जाते हैं । इसी प्रकार निकटवर्ती मालिकों और उनकी संपत्ति के संरक्षण के लिए नियमों के अधीन जारी की जाने वाली अनुज्ञप्तियों में भी कड़ी शर्तें अधिरोपित की जाती हैं । आक्षेपित नियम तारीख 12 मार्च, 2008 को पुरःस्थापित किया गया था, जो स्वतः खनन में यांत्रिक युक्तियों के उपयोग पर इस न्यायालय के कई निर्णयों में उल्लिखित शर्तों को अधिरोपित करता है । भारत के संविधान का अनुच्छेद 19(1)(छ) नागरिकों को कोई भी वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारबार करने का अधिकार प्रदत्त करता है, जिसका स्पष्ट अर्थ यह है कि अधिकार का प्रयोग सफलतापूर्वक और लाभदायी रूप से व्यापार या कारबार करने के लिए किया जा सकता है । यदि खनन काम पर लगे मजदूरों द्वारा सफलतापूर्वक या लाभप्रद रूप से नहीं किया जा सकता तो अनुज्ञप्ति धारक इस बात के लिए पूर्णतया स्वतंत्र होगा कि वह यांत्रिक युक्तियों का उपयोग करे, जिससे कि खनन लाभप्रद हो सके । केवल यह अपेक्षित है कि जब यांत्रिक युक्तियों का उपयोग किया जाए तब अनुज्ञप्तिधारकों द्वारा अनुज्ञप्ति की शर्तों का हनन न किया जाए । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने उन प्रतिकूल प्रभावों पर विचार किया था जो यांत्रिक युक्तियों के उपयोग से हो सकते हैं और उनकी यह धारणा थी कि यांत्रिक युक्तियों के उपयोग के परिणामस्वरूप पर्यावरण प्रदूषण और समीप की संपत्तियों को नुकसान होता है । जब भी अनुज्ञप्ति शर्तों पर जारी की गई है तब यह अनुज्ञप्तिधारक पर निर्भर करता है कि वह खनन कार्य इस प्रकार से करे कि उससे कोई उल्लंघन न हो, इस तथ्य को ध्यान में रखे बिना कि उसके द्वारा लगाई मशीन से अनुज्ञप्ति में दी गई सीमा से अधीन खनन न हो । दूसरे शब्दों में, जब भी खनन कार्य में लगाई गई मशीनें जारी की गईं अनुज्ञप्ति के निबंधनों और शर्तों के अनुसार खनन में प्रयुक्त की जाएंगी तब किसी भी व्यक्ति को कोई आपत्ति नहीं होगी । दूसरे शब्दों में,

अनुज्ञप्तिधारी खनन के लिए किसी भी अनुज्ञेय रीति का उपयोग करने के लिए स्वतंत्र है चाहे वह यांत्रिक हो या हस्तचालित और एक मात्र शर्त यह है कि खनन अनुज्ञप्ति के निबंधनों और शर्तों के अनुसार किया जाना चाहिए । हमारा यह मत है कि धारा 15(1) का पश्चात्वर्ती भाग जो राज्य सरकार को अधिकार देता है कि वह खनन से संबंधित प्रयोजनों के लिए नियम बनाने की शक्ति प्रदत्त करता है, राज्य सरकार को यह शक्ति भी देता है कि वह खनन में यांत्रिक युक्ति के उपयोग का अधिकार प्रदत्त करे । हमारा यह मत है कि नियम 8(1)(ङ) केवल स्पष्टीकारक प्रकृति का है और अनुज्ञप्तिधारी किसी भी यांत्रिक युक्ति के उपयोग के लिए स्वतंत्र है तथा एकमात्र प्रतिबंध यह है कि खनन कार्य अनुज्ञप्ति के निबंधनों और शर्तों के अनुसार ही किया जाना चाहिए । इसलिए हम विद्वान् एकल न्यायाधीश के निष्कर्षों को उलटते हुए यह अभिनिर्धारित करते हैं कि धारा 15(1) के अधीन यह बात पूर्णतया सरकार की शक्ति के अधीन है कि वह उपरोक्त नियम विहित करे ।

4. अगला विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या आक्षेपित नियम को भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन यह मानते हुए कि रेत के खनन में यांत्रिक युक्तियों के प्रयोग किए जाने से समीप के मालिकों और स्थानीय जनता पर प्रभाव पड़ता है, अतिक्रमणकारी घोषित किया जा सकता है । हमारा यह मत है कि विद्वान् एकल न्यायाधीश की यह आशंका बलहीन है और आधारयुक्त नहीं है क्योंकि स्थानीय जनता, समीप के मालिकों आदि के हितों के संरक्षण के लिए निबंधन अधिरोपित करते हुए अनुज्ञप्ति प्रदत्त की जाती है । तथ्यतः अनुज्ञप्ति देने वाला प्राधिकारी खनन अनुज्ञप्ति मंजूर करते समय खानों के स्थान, प्रभावित होने वाले पड़ोस, प्रदूषण की संभावनाओं आदि का निरीक्षण करते हैं और यह सुनिश्चित करते हुए कि कोई पर्यावरण संबंधी समस्या या आस-पड़ोस के मालिकों को कोई नुकसान न हो, शर्तें अधिरोपित करते हैं । वस्तुतः खनन से प्रदूषण तब भी होता है जब खनन बिना यांत्रिक उपकरणों के किया जाता है । प्रदूषण एक ऐसा पहलू है जिस पर दूसरा अभिकर्ता अनुज्ञप्तिधारक पर अपनी शक्तियों का प्रयोग करता है । हमारे मतानुसार, विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा यांत्रिक उपकरणों द्वारा खनन से प्रदूषण की आशंका व्यक्त करना पूर्णतया निरर्थक और अवास्तविक है । इसलिए, हमें ऐसा प्रतीत नहीं होता कि आक्षेपित नियम किसी भी तरह से भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का

अतिक्रमण करता है क्योंकि यह यांत्रिक खनन के दौरान प्रदूषण को अनुज्ञप्त नहीं करता या उचित नहीं मानता है । वस्तुतः ऐसी निर्जन जलीय भूमि में किए जाने वाले खनन कार्य से प्रदूषण होने के आरोप नहीं लगाए गए हैं और किसी भी प्रकार से प्रदूषण के पहलू के संबंध में प्रदूषण नियंत्रण अधिनियम जो कि एक केन्द्रीय विधान है, के अधीन कार्रवाई की जाती है ।

5. हम यह मत व्यक्त करते हैं कि निर्णय में दिए गए निष्कर्ष पूर्णतया अवास्तविक हैं क्योंकि यह सामान्य ज्ञान की बात है कि जल मग्न भूमि से रेत का खनन केवल हाइटेक मशीनों, पंपों आदि द्वारा ही किया जा सकता है । इसलिए हमारे विचार से यह उपधारित करना पूर्णतया गलत होगा कि रेत का खनन कार्य यांत्रिक उपकरणों का उपयोग किए बिना किया जा सकता है । किसी सीमा तक खनन कार्य में हाईटेक मशीनों को कार्य में लगाकर मानव जीवन की रक्षा होती है, साथ ही साथ जल मग्न भूमि में खनन कार्य के लिए मानव मजदूरों को लगाने से सदैव भूस्खलन और यहां तक कि डूबने तक का जोखिम भी बना रहता है । इसलिए हमारा यह मत है कि खनन में यांत्रिक उपकरणों को प्राधिकृत करने वाला नियम व्यक्तियों की सुरक्षा में भी मदद करता है । सरकार को अनुज्ञप्तिधारकों द्वारा खनन की शर्तों का पूर्णतया अनुपालन सुनिश्चित कराना चाहिए, विशेषकर खनन के पश्चात् होने वाले गड्ढों को भरने के लिए भी यांत्रिक उपकरणों का उपयोग किया जाना चाहिए ।

6. परिणामतः, रिट अपीलें और रिट याचिका विद्वान् एकल न्यायाधीश का निर्णय निरस्त करते हुए मंजूर की जाती हैं और आक्षेपित नियम की विधिमान्यता की पुष्टि करते हुए अपीलार्थियों तथा याची को खनन में अनुज्ञप्ति की शर्तों पर, पंप सहित उपयोग करने के अधिकार की पुष्टि की जाती है ।

रिट अपीलें और रिट याचिका मंजूर की गई ।

भट./मह.

———

इंडियन आयल कार्पोरेशन लि. और अन्य

बनाम

सहायक आयुक्त (निर्धारण) विक्रय कर एर्नाकुलम और अन्य

तारीख 19 अगस्त, 2010

न्यायमूर्ति सी. एन. रामचन्द्रन नायर और न्यायमूर्ति पी. एस. गोपीनाथन

केरल साधारण विक्रय कर अधिनियम, 1963 – धारा 5-क और 23(3) – पैट्रोलियम उत्पाद – विक्रय पर कर दायित्व – जहां न्यायालय द्वारा कंपनियों पर कर का दायित्व निर्धारित कर दिया गया हो वहां कंपनियों द्वारा आक्षेप किए जाने के पश्चात् भी कंपनियों का यह दायित्व है कि उच्चतर न्यायालय के अंतिम निर्णय तक कर का संदाय करते रहें – दायित्व निर्धारित होने पर ऐसे कर का समायोजन किया जा सकता है ।

इन रिट याचिकाओं, ओ. पी. और पुनरीक्षणों में पैट्रोलियम उत्पादों पर कर के दायित्व को आक्षेपित किया गया है । रिट याचिकाओं और पुनरीक्षणों को तद्नुसार निपटाते हुए,

अभिनिर्धारित – के. जी. एस. टी. नियमों की स्कीम के अन्तर्गत, नियम 21(7) के अधीन यथाउपबंधित मासिक विवरणियों के साथ कर संदेय है और के. जी. एस. टी. नियमों के नियम 18(3) के अधीन यथाउपबंधित अंतिम विवरणी के साथ कर संदेय है । निर्धारितियों के लिए यह आवश्यक होगा कि वे विहित प्ररूप में फाइल की गई विवरणी में उनके द्वारा देय कर की और साथ ही विवरणी फाइल किए जाने से पूर्व संदत्त कर का भुगतान किए जाने का साक्ष्य भी प्रस्तुत करें । यह स्व-निर्धारण कर के भुगतान की एक कानूनी स्कीम है । देय तारीख को स्व-निर्धारित कर का भुगतान न करने का व्यतिक्रम उपरोक्त परिस्थिति (3) के अन्तर्गत आता है, जिस पर ब्याज लगता है । तथापि, स्व-निर्धारण स्कीम के अधीन अतिरिक्त और अधिक कर के बारे में कानून नियमित और अस्थायी कर निर्धारण का उपबंध करते हैं और उपरोक्त के आधार पर निर्धारण अधिकारी व्यवहारियों से अतिरिक्त कर की मांग करने के लिए स्वतंत्र है । निर्धारण और मांग सूचना के अनुसार कर के भुगतान में व्यतिक्रम उपरोक्त कथित परिस्थिति (1) में आता है जिस पर ब्याज लगता है । कर के दायित्व के अतिरिक्त, रजिस्ट्रीकरण फीस, शास्ति, ब्याज अनुज्ञप्ति फीस, संयोजित करना आदि

भी अधिनियम के विभिन्न उपबंधों के अधीन संदेय है । देय तारीख को इन राशियों के स्वैच्छिक संदाय में व्यतिक्रम अर्थात् कर के अतिरिक्त कोई राशि, जहां कहीं भी उपबंधित है, उपरोक्त वर्णित परिस्थिति (4) में आती है, जिस पर ब्याज लगता है । इन मामलों में, याचियों का यह विशिष्ट कथन है कि "अधिनियम के अधीन निर्धारित या देय कर" से फाइल की गई मासिक या अंतिम विवरणी के साथ देय कर या विभाग द्वारा निर्धारित या मांगा गया कर अभिप्रेत है । याचियों के अनुसार याचियों ने करादेय आवर्तन में उत्पाद-शुल्क को जोड़ कर मासिक विवरणी या अंतिम विवरणी में प्रकटन नहीं किया है और इसलिए स्व-निर्धारण के अधीन कर देय नहीं था । चूंकि विभाग ने भी निर्धारण नहीं किया था और उच्चतम न्यायालय के निर्णय के पश्चात् पूरे किए गए अंतिम निर्धारण से पूर्व उत्पाद-शुल्क संघटकों पर कर की मांग नहीं की थी इसलिए किसी प्रकार के कर की मांग नहीं की गई थी और इसलिए उनके मामले में ब्याज का उद्ग्रहण करने के लिए कोई व्यतिक्रम नहीं हुआ था । दोनों पक्षकारों को सुनने और निर्दिष्ट किए गए उपरोक्त दोनों निर्णयों पर विचार करने के पश्चात् न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि याची ने जो निर्णय प्रस्तुत किए हैं, न्यायालय ने भी उपरोक्त निर्णयों पर विचार किया था । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि यदि अधिनियम के अधीन देय कर का भुगतान नहीं किया जाता है तो धारा 23(3) के अधीन ब्याज लगेगा । इसलिए विचारणीय प्रश्न यह है कि अधिनियम के अधीन क्या कर देय था ? याचियों ने दलील दी है कि जब तक कि अधिनियम के अधीन देय कर का निर्धारण नहीं किया गया है तब तक वही कर देय माना जाना चाहिए जो कि उनके द्वारा फाइल की गई मासिक और अंतिम विवरणियों में दर्शाया गया है । इस दावे को न्यायालय स्वीकार नहीं कर सकता क्योंकि अधिनियम के अधीन देय कर का अर्थ अधिनियम के उपबंधों के अधीन देय कर और उच्चतर न्यायालयों अर्थात् उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित विधि में अधिकथित देय कर से है । वास्तव में उच्चतम न्यायालय ने मैक्डावैल वाले मामले में जो विधि अधिकथित की है वह संविधान के अनुच्छेद 141 के अनुरूप सभी पक्षों पर आबद्धकर है । जहां तक पैट्रोलियम उत्पादों के उत्पाद-शुल्क पर कर के दायित्व का संबंध है, मामला विनिर्दिष्टतया याची के स्वयं के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ द्वारा दिए गए विनिश्चय से विनियमित होता है । निस्संदेह याचियों ने बर्मा शैल वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का निर्देश

दिया है जिसमें न्यायालय ने उनके पक्ष में मत व्यक्त किया था । यद्यपि मैक्डावैल वाले मामले में उच्चतम न्यायालय का निर्णय आने के पश्चात् बर्मा शैल वाले मामले का विनिश्चय सही विधि नहीं माना जा सकता, तथापि, न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि जब तक कि याचियों के अपने मामले में इस न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ का विनिश्चय नहीं आ जाता, याची स्वैच्छिक रूप से उत्पाद-शुल्क पर कर देने के लिए बाध्य नहीं है क्योंकि बर्मा शैल वाले मामले के निर्णय को पूर्ण न्यायपीठ के निर्णय द्वारा विनिर्दिष्ट रूप से उलट दिया गया है । आश्चर्यजनक रूप से विभाग ने मैक्डावैल वाले मामले को आधार मानकर ऐसे किसी उपबंध या नियमित निर्धारण द्वारा कर की मांग नहीं की है जो कर सकते हैं । तथापि, न्यायालय याचियों द्वारा, उनके अपने मामले में इस पूर्ण न्यायपीठ द्वारा विधिक घोषणा किए जाने के पश्चात् करादेय आवर्तन के रूप में उत्पाद-शुल्क की वापसी न करने में कोई औचित्य प्रतीत नहीं होता । अतः न्यायालय का मत है कि उत्पाद-शुल्क पर कर, तारीख 16 दिसम्बर, 1992 को इस न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ द्वारा विधि घोषित किए जाने के पश्चात् "अधिनियम के अधीन देय कर के रूप में" याचियों पर देय हो गया था । अतः न्यायालय का मत है कि जनवरी, 1992 और उनके पश्चात् मासिक विवरणियों में उत्पाद-शुल्क पर विक्रय कर का भुगतान करने में याचियों ने व्यतिक्रम किया है । दिसम्बर, 1996 तक कुछ मामलों में विलम्ब से भुगतान किया गया है और कुछ मामलों में मार्च, 1997 तक तथा जनवरी, 1993 से मासिक विवरणी फाइल करने के कारण याची उत्पाद-शुल्क पर कर के विलम्ब से भुगतान पर ब्याज के भुगतान के लिए दायी है । चूंकि कर का मासिक विवरणी के साथ भुगतान किया जाना चाहिए था, इसलिए जनवरी, 1993 से फाइल की गई मासिक विवरणियों के अधीन देय कर पर भुगतान की तारीख से व्यतिक्रम के लिए ब्याज की गणना की जाएगी । ओ. पी. और एस. टी. आर. वी. का कथन भागतः मंजूर किया जाता है और दिसम्बर, 1992 तक की अवधि तक फाइल याचिका विवरणी अर्थात् नवम्बर, 1992 तक के लिए फाइल की गई विवरणी तक की अवधि के लिए ब्याज उद्गृहीत नहीं किया जाएगा और व्यतिक्रम की शेष अवधि के लिए ब्याज उद्गृहीत किया जाएगा । प्रत्येक निर्धारिती जिसमें पब्लिक सेक्टर कंपनियां भी सम्मिलित हैं, को पूर्णतः देश की विधि का, जिसमें उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा घोषित विधि भी है, अनुपालन करना चाहिए । यहां ऐसी धारणा नहीं की जानी

चाहिए कि पब्लिक सेक्टर कंपनियां सुप्रबंधित हैं, या उनके सभी कार्य सद्भाविक होते हैं । यद्यपि वैयक्तिक कर्मचारी उच्च प्रबंधकीय स्थिति में हो सकते हैं तथापि, मुकदमेबाजी से कोई लाभ नहीं है इसलिए उन्हें सद्भाविक रूप से अपना कार्य करना चाहिए और तभी वे अपनी सद्भावना साबित कर सकते हैं । यह उल्लेखनीय है कि जब याची इस न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ के विनिश्चय के पश्चात् उच्चतम न्यायालय में गए थे, तब वे उच्चतम न्यायालय से भी रोकादेश प्राप्त नहीं कर सके थे और इस मुद्दे पर सीधे तौर पर उच्चतम न्यायालय का एक पूर्वतर विनिश्चय था, इसलिए उच्चतम न्यायालय से इस संबंध में पक्ष में आदेश मिलने की संभावना कम थी किन्तु शून्य नहीं थी । इसलिए न्यायालय का यह मत है कि यदि इन कंपनियों के प्रबंधमंडल विवेकशील हैं तो उन्हें इस न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ के विनिश्चय के आधार पर कर का भुगतान करना प्रारम्भ कर देना चाहिए भले ही वे साथ-साथ उच्चतम न्यायालय के दायित्व के संबंध में चुनौती दे सकते हैं और यदि वे अपील में सफल होते हैं तो वापसी का दावा कर सकते हैं । इसलिए न्यायालय इस मत से सहमत नहीं है कि इस न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ के विनिश्चय के पश्चात् कर का भुगतान न करने में याचियों की ओर से कोई सद्भावना थी और इसलिए व्यतिक्रम जानबूझकर किया गया है तथा परिणामस्वरूप शास्ति के दायी हैं । तथापि, क्योंकि सभी पब्लिक सेक्टर की ही कंपनियां हैं और धारा 23(3) के अधीन देय उच्च ब्याज दर पर विचार करते हुए जिसकी न्यायालय पूर्ण न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय के पश्चात् प्रारम्भ होने वाली अवधि के लिए पुष्टि करता है, न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि यदि याची निर्णय की तारीख से एक मास के भीतर ब्याज की संपूर्ण बकाया राशि का भुगतान कर देते हैं, तो उन्हें इंडियन आयल कार्पोरेशन लि. के लिए वर्ष 1987-88 से 1992-93, हिन्दुस्तान पैट्रोलियम कार्पोरेशन के लिए वर्ष 1987-88 से 1990-91 और भारत पैट्रोलियम कार्पोरेशन के लिए वर्ष 1987-88 के लिए अधिनियम की धारा 45क के अधीन शास्ति के भुगतान से मुक्त किया जा सकता है । तथापि, यदि उपरोक्त रीति से ब्याज के दायित्व को नहीं निभाया जाता है तो उद्गृहीत की गई शास्ति जारी रखी जाएगी तथा यदि देय शास्ति उद्गृहीत कर ली गई है तो वह रद्द समझी जाएगी । यदि उपरोक्त ब्याज के दायित्व को निभाते हुए शेष बकाया ब्याज दायित्व का भुगतान कर दिया गया है तो याची उस शास्ति को समायोजित कराने के लिए स्वतंत्र होंगे । (पैरा 2 और 3)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2006] (2006) 2 के. एल. जे. 105 :
मै. मिराकल इलास्टोमर (इंडिया) लि. बनाम **विक्रय कर आयुक्त** ; 2

[2004] (2004) 138 एस. टी. सी. 422 :
पी. के. दामोदरन बनाम **केरल राज्य** ; 2

[2003] 2003 का एस. टी. पुनरीक्षण सं. 339 :
मै. चन्द्रमणि ट्रेडर्स बनाम **केरल राज्य** ; 2

[2001] (2001) 2 के. एल. टी. 100 :
मारुती वायर इंडस्ट्रीज (प्रा.) लि. बनाम **विक्रय कर अधिकारी** ; 2

[1994] (1994) 94 एस. टी. सी. 422 :
जे. के. सिंथेटिक्स बनाम **वाणिज्यिक कर अधिकारी** ; 2

[1993] (1993) 89 एस. टी. सी. 106 :
हिन्दुस्तान पैट्रोलियम कार्पोरेशन लि. बनाम **केरल राज्य** ; 1

[1985] (1985) 59 एस. टी. सी. 277 :
मेक्डावैल ; 1

[1981] (1981) 48 एस. टी. सी. 466 :
एसोसिएटेड सीमेंट कं. बनाम **वाणिज्यिक कर अधिकारी** ; 2

25 एस. टी. सी. 211 :
हिन्दुस्तान स्टील ; 3

48 एस. टी. सी. 37 :
बर्मा शैल ; 2

85 एस. टी. सी. 337 :
पी. डी. सुधी ; 3

118 एस. टी. सी. 311 :
हिन्दुस्तान पैट्रोलियम कार्पोरेशन लि. बनाम **केरल राज्य** । 1

आरंभिक (सिविल रिट) अधिकारिता : 1999 की ओ. पी. सं. 7483, 6233, 6164, 2007 की विक्रय कर पुनरीक्षण सं. 296 और 2006 की रिट याचिका सं. 2664, 2665, 874 और 1462.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिकाएं ।

याची की ओर से सर्वश्री जोस जोसेफ और अरशद हिदायतुल्ला

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री मोहम्मद रफीक, (सरकारी अभिवक्ता) और राजन जोसफ

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सी. एन. रामचन्द्रन नायर ने दिया ।

न्या. नायर – इन संबंधित रिट याचिकाओं, ओ. पी. और एस. टी. पुनरीक्षण मामलों में याची केन्द्रीय सरकार के नियंत्रणाधीन पब्लिक सेक्टर कंपनियां हैं, जो कि केरल में पैट्रोलियम उत्पादों के विपणन का कार्य करती हैं । संबंधित वर्षों में इन कंपनियों, अर्थात् इंडियन आयल कार्पोरेशन लि., भारत पैट्रोलियम कार्पोरेशन लि. और हिन्दुस्तान पैट्रोलियम कार्पोरेशन लि. ने केरल और अन्य दक्षिणी राज्यों में विपणन के लिए कोचीन रिफाइनरी लि. जो कि केन्द्रीय सरकार की एक अन्य कंपनी है, से पैट्रोलियम उत्पादों का क्रय किया था । क्रय किए गए पैट्रोलियम उत्पादों का याचियों के अनुबंधित भाण्डागारों में भंडारण करने के लिए वहन किया गया था और उसके पश्चात् उनके द्वारा माल के अनुबंधित भाण्डागारों से निकासी या विक्रय होने पर उत्पादन शुल्क देय था । देय विक्रय कर और उसका भुगतान वस्तुतः के. जी. एस. टी. ऐक्ट की धारा 5-क के अधीन याची द्वारा याची के अनुबंधित भाण्डागारों से भाण्डागारण के लिए केरल के बाहर अंतरित किए गए उत्पादों के क्रय पर किया गया था । तथापि, निर्धारण वर्षों अर्थात् 1987-1988 से 1995-96 तक याची ने के. जी. एस. टी. अधिनियम की धारा 5-क के अधीन अंतिम क्रय बिन्दु पर कर का भुगतान करने के लिए करादेय आवर्त के भाग के रूप में क्रय मूल्य के साथ उत्पाद-शुल्क को सम्मिलित नहीं किया था, जबकि उपरोक्त उपबंधों

के अधीन कर का भुगतान क्रय लागत पर आधारित मासिक विवरणी में सम्मिलित किए बिना किया गया था । यद्यपि उत्पाद शुल्क के आस्थगित संदाय पर विक्रय कर के भुगतान की जिम्मेदारी **मेक्डावैल**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के अंतर्गत आती हैं तथापि, याचियों ने यह दलील दी कि बाद में भुगतान किया गया उत्पाद-शुल्क करादेय आवर्त का भाग नहीं है । अतः उन्होंने केवल क्रय लागत में उस पर लगने वाले उत्पाद-शुल्क को सम्मिलित किए बिना धारा 5-क के अधीन मासिक विक्रय कर विवरणी भरनी प्रारम्भ कर दी । तत्पश्चात् याची के अपने ही मामले में इस न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ ने तारीख 16 दिसम्बर, 1992 को **हिन्दुस्तान पैट्रोलियम कार्पोरेशन लि.** बनाम **केरल राज्य**[2] वाले मामले में दिए गए निर्णय में यह विधि निर्धारित की कि याचियों का यह दायित्व है कि वे क्रय आवर्तन पर उत्पाद-शुल्क सहित विक्रय कर का संदाय करें । तथापि, उसके पश्चात् भी इस न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ के निर्णय को अस्वीकार करते हुए याची उत्पाद-शुल्क का करादेय आवर्तन के रूप में सम्मिलित किए बिना विवरणियां फाइल करते रहे और आवर्तन के उत्पाद-शुल्क घटक पर कर देने से इनकार करते रहे । फाइल की गई अपीलों में उच्चतम न्यायालय ने इस न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ के निर्णय के विरुद्ध **हिन्दुस्तान पैट्रोलियम कार्पोरेशन लि.** बनाम **केरल राज्य**[3] वाले मामले में तारीख 9 अक्तूबर, 1996 को दिए गए निर्णय द्वारा उनकी अपीलें खारिज कर दीं । वस्तुतः इसके पश्चात् भी पुनर्विलोकन याचिकाएं फाइल की गई थीं, जिन्हें उच्चतम न्यायालय ने तारीख 7 जनवरी, 1997 को नामंजूर कर दिया था । सभी याची कंपनियों ने वर्ष 1996-1997 के दौरान उत्पाद-शुल्क पर विक्रय कर जमा कर दिया था, अर्थात् इस न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ के निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई अपीलों को निरस्त करने के उच्चतम न्यायालय के अंतिम निर्णय के पश्चात् जमा किया गया था । उत्पाद-शुल्क पर विक्रय कर का भुगतान न करने और देरी से करने के परिणामस्वरूप विभाग ने व्यतिक्रम की पूर्ण भुगतान अवधि तथा कुछ वर्षों के लिए के. जी. एस. टी. अधिनियम की धारा 23(3) के अधीन ब्याज की मांग की, जिसका विवरण पृथक् रूप से नीचे दिया गया है तथा अधिनियम की धारा 45-क के अधीन शास्ति का भी उद्ग्रहण किया गया था । ब्याज

---

[1] (1985) 59 एस. टी. सी. 277.

[2] (1993) 89 एस. टी. सी. 106.

[3] 118 एस. टी. सी. 311.

के उद्ग्रहण और शास्ति के आदेश को उपायुक्त और वाणिज्य कर आयुक्त के समक्ष दो स्तरों पर पुनरीक्षण द्वारा आक्षेपित किया गया था । दोनों ही विधिक प्राधिकारियों ने यह मत व्यक्त किया कि उत्पाद-शुल्क पर कर के विलंब से किए गए भुगतान के लिए ब्याज का विधिक दायित्व है और ब्याज के उद्ग्रहण के प्रश्न पर दोनों स्तरों पर फाइल की गई पुनरीक्षण याचिकाओं को खारिज करके आदेशों की पुष्टि की । जहां तक धारा 45-क के अधीन कर के अपवंचन के प्रयत्न के लिए शास्ति के उद्ग्रहण का संबंध है, यद्यपि प्रथम पुनरीक्षण प्राधिकारी ने पुनरीक्षण याचिकाओं को खारिज कर दिया था तथापि, आयुक्त ने अधिकतर मामलों में उत्पाद-शुल्क पर कर की राशि के 25 प्रतिशत की शास्ति को, उद्ग्रहण अवराशि के समान कम कर दिया तथा एक मामले में निर्धारण अधिकारी द्वारा उत्पाद-शुल्क पर कर की राशि दुगुनी कर दी । 2007 का एस. टी. पुनरीक्षण मामला सं. 296 हिन्दुस्तान पैट्रोलियम कार्पोरेशन लि. ने फाइल किया था, जिसमें निर्धारण वर्ष 1996-1997 के लिए ब्याज उद्ग्रहण करने के अधिकरण के आदेश की पुष्टि करने वाले आदेश को चुनौती दी गई थी । हमने याचियों की ओर से उपस्थित वरिष्ठ काउंसेल श्री अरशद हिदायतुल्ला और अन्य काउंसेलों तथा प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित हुए सरकारी अधिवक्ता श्री मोहम्मद रफीक को सुना ।

2. प्रथम प्रश्न जिस पर हमें विचार करना है, यह है कि याचियों द्वारा अधिनियम की धारा 23(3) के अधीन उद्गृहीत ब्याज के विरुद्ध आक्षेप किया गया है । यह विवाद्यक इंडियन आयल कार्पोरेशन लि. द्वारा फाइल की गई एक ओ. पी. में और भारत पैट्रोलियम कार्पोरेशन लि. द्वारा फाइल की गई एक ओ. पी. में तथा हिन्दुस्तान पैट्रोलियम कार्पोरेशन लि. द्वारा फाइल की गई एक ओ. पी. और एस. टी. पुनरीक्षण मामलों में उठाया गया है । तीनों कंपनियों द्वारा उद्गृहीत किए गए ब्याज को चुनौती निर्धारण वर्ष 1987-88 से 1995-96 में दी गई है और उपरोक्त एस. टी. पुनरीक्षण मामले में हिन्दुस्तान पैट्रोलियम कार्पोरेशन लि. ने वर्ष 1996-97 के लिए अधिकरण द्वारा पुष्ट किए गए ब्याज के उद्ग्रहण को चुनौती दी है । चूंकि मामले के तथ्य तथा परिस्थितियां जो ब्याज के उद्ग्रहण को अग्रसर करती हैं इसलिए यह पर्याप्त होगा यदि हम उन तथ्यों का उल्लेख करें जो सभी कंपनियों में समान हैं । विवाद्यक नीचे वर्णित विशिष्ट तथ्यात्मक स्थिति के निर्देश में विनिश्चित किया जाना चाहिए :–

1. उत्पाद-शुल्क के स्थगित संदाय पर विक्रय कर का दायित्व

उच्चतम न्यायालय के निर्णय में 1985 में मैक्डावैल वाले मामले में घोषित किया गया था और यह विनिश्चय 59 एस. टी. सी. 277 में प्रकाशित है ।

2. याची के अपने मामले में इस न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ ने 16 दिसम्बर, 1992 के निर्णय द्वारा पैट्रोलियम कंपनियों द्वारा संदेय उत्पाद-शुल्क पर विक्रय कर का दायित्व घोषित किया गया था और यह निर्णय (1993) 89 एस. टी. सी. 106 में प्रकाशित किया गया है ।

3. उच्चतम न्यायालय और इस न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ द्वारा विधि की घोषणा के बावजूद याची कंपनियों ने उत्पाद-शुल्क पर कर देने से इनकार कर दिया, किन्तु तारीख 9 अक्तूबर, 1996 को इस न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ द्वारा दिए गए नर्णय के विरुद्ध फाइल की गई विशेष इजाजत याचिका उच्चतम न्यायालय द्वारा खारिज किए जाने तक करादेय आवर्तन में उत्पाद-शुल्क को सम्मिलित किए बिना अपनी विवरणियां फाइल करती रहीं । यह निर्णय 118 एस. टी. सी. 311 में प्रकाशित किया गया है ।

4. सभी याचियों द्वारा स्वीकृततः उत्पाद-शुल्क पर कर की बकाया दिसम्बर, 1996 से मार्च, 1997 तक कि विभिन्न तारीखों पर ब्याज के बिना संदत्त किया गया था ।

अधिनियम की धारा 23(3) के अधीन ब्याज उद्गृहीत किया गया था जो संबद्ध अवधि के दौरान निम्नलिखित रूप में है :–

"23. कर का भुगतान और वसूली – (1) . . .

(3) यदि इस के अधीन निर्धारित की गई या देय किसी अन्य राशि का भुगतान, इस अधिनियम में या इसके अधीन बताए गए किसी नियम में या अन्य मामलों में मांग के नोटिस में वर्णित समय के भीतर या अपीली या पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा, यथास्थिति, भुगतान के लिए मंजूर किए गए समय के भीतर या इसके लिए सशक्त प्राधिकारी द्वारा किस्तों में भुगतान की मंजूरी दिए जाने के पश्चात्, ऐसी किसी किस्त का उसमें विहित समय के भीतर भुगतान न किए जाने पर ऐसा व्यौहारी या ऐसा व्यक्ति, विहित रीति में, पेनल ब्याज के रूप में निम्नलिखित अतिरिक्त राशि का भी दायी होगा –

(क) उसके भुगतान के लिए विनिर्दिष्ट तारीख के पश्चात् प्रथम तीन मासों तक प्रत्येक मास या उसके भाग के लिए प्रत्येक राशि का एक प्रतिशत ;

(ख) उपरोक्त प्रथम तीन मासों में से प्रत्येक मास या उसके अगले भाग के लिए ऐसी राशि का दो प्रतिशत ।

स्पष्टीकरण – जहां व्यतिक्रम की अवधि एक मास से कम है, वहां ब्याज की गणना व्यतिक्रम के वास्तविक दिनों से की जाएगी ।"

याची द्वारा ब्याज उद्गृहीत किए जाने के विरुद्ध चुनौती दिए जाने पर विचार किए जाने से पूर्व हम यह आवश्यक समझते हैं कि इस न्यायालय द्वारा और उच्चतम न्यायालय द्वारा पहले किए गए कुछ निर्णयों को देखते हुए इस धारा में पुरःस्थापित संशोधनों का निर्देश किया जाए । वस्तुतः उपबंध जैसा कि यह मूल रूप में था, में उन व्यवहारियों द्वारा दोष निकाला गया था, जो कर के भुगतान की मांग के अनुपालन में विफल रहे थे । इसलिए इस न्यायालय और उच्चतम न्यायालय ने पहले लिए गए कुछ निर्णयों में यह अभिनिर्धारित किया था कि व्यतिक्रम के लिए ब्याज के भुगतान करने के दायित्व को लागू करने के लिए मांग सूचना की तामील की जानी चाहिए और व्यतिक्रम तभी होगा जब नोटिस मिल जाने के पश्चात् कर या अन्य धनराशि के भुगतान में व्यतिक्रम होता है । इन सभी निर्णयों को देखते हुए धारा 23(3) का 1988 में संशोधन किया गया था जिसके पश्चात् कानूनी उपबंधों के अनुसार देय तारीख पर कर के असंदाय के लिए ब्याज के उद्ग्रहण के लिए मांग सूचना की अपेक्षा से मुक्ति दे दी गई थी । 1988 के अधिनियम सं. 6 द्वारा संशोधन के पश्चात् धारा 23(3) निम्नलिखित व्यतिक्रमों के मामलों में ब्याज के लिए उपबंध करती है :–

1. यदि निर्धारित कर का भुगतान विहित समय के भीतर नहीं किया गया है ।

2. यदि निर्धारित की गई किसी अन्य राशि का भुगतान विहित समय के भीतर नहीं किया गया है ।

3. यदि अधिनियम के अधीन देय कर का विहित समय के भीतर भुगतान नहीं किया गया है ।

4. यदि अधिनियम के अधीन देय किसी अन्य राशि का भुगतान विहित समय के भीतर नहीं किया गया है ।

के. जी. एस. टी. नियमों की स्कीम के अन्तर्गत, नियम 21(7) के अधीन यथाउपबंधित मासिक विवरणियों के साथ कर संदेय है और के. जी. एस. टी. नियमों के नियम 18(3) के अधीन यथाउपबंधित अंतिम विवरणी के साथ कर संदेय है । निर्धारितियों के लिए यह आवश्यक होगा कि वे विहित प्ररूप में फाइल की गई विवरणी में उनके द्वारा देय कर की और साथ ही विवरणी फाइल किए जाने से पूर्व संदत्त कर का भुगतान किए जाने का साक्ष्य भी प्रस्तुत करें । यह स्व-निर्धारण कर के भुगतान की एक कानूनी स्कीम है । देय तारीख को स्व-निर्धारित कर का भुगतान न करने का व्यतिक्रम उपरोक्त परिस्थिति (3) के अन्तर्गत आता है, जिस पर ब्याज लगता है । तथापि, स्व-निर्धारण स्कीम के अधीन अतिरिक्त और अधिक कर के बारे में कानून नियमित और अस्थायी कर निर्धारण का उपबंध करते हैं और उपरोक्त के आधार पर निर्धारण अधिकारी व्यवहारियों से अतिरिक्त कर की मांग करने के लिए स्वतंत्र है । निर्धारण और मांग सूचना के अनुसार कर के भुगतान में व्यतिक्रम उपरोक्त कथित परिस्थिति (1) में आता है जिस पर व्याज लगता है । कर के दायित्व के अतिरिक्त, रजिस्ट्रीकरण फीस, शास्ति, ब्याज अनुज्ञप्ति फीस, संयोजित करना आदि भी अधिनियम के विभिन्न उपबंधों के अधीन संदेय हैं । देय तारीख को इन राशियों के स्वैच्छिक संदाय में व्यतिक्रम अर्थात् कर के अतिरिक्त कोई राशि, जहां कहीं भी उपबंधित है, उपरोक्त वर्णित परिस्थिति (4) में आती है, जिस पर ब्याज लगता है । इन मामलों में, याचियों का यह विशिष्ट कथन है कि "अधिनियम के अधीन निर्धारित या देय कर" से फाइल की गई मासिक या अंतिम विवरणी के साथ देय कर या विभाग द्वारा निर्धारित या मांगा गया कर अभिप्रेत है । याचियों के अनुसार याचियों ने करादेय आवर्तन में उत्पाद-शुल्क को जोड़ कर मासिक विवरणी या अंतिम विवरणी में प्रकटन नहीं किया है और इसलिए स्व-निर्धारण के अधीन कर देय नहीं था । चूंकि विभाग ने भी निर्धारण नहीं किया था और उच्चतम न्यायालय के निर्णय के पश्चात् पूरे किए गए अंतिम निर्धारण से पूर्व उत्पाद-शुल्क संघटकों पर कर की मांग नहीं की थी इसलिए किसी प्रकार के कर की मांग नहीं की गई थी और इसलिए उनके मामले में ब्याज का उद्ग्रहण करने के लिए कोई व्यतिक्रम नहीं हुआ था । याचियों ने अपनी दलील के विशिष्ट रूप से अपनी इस दलील के समर्थन में **मारुती वायर इंडस्ट्रीज (प्रा.) लि.** बनाम **विक्रय कर अधिकारी**[1], **जे. के. सिंथेटिक्स** बनाम

[1] (2001) 2 के. एल. टी. 100.

वाणिज्यिक कर अधिकारी[1], **एसोसिएटेड सीमेंट कं.** बनाम **वाणिज्यिक कर अधिकारी**[2] और **पी. के. दामोदरन** बनाम **केरल राज्य**[3] वाले मामलों में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चयों को उद्धृत किया है कि व्यतिक्रम के बिना कोई ब्याज देय अभिनिर्धारित नहीं किया गया है और व्यतिक्रम तभी होता है जब विवरणी में स्वीकृत कर का भुगतान न किया गया हो या जब अधिकारी द्वारा निर्धारित और मांग किए गए कर का भुगतान नहीं किया गया हो । दूसरी ओर सरकारी अधिवक्ता ने यह दलील दी है कि अधिनियम के अधीन देय कर का अर्थ विधि के अनुरूप देय कर से है और जब उच्चतम न्यायालय ने मेक्डावैल वाले मामले में 1985 में इस विषय पर ऊपर निर्दिष्ट निर्णय द्वारा यह घोषित किया था कि याचियों का यह कर्तव्य है कि वे उत्पाद-शुल्क को करादेय आवर्तन के रूप में मासिक तथा अंतिम विवरणियों के साथ वापस लौटाएं और कर जमा करें और यदि "अधिनियम के अधीन देय कर" के भुगतान में कोई विलम्ब है तो वह व्यतिक्रम है । याचियों से ठीक ही ब्याज उद्गृहीत किया गया है । उन्होंने यह भी दलील दी कि कम से कम याचियों के अपने मामलों में तारीख 16 दिसम्बर, 1992 को इस न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ के निर्णय के पश्चात् याची मासिक तथा अंतिम विवरणी के साथ उत्पाद-शुल्क पर कर का संदाय करने के लिए आबद्ध हैं और ऐसे व्यतिक्रम पर, चाहे उत्पाद-शुल्क करादेय आवर्तन के रूप में विवरणी में वापस दर्शाया गया हो या नहीं, ब्याज भी लगेगा । सरकारी अभिवक्ता ने इस न्यायालय के दो नए निर्णयों का आश्रय लिया है, ये दोनों मामले अलग-अलग न्यायपीठों के हैं । उनके अनुसार ये पूर्णतः राज्य की ओर से दी गई दलीलों का समर्थन करते हैं । अंतिम निर्णय अर्थात् **मैसर्स चन्द्रमणि ट्रेडर्स** बनाम **केरल राज्य**[4] वाले मामले में न्यायपीठ ने याची द्वारा न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत किए गए लगभग सभी निर्णयों के निर्देश में कानून के संशोधित उपबंधों पर विस्तार से विचार किया । इस निर्णय में इस न्यायालय ने **मै. मिराकल इलास्टोमर (इंडिया) लि.** बनाम **विक्रय कर आयुक्त**[5] वाले मामले में पूर्वतर खंड न्यायपीठ द्वारा किए गए विनिश्चय का अनुसरण करते हुए यह अभिनिर्धारित किया था कि यदि अधिनियम के अधीन देय कर का भुगतान नहीं किया

---

[1] (1994) 94 एस. टी. सी. 422.

[2] (1981) 48 एस. टी. सी. 466.

[3] (2004) 138 एस. टी. सी. 422.

[4] 2003 का एस. टी. पुनरीक्षण सं. 339.

[5] (2006) 2 के. एल. जे. 105.

गया है तो उस पर ब्याज लगेगा । सरकारी अभिवक्ता ने यह दलील दी कि पूर्ण अवधि का ब्याज देय है और चूंकि पूर्ण न्यायपीठ के निर्णय के पश्चात् भी व्यतिक्रम जारी रहा है इसलिए जानबूझकर किया गया अपवंचन मानते हुए न केवल ब्याज उद्गृहीत किया जाना चाहिए अपितु इस पर शास्ति भी अधिरोपित की जानी चाहिए । दोनों पक्षकारों को सुनने और निर्दिष्ट किए गए उपरोक्त दोनों निर्णयों पर विचार करने के पश्चात् हमें यह प्रतीत होता है कि याची ने जो निर्णय प्रस्तुत किए हैं, न्यायालय ने भी उपरोक्त निर्णयों पर विचार किया था । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि यदि अधिनियम के अधीन देय कर का भुगतान नहीं किया जाता है तो धारा 23(3) के अधीन ब्याज लगेगा । इसलिए विचारणीय प्रश्न यह है कि अधिनियम के अधीन क्या कर देय था ? याचियों ने दलील दी है कि जब तक कि अधिनियम के अधीन देय कर का निर्धारण नहीं किया गया है तब तक वही कर देय माना जाना चाहिए जो कि उनके द्वारा फाइल की गई मासिक और अंतिम विवरणियों में दर्शाया गया है । इस दावे को हम स्वीकार नहीं कर सकते क्योंकि अधिनियम के अधीन देय कर का अर्थ अधिनियम के उपबंधों के अधीन देय कर और उच्चतर न्यायालयों अर्थात् उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित विधि में अधिकथित देय कर से है । वास्तव में उच्चतम न्यायालय ने मैक्डावैल वाले मामले में जो विधि अधिकथित की है वह संविधान के अनुच्छेद 141 के अनुरूप सभी पक्षों पर आबद्धकर है । जहां तक पैट्रोलियम उत्पादों के उत्पाद-शुल्क पर कर के दायित्व का संबंध है, मामला विनिर्दिष्टतया याची के स्वयं के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ द्वारा दिए गए विनिश्चय से विनियमित होता है । निस्संदेह याचियों ने **बर्मा शैल**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का निर्देश दिया है जिसमें न्यायालय ने उनके पक्ष में मत व्यक्त किया था । यद्यपि मैक्डावैल वाले मामले में उच्चतम न्यायालय का निर्णय आने के पश्चात् **बर्मा शैल** (उपर्युक्त) वाले मामले का विनिश्चय सही विधि नहीं माना जा सकता, तथापि, हमें यह प्रतीत होता है कि जब तक कि याचियों के अपने मामले में इस न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ का विनिश्चय नहीं आ जाता, याची स्वैच्छिक रूप से उत्पाद-शुल्क पर कर देने के लिए बाध्य नहीं हैं क्योंकि **बर्मा शैल** (उपर्युक्त) वाले मामले के निर्णय को पूर्ण न्यायपीठ के निर्णय द्वारा विनिर्दिष्ट रूप से उलट दिया गया है । आश्चर्यजनक रूप से विभाग ने मैक्डावैल वाले मामले को

[1] 48 एस. टी. सी. 37.

आधार मानकर ऐसे किसी उपबंध या नियमित निर्धारण द्वारा कर की मांग नहीं की है जो कर सकते हैं । तथापि, हमें याचियों द्वारा, उनके अपने मामले में इस पूर्ण न्यायपीठ द्वारा विधिक घोषणा किए जाने के पश्चात् करादेय आवर्तन के रूप में उत्पाद-शुल्क की वापसी न करने में कोई औचित्य प्रतीत नहीं होता । अतः हमारा मत है कि उत्पाद-शुल्क पर कर, तारीख 16 दिसम्बर, 1992 को इस न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ द्वारा विधि घोषित किए जाने के पश्चात् "अधिनियम के अधीन देय कर के रूप में" याचियों पर देय हो गया था । अतः हमारा यह मत है कि जनवरी, 1992 और उनके पश्चात् मासिक विवरणियों में उत्पाद-शुल्क पर विक्रय कर का भुगतान करने में याचियों ने व्यतिक्रम किया है । दिसम्बर, 1996 तक कुछ मामलों में विलम्ब से भुगतान किया गया है और कुछ मामलों में मार्च 1997 तक तथा जनवरी, 1993 से मासिक विवरणी फाइल करने के कारण याची उत्पाद-शुल्क पर कर के विलम्ब से भुगतान पर ब्याज के भुगतान के लिए दायी है । चूंकि कर का मासिक विवरणी के साथ भुगतान किया जाना चाहिए था, इसलिए जनवरी, 1993 से फाइल की गई मासिक विवरणियों के अधीन देय कर पर भुगतान की तारीख से व्यतिक्रम के लिए ब्याज की गणना की जाएगी । ओ. पी. और एस. टी. आर. वी. का कथन भागतः मंजूर किया जाता है और दिसम्बर, 1992 तक की अवधि तक फाइल याचिका विवरणी अर्थात् नवम्बर, 1992 तक के लिए फाइल की गई विवरणी तक की अवधि के लिए ब्याज उद्गृहीत नहीं किया जाएगा और व्यतिक्रम की शेष अवधि के लिए ब्याज उद्गृहीत किया जाएगा ।

3. अन्य याचिकाओं में आक्षेप के. जी. एस. टी. अधिनियम की धारा 45-क के अधीन शास्ति के उद्ग्रहण के लिए है । सभी मामलों में आयुक्त द्वारा उत्पाद-शुल्क पर लगने वाले कर की शास्ति को 25 प्रतिशत तक कम कर दिया गया है । याचियों ने यह दलील दी है कि वे सभी केन्द्रीय सरकार के नियंत्रणाधीन पब्लिक सेक्टर कम्पनियां हैं और उनका विवाद सद्भाविक था तथा उत्पाद-शुल्क पर उनके दायित्व को सद्भाविक रूप से चुनौती देने को दुराग्रहपूर्ण, बेईमानीपूर्ण या धोखेबाजी के रूप में नहीं समझा जाना चाहिए । उन्होंने **हिन्दुस्तान स्टील**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय तथा **पी. डी. सुधी**[2] वाले मामले में इस

[1] 25 एस. टी. सी. 211.

[2] 85 एस. टी. सी. 337.

न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय का अवलंब लिया है । यह उल्लेखनीय है कि उच्चतम न्यायालय तथा इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि शास्ति तकनीकी उल्लंघन या सद्भाविक व्यतिक्रम के लिए नहीं है अपितु दुराग्रह, बेईमानी या धोखेबाजी साबित होने पर ही शास्ति अधिरोपित की जानी चाहिए । प्रत्येक निर्धारिती जिसमें पब्लिक सेक्टर कंपनियां भी सम्मिलित हैं, को पूर्णतः देश की विधि का, जिसमें उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा घोषित विधि भी है, अनुपालन करना चाहिए । यहां ऐसी धारणा नहीं की जानी चाहिए कि पब्लिक सेक्टर कंपनियां सुप्रबंधित हैं, या उनके सभी कार्य सद्भाविक होते हैं । यद्यपि वैयक्तिक कर्मचारी उच्च प्रबंधकीय स्थिति में हो सकते हैं तथापि, मुकदमेबाजी से कोई लाभ नहीं है इसलिए उन्हें सद्भाविक रूप से अपना कार्य करना चाहिए और तभी वे अपनी सद्भावना साबित कर सकते हैं । यह उल्लेखनीय है कि जब याची इस न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ के विनिश्चय के पश्चात् उच्चतम न्यायालय में गए थे, तब वे उच्चतम न्यायालय से भी रोकादेश प्राप्त नहीं कर सके थे और इस मुद्दे पर सीधे तौर पर उच्चतम न्यायालय का एक पूर्वतर विनिश्चय था, इसलिए उच्चतम न्यायालय से इस संबंध में पक्ष में आदेश मिलने की संभावना कम थी किन्तु शून्य नहीं थी । इसलिए हमारा यह मत है कि यदि इन कंपनियों के प्रबंधमंडल विवेकशील हैं तो उन्हें इस न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ के विनिश्चय के आधार पर कर का भुगतान करना प्रारम्भ कर देना चाहिए भले ही वे साथ-साथ उच्चतम न्यायालय के दायित्व के संबंध में चुनौती दे सकते हैं और यदि वे अपील में सफल होते हैं तो वापसी का दावा कर सकते हैं । इसलिए हम इस मत से सहमत नहीं हैं कि इस न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ के विनिश्चय के पश्चात् कर का भुगतान न करने में याचियों की ओर से कोई सद्भावना थी और इसलिए व्यतिक्रम जानबूझकर किया गया है तथा परिणामस्वरूप शास्ति के दायी हैं । तथापि, क्योंकि सभी पब्लिक सेक्टर की ही कंपनियां हैं और धारा 23(3) के अधीन देय उच्च ब्याज दर पर विचार करते हुए जिसकी हम पूर्ण न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय के पश्चात् प्रारम्भ होने वाली अवधि के लिए पुष्टि करते हैं, हमें प्रतीत होता है कि यदि याची निर्णय की तारीख से एक मास के भीतर ब्याज की संपूर्ण बकाया राशि का भुगतान कर देते हैं, तो उन्हें इंडियन आयल कार्पोरेशन लि. के लिए वर्ष 1987-88 से 1992-93, हिन्दुस्तान पैट्रोलियम कार्पोरेशन के लिए वर्ष 1987-88 से 1990-91 और भारत पैट्रोलियम कार्पोरेशन के लिए वर्ष 1987-88 के लिए अधिनियम की धारा 45क के अधीन शास्ति के भुगतान से मुक्त किया जा सकता है ।

तथापि, यदि उपरोक्त रीति से ब्याज के दायित्व को नहीं निभाया जाता है तो उद्गृहीत की गई शास्ति जारी रखी जाएगी तथा यदि देय शास्ति उद्गृहीत कर ली गई है तो वह रद्द समझी जाएगी । यदि उपरोक्त ब्याज के दायित्व को निभाते हुए शेष बकाया ब्याज दायित्व का भुगतान कर दिया गया है तो याची उस शास्ति को समायोजित कराने के लिए स्वतंत्र होंगे ।

4. उपरोक्त रीति से रिट याचिकाओं, मूल याचिकाओं और विक्रय कर पुनरीक्षणों का निपटान किया जाता है ।

रिट याचिकाओं और पुनरीक्षण
का तद्नुसार निपटारा किया गया ।

भट./मह.

(2012) 2 सि. नि. प. 322 **केरल**

वार्की और एक अन्य

बनाम

भारत संघ

तारीख 8 दिसम्बर, 2010

न्यायमूर्ति के. एम. जोसफ और न्यायमूर्ति एम. सी. हरि रानी

रेल अधिनियम, 1989 – धारा 123 और 124-क – वैध टिकट पर रेल में यात्रा – दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – रेल प्रशासन द्वारा यह प्रतिरक्षा ली जानी कि मृतक की मृत्यु उसकी उपेक्षा और असावधानी के कारण हुई थी और घटना के समय वह अपने आरक्षित कोच में नहीं था – इस बात से कोई अन्तर नहीं पड़ता कि याची आरक्षित कोच से भिन्न किसी कोच में यात्रा कर रहा था – दावेदार प्रतिकर पाने के हकदार हैं ।

रेल अधिनियम, 1989 – धारा 124-क – रेल में यात्रा करते समय मृत्यु – प्रतिकर के लिए दावा – दावेदारों द्वारा आवेदन के स्तंभ में घटना की गलत तारीख उल्लिखित की जानी – अन्य साक्ष्य से घटना की सही तारीख साबित होनी – मात्र लिपिकीय या टंकण की त्रुटि के आधार पर प्रतिकर दिए जाने से इनकार नहीं किया जा सकता ।

रेल दावा अधिकरण, एर्नाकुलम खंडपीठ के समक्ष फाइल किए गए

2007 के मूल आवेदन सं. 13 में के याची हमारे समक्ष अपीलार्थी हैं । तारीख 20 फरवरी, 2004 को सायं 8.30 बजे अपीलार्थियों के पुत्र श्री टिबी जोर्ज की मदुकरई स्टेशन के समीप एक ट्रेन दुर्घटना में उस समय मृत्यु हो गई जब वह ट्रेन सं. 6525 आइसलैंड एक्सप्रेस में कोट्टयम से बंगलौर की यात्रा कर रहा था । अपीलार्थियों ने प्रतिकर के रूप में 4,00,000/- रुपए का दावा किया था । अधिकरण द्वारा दावा नामंजूर कर दिया गया था और याचिका खारिज कर दी गई थी । उक्त निर्णय से व्यथित होकर याचियों ने पुनरीक्षण याचिका फाइल की थी जो खर्चों सहित खारिज कर दी गई थी । अतः यह अपील फाइल की गई है । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – रेल अधिनियम, 1989 की धारा 123 में परिभाषित अनपेक्षित घटना में यात्रियों को ले जा रही रेलगाड़ी से किसी यात्री का दुर्घटनावश गिरना भी सम्मिलित है । रेल अधिनियम की धारा 2(29) में "यात्री" को परिभाषित किया गया है जिससे विधिमान्य पास या टिकट के साथ यात्रा करने वाला व्यक्ति अभिप्रेत है । अधिनियम की धारा 123(ग) "अनपेक्षित घटना" को परिभाषित करती है, जिसमें यात्रियों का वहन करने वाली किसी रेलगाड़ी में से दुर्घटनावश किसी यात्री का गिरना सम्मिलित है । धारा 124-क अनपेक्षित घटना के कारण होने वाली मृत्यु के लिए प्रतिकर से संबंधित है । इस मामले में पेश किए गए साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि तारीख 20 फरवरी, 2004 को मृतक बंगलौर जाने के लिए कोट्टयम से रेलगाड़ी (आइसलैंड एक्सप्रेस) में चढ़ा था और वैध टिकट के साथ रेलगाड़ी में यात्रा कर रहा था और जब सायं 8.30 बजे यह रेलगाड़ी मदुकरई के समीप पहुंची तब वह गिर गया और उसके सिर पर चोट लगने के कारण उसकी मृत्यु हो गई थी । साक्ष्य से यह भी प्रकट होता है कि वह फ्लोरेंस नर्सिंग स्कूल, बंगलौर का छात्र था और दुर्घटना के समय वह अपने अध्ययन के भाग के रूप में थिरुविल्ला मिशन मनःचिकित्सा अस्पताल में मनःचिकित्सा पाठ्यक्रम कर रहा था । पाठ्यक्रम के दौरान परीक्षा में उपस्थित होने के लिए अन्य छात्रों के साथ उसने भी थिरुविल्ला से बंगलौर का टिकट बुक कराया था । मृतक के माता-पिता कोट्टयम में रहते थे इसलिए वह रेलगाड़ी में कोट्टयम से चढ़ा था जबकि टिकट थिरुविल्ला से बुक कराया गया था । आर. डब्ल्यू. 1 के परिसाक्ष्य से भी यह प्रकट होता है कि मृतक रेलगाड़ी के एस. 2 कोच से गिरा था जब रेलगाड़ी मदुकरई स्टेशन को छोड़ने वाली थी और रेलगाड़ी चेन खींचे जाने

के कारण रुकी थी और उसने उस यात्री का टिकट नम्बर अभिलिखित किया था जो गिरा था । आर. डब्ल्यू. 1 के अनुसार यह दुर्घटना तारीख 20 फरवरी, 2004 को हुई थी जब वह एर्नाकुलम टाउन से कोयंबटूर जा रही एक्सप्रेस रेलगाड़ी सं. 6525 में टी. टी. आई. के रूप में ड्यूटी पर था । यह सही है कि किसी भी ऐसे चश्मदीद गवाह की परीक्षा नहीं की गई जो यह साबित कर सके कि दुर्घटना किस प्रकार हुई थी । इस बारे में केवल सुना-सुनाया साक्ष्य ही है । किसी भी परिकल्पना के आधार पर यह आत्महत्या या स्वयं को क्षति पहुंचाने वाला मामला नहीं माना जा सकता । चूंकि मृतक का कार्य धारा 124-क के परन्तुक के खंड (क) से खंड (ङ) के वर्ग में नहीं आता है, इसलिए मृतक की मृत्यु यात्रियों का वहन करने वाली रेलगाड़ी में से किसी यात्री के गिरने की "अनपेक्षित घटना" के रूप में परिभाषित दुर्घटना की परिधि में ही आती है । चूंकि मृत्यु "अनपेक्षित घटना" के कारण हुई थी, इसलिए अपीलार्थी जो कि मृतक के माता-पिता हैं, रेल अधिनियम की धारा 124-क के अधीन यथाउपबंधित रूप में प्रतिकर के हकदार हैं । दावा अधिकरण का यह निष्कर्ष कि मृतक एक सद्भाविक यात्री नहीं था और इसलिए आवेदक, प्रत्यर्थी से किसी प्रतिकर के हकदार नहीं हैं, उचित नहीं कहा जा सकता तथा अपीलार्थी प्रतिकर के हकदार हैं । (पैरा 10)

दावा अधिकरण ने आवेदन के स्तंभ 6 में तारीख 22 फरवरी, 2004 के रूप में दर्शाई गई दुर्घटना की तारीख को और आवेदकों की ओर से उसे सही न कराने में असफल रहने के तथ्य पर अत्यधिक बल दिया है । यह सही है कि मुख्य याचिका के स्तंभ 6 में दुर्घटना की तारीख 22 फरवरी, 2004, 8.30 बजे सायं उल्लिखित की गई है । इसी याचिका के स्तंभ 18 में दुर्घटना की तारीख 20 फरवरी, 2004, 8.30 बजे सायं उल्लिखित की गई है । याचिका के स्तंभ 6 और 18 में वर्णित अन्य सूचना यह है कि जब मृतक आइसलैंड एक्सप्रेस में कोट्टयम से बंगलौर की यात्रा कर रहा था और जब रेलगाड़ी मदुकरई के समीप पहुंची तब मृतक दुर्घटनावश रेलगाड़ी से गिरा था और उसकी मृत्यु हो गई थी । इसके अतिरिक्त, पोथानूर रेलवे स्टेशन ने तारीख 20 फरवरी, 2004 को सायं 10.30 बजे मृतक के एक मित्र और सहपाठी श्री स्मिनू जोस, जो कि मृतक श्री टिबी जोर्ज के साथ ही परीक्षा के प्रयोजन से यात्रा कर रहा था, दी गई सूचना के आधार पर 2004 का अपराध सं. 38 रजिस्ट्रीकृत किया था । इस प्रथम सूचना रिपोर्ट में भी दुर्घटना की तारीख 20 फरवरी, 2004

उल्लिखित की गई थी । प्रत्यर्थी की ओर से फाइल किए गए उत्तर में दुर्घटना की तारीख 20 फरवरी, 2004 के रूप में वर्णित की गई थी । अधिकरण ने विवरण के रूप में दुर्घटना की तारीख स्तंभ 6 में विशेषतया तारीख 22 फरवरी, 2004 वर्णित की है और उसने यह ध्यान नहीं दिया कि याचिका के स्तंभ 18 में तारीख 20 फरवरी, 2004 के रूप में वर्णित की गई है । अधिकरण द्वारा विवाद्यक सं. 2 इस प्रकार विरचित किया गया है कि मानो याचिका में आवेदकों ने यह अभिकथन किया हो कि मृतक ने तारीख 22 फरवरी, 2004 को रेलगाड़ी सं. 6525 में यात्रा की थी । मृतक की माता पी. डब्ल्यू. 1 के मुख्य शपथपत्र तथा प्रतिपरीक्षा दोनों में यह निश्चित पक्षकथन है कि दुर्घटना तारीख 20 फरवरी, 2004 को हुई थी और उस दिन 8.30 बजे सायं दुर्घटना में उनके पुत्र को चोट लगी थी जिसका खंडन नहीं किया गया है । इसके अतिरिक्त उसने प्रतिपरीक्षा में कथन करते हुए यह कहा कि उसे मृतक के मित्र ने तारीख 20 फरवरी, 2004 को दुर्घटना के बारे में टेलीफोन पर सूचित किया था । प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने मात्र यह सुझाव दिया था कि मृतक बिना कोई पूर्वावधानी के दरवाजे के समीप बाहर जाने के रास्ते में खड़ा होकर यात्रा कर रहा था और परिणामस्वरूप इस असावधानी और उपेक्षा के कारण वह गिर गया था, जिससे पी. डब्ल्यू. 1 ने इनकार किया है । आर. डब्ल्यू. 1 ने जो तारीख 20 फरवरी, 2004 को एर्नाकुलम टाउन से कोयंबटूर जा रही आइसलैंड एक्सप्रेस रेलगाड़ी सं. 6525 का टी. टी. आई. है और जो अपनी दैनिक डायरी लिखता है और जिसकी प्रति प्रदर्श आर. 1 के रूप में चिह्नित की गई है, सुसंगत पृष्ठ पर यह उल्लिखित किया है कि उस दिन ट्रेन मदुकरई स्टेशन से चलने के पश्चात् आई. सी. चेन खींचने के कारण ट्रेन रुकी थी क्योंकि कोच सं. एस. 2 से एक यात्री गिर गया था । आर. डब्ल्यू. 1 ने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि उसने उस यात्री के टिकट का नम्बर अभिलिखित किया था जो रेलगाड़ी से गिरा था जो स्टेशन मास्टर, कोयंबटूर से लिया गया था और यह टिकट एस. 9 कोच की बर्थ सं. 71 पर यात्रा के लिए था ; किन्तु वह व्यक्ति एर्नाकुलम टाउन से कोयंबटूर की यात्रा के लिए कोच सं. 9 में नहीं चढ़ा था । आर. डब्ल्यू. 1 ने प्रतिपरीक्षा में यह वर्णित किया है कि तारीख 20 फरवरी, 2004 को ट्रेन सं. 6525 आइसलैंड एक्सप्रेस में हुई दुर्घटना के संबंध में उसने स्टेशन मास्टर कोयंबटूर को संदेश भेजा था । अतः दोनों पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य से यह प्रकट होता है, जैसा कि याचिका के स्तंभ 18 में वर्णन किया गया है कि दुर्घटना तारीख 20 फरवरी, 2004 को हुई थी तथा मूल

याचिका के स्तंभ 6 में तारीख 22 फरवरी, 2004 के रूप में वर्णित उक्त दुर्घटना की तारीख केवल एक टंकण की गलती थी जिसे दावा अधिकरण ने अत्यधिक महत्व दिया है और इसका किसी भी रूप में समर्थन नहीं किया जा सकता । अतः, न्यायालय इस मामले में हस्तक्षेप करने के लिए विवश है । दावा अधिकरण का निर्णय और आदेश अपास्त किया जाता है । अपीलार्थियों ने केवल 4 लाख रुपए के प्रतिकर का दावा किया है । अपीलार्थी अनपेक्षित घटना के कारण पहुंचे नुकसान के लिए प्रतिकर के रूप में उपरोक्त धनराशि पाने के हकदार हैं । रेलवे को इस धनराशि का भुगतान दुर्घटना के समय ही और किसी भी अवस्था में आवेदन की प्रति प्राप्त होने पर कर देना चाहिए था । आवेदक विलम्ब के लिए जिम्मेदार नहीं हैं और उन्हें प्रतिकर दिया जाना चाहिए । इन परिस्थितियों में न्यायालय का यह मत है कि अधिकरण द्वारा आवेदन की तारीख से ब्याज दिया जाना चाहिए । (पैरा 11 और 12)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2008] 2008 (2) के. एल. टी. 700 :
भारत संघ बनाम **प्रभाकरण विजय कुमार** । 9

सिविल (अपीली) अधिकारिता : 2009 की एम. एफ. ए. सं. 275.

2007 के मूल आवेदन सं. 13 में रेल दावा अधिकरण की एर्नाकुलम खंडपीठ द्वारा पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री मार्टिन जी. थोट्टन

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री सुबल जे. पाल

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एम. सी. हरि रानी ने दिया ।

न्या. हरि रानी – रेल दावा अधिकरण, एर्नाकुलम खंडपीठ के समक्ष फाइल किए गए 2007 के मूल आवेदन सं. 13 में के याची हमारे समक्ष अपीलार्थी हैं । तारीख 20 फरवरी, 2004 को सायं 8.30 बजे अपीलार्थियों के पुत्र श्री टिबी जोर्ज की मदुकरई स्टेशन के समीप एक ट्रेन दुर्घटना में उस समय मृत्यु हो गई जब वह ट्रेन सं. 6525 आइसलैंड एक्सप्रेस में कोट्टयम से बंगलौर की यात्रा कर रहा था । अपीलार्थियों ने प्रतिकर के रूप में 4,00,000/- रुपए का दावा किया था । अधिकरण द्वारा दावा नामंजूर कर दिया गया था और याचिका खारिज कर दी गई थी । उक्त निर्णय से

व्यथित होकर याचियों ने पुनरीक्षण याचिका फाइल की थी जो खर्चों सहित खारिज कर दी गई थी । अतः यह अपील फाइल की गई है ।

2. अपीलार्थियों का पक्षकथन यह था कि तारीख 20 फरवरी, 2004 को अपीलार्थियों का पुत्र श्री टिबी जोर्ज ट्रेन सं. 6525 आइसलैंड एक्सप्रेस में कोट्टयम स्टेशन से बंगलौर की यात्रा कर रहा था । जब ट्रेन मदुकरई स्टेशन के समीप पहुंची तो दुर्घटनावश ट्रेन से गिरने और उसके सिर पर चोट लगने के कारण उसकी मृत्यु हो गई । वह एक सद्भाविक यात्री था जिसके पास कोच सं. एस. 9 में आरक्षित टिकट सं. 65372085 था । अपीलार्थियों का पुत्र श्री टिबी जोर्ज लोरेंस नर्सिंग स्कूल, बंगलौर का छात्र था । अपने अध्ययन के अतिरिक्त वह छह मास का मनःचिकित्सक का कोर्स भी कर रहा था और वह उक्त कोर्स थिरुविल्ला मिशन मनःचिकित्सीय अस्पताल से कर रहा था । कोर्स के दौरान परीक्षा में उपस्थित होने के लिए मृतक ने अन्य छात्रों के साथ थिरुविल्ला से बंगलौर के टिकट बुक कराए थे । तारीख 20 अप्रैल, 2004 को, जब कि टिकट थिरुविल्ला से बुक किया गया था, मृतक कोट्टयम से ट्रेन में चढ़ा क्योंकि अपीलार्थी वहीं निवास करते थे । जिस टिकट से मृतक यात्रा कर रहा था उसका नम्बर 65372085 था और वह थिरुविल्ला से बंगलौर तक की यात्रा के लिए वैध था । अपीलार्थियों ने दावा अधिकरण के समक्ष टिकट की फोटोकापी प्रदर्श ए-5 के रूप में प्रस्तुत की है । तारीख 20 फरवरी, 2004 को सायं 8.30 बजे यह दुःखद घटना घटी थी और दुर्घटनावश मदुरई स्टेशन के समीप मृतक गिर गया था और चोट लगने से उसकी मृत्यु हो गई थी । इसलिए अपीलार्थियों ने कुल 4,00,000/- रुपए के प्रतिकर का दावा किया था ।

3. प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किए गए उत्तर में मुख्यतः यह दलील दी गई थी कि मृतक दरवाजे के रास्ते के समीप दरवाजा खोलकर यात्रा कर रहा था और वह अपनी असावधानी और उपेक्षापूर्ण कार्य से गिरा था । चेतावनियां दिए जाने के बावजूद बिना सुरक्षा की पूर्वावधानी के बिना मृतक यात्रा कर रहा था और वह अपनी असावधानी और उपेक्षा के कारण गिरा था तथा प्रत्यर्थी रेल अधिनियम, 1989 की धारा 124(क)(ख) के अधीन जिम्मेदार नहीं है और दायित्व से मुक्त है । यह भी दलील दी गई कि उक्त दुर्घटना में 2004 के अपराध सं. 38 में पुलिस द्वारा तैयार की गई मृत्यु जांच रिपोर्ट और अंतिम रिपोर्ट से यह प्रकट होता है कि मृतक थिरुविल्ला से आरक्षित कोच सं. 9 में यात्रा कर रहा था और कोच सं. 2 में अपने

मित्रों से मिलने आया था और जब केले का छिलका फेंक रहा था तब वह ट्रेन से गिर गया था । प्रत्यर्थी के अनुसार रेल के अधिकारियों द्वारा की गई जांच से यह प्रकट होता है कि मृतक मदुकरई स्टेशन तक कोच सं. एस. 9 में नहीं आया था और उसे अनुपस्थित चिह्नित किया गया था । प्रत्यर्थी ने इस बात से इनकार किया है कि अपीलार्थी मृतक के एकमात्र आश्रित हैं ।

4. अधिकरण ने आवश्यक विवाद्यक तैयार किए । अपीलार्थियों की ओर से पेश किए गए साक्ष्य में पी. डब्ल्यू. 1 और प्रदर्श ए-1 से ए-7 तक का मौखिक परिसाक्ष्य सम्मिलित है तथा प्रत्यर्थी की ओर से आर. डब्ल्यू. 1 का मौखिक साक्ष्य और प्रदर्श आर-1 पेश किया गया है । अधिकरण द्वारा विचार किया गया विवाद्यक सं. 2 यह था कि "क्या तारीख 22 फरवरी, 2004 को कोट्टयम से बंगलौर जा रही ट्रेन सं. 6525 में मृतक एक सद्भाविक यात्री था जैसा कि अभिकथित किया गया था ।" मामले में प्रस्तुत किए गए साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् अधिकरण ने यह मत व्यक्त किया कि इस मामले में पेश किए गए संपूर्ण साक्ष्य से यह दर्शित होता है कि तारीख 20 फरवरी, 2004 को दुर्घटना हुई थी, किन्तु आवेदकों ने मूल आवेदन के पैरा सं. 6 में यह उल्लेख किया है कि दुर्घटना तारीख 22 फरवरी, 2004 को हुई थी । अधिकरण के अनुसार यदि यह एक गलती थी तो आवेदकों द्वारा इसमें संशोधन कराया जाना चाहिए था और इस कारण से कि कोई भी संशोधन नहीं किया गया था, आवेदकों की ओर से पेश किया गया साक्ष्य उनके दावे का समर्थन नहीं करता है और यदि कोई घटना हुई थी तो वह तारीख 20 फरवरी, 2004 को हुई थी । यह साबित करने के लिए कि घटना के बारे में इसी समय स्टेशन मास्टर को बताया गया था, स्टेशन मास्टर का ज्ञापन फाइल न किए जाने और पुलिस जांच रिपोर्ट, घटनास्थल या मृत्यु पंचनामा प्रस्तुत न किया जाना और यह उपदर्शित करने के लिए कि मृतक किसी रेल दुर्घटना का शिकार हुआ था, शव-परीक्षा रिपोर्ट का उल्लेख न किए जाने के कारण अधिकरण ने इनका अवलंब लिया तथा यह मत व्यक्त किया कि आवेदक/अपीलार्थी प्रत्यर्थी से किसी भी प्रतिकर के हकदार नहीं थे ।

5. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल और प्रत्यर्थी के विद्वान् स्थायी काउंसेल को सुना ।

6. विचारार्थ प्रश्न यह है कि क्या टिबी जोर्ज की मृत्यु ट्रेन सं. 6525 आइसलैंड एक्सप्रेस में एक दुःखद घटना में उस समय हुई जब वह

मदुकरई रेलवे स्टेशन से यात्रा कर रहा था । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि तारीख 20 फरवरी, 2004 को मृतक उपरोक्त ट्रेन में यात्रा कर रहा था और 8.30 बजे अपराह्न जब ट्रेन मदुकरई रेलवे स्टेशन के समीप पहुंची तब वह ट्रेन से गिरा था और सिर पर लगी चोट के कारण उसकी मृत्यु हो गई थी । रेलवे का यह पक्षकथन है कि मृतक असावधानी से और उपेक्षापूर्ण कार्य करते हुए बाहर जाने के रास्ते के समीप दरवाजा खोल कर यात्रा कर रहा था और इसलिए प्रत्यर्थी इसके लिए जिम्मेदार नहीं है तथा रेल अधिनियम, 1989 की धारा 124(क)(ख) के अधीन दायित्व से मुक्त है । प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि आवेदन में दुर्घटना की तारीख 22 फरवरी, 2004 के रूप में वर्णित की गई है और उसे साबित करने के लिए कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है । इसी प्रकार तारीख को सही करने के लिए, यदि यह गलती थी, कोई भी कदम नहीं उठाया गया था । इसलिए अपीलार्थी किसी भी प्रतिकर के हकदार नहीं हैं ।

रेल अधिनियम, 1989 का अध्याय 12 दुर्घटना के कारण यात्रियों की मृत्यु और क्षति के लिए रेल प्रशासन के दायित्व के संबंध में उपबंध करता है । इस अध्याय की प्रथम धारा, धारा 123 है जो परिभाषा खंड है । खंड (ग) "अनपेक्षित घटना" को परिभाषित करता है । यह खंड इस मामले से सुसंगत है जो निम्नलिखित है :–

> "123(ग) 'अनपेक्षित घटना' से अभिप्रेत है –
>
> (1) (i) *** *** ***
>
> (ii) *** *** ***
>
> (iii) *** *** ***
>
> (2) यात्रियों को वहन करने वाली किसी रेलगाड़ी से किसी व्यक्ति का दुर्घटनावश गिर जाना ।"

अधिनियम की धारा 124-क निम्नलिखित रूप में उपबंध करती है :–

> "124-क. **अनपेक्षित घटनाओं मद्दे प्रतिकर** – जब किसी रेल के कार्यकरण के अनुक्रम में कोई अनपेक्षित घटना होती है तब चाहे रेल प्रशासन की ओर से कोई दोषपूर्ण कार्य, उपेक्षा या व्यतिक्रम हुआ हो या न हुआ हो, जो उस यात्री को जो उससे क्षतिग्रस्त हुआ है या उस यात्री के जिसकी मृत्यु हो गई है, आश्रित को उसके बारे में

अनुयोजन करने और नुकसानी वसूल करने के लिए हकदार बनाता है, रेल प्रशासन, किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, ऐसी अनपेक्षित घटना के परिणामस्वरूप किसी यात्री की हुई मृत्यु, या उसको हुई क्षति द्वारा पहुंची हानि के लिए उस सीमा तक, जो विहित की जाए, और केवल उस सीमा तक ही, प्रतिकर देने के दायित्वाधीन होगा :

परन्तु इस धारा के अधीन रेल प्रशासन द्वारा कोई प्रतिकर संदेय नहीं होगा यदि यात्री की निम्नलिखित के कारण मृत्यु होती है या उसकी क्षति होती है, अर्थात् –

(क) उसके द्वारा आत्महत्या या किया गया आत्महत्या का प्रयत्न ;

(ख) उसके द्वारा स्वयं को पहुंचाई गई क्षति ;

(ग) उसका अपना आपराधिक कार्य ;

(घ) उसके द्वारा मत्तता या उन्मत्तता की हालत में किया गया कोई कार्य ;

(ङ) कोई प्राकृतिक कारण या बीमारी अथवा चिकित्सीय या शल्य चिकित्सीय उपचार जब तक कि ऐसा उपचार उक्त अनपेक्षित घटना द्वारा हुई क्षति के लिए आवश्यक नहीं हो जाता है ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए, 'यात्रा' के अंतर्गत निम्नलिखित आते हैं, अर्थात् –

(i) कर्तव्यारूढ़ रेल सेवक ; और

(ii) ऐसा व्यक्ति जिसने यात्रियों का वहन करने वाली किसी रेलगाड़ी द्वारा, किसी तारीख को, यात्रा करने के लिए कोई विधिमान्य टिकट या कोई विधिमान्य प्लेटफार्म टिकट क्रय किया है और वह व्यक्ति किसी अनपेक्षित घटना का शिकार हो जाता है ।"

7. प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किए गए उत्तर और आर. डब्ल्यू. 1 के परिसाक्ष्य में इस बात से इनकार नहीं किया गया है कि टिबी जोर्ज रेलगाड़ी से गिरा था और उसकी मृत्यु उस समय हुई जब वह वैध टिकट

पर यात्रा कर रहा था । प्रत्यर्थी ने यह दलील दी है कि पुलिस द्वारा तैयार की गई जांच रिपोर्ट और अंतिम रिपोर्ट से यह प्रकट होता है कि टिबी जोर्ज आरक्षित कोच सं. 9 में थिरुविल्ला से यात्रा कर रहा था और अपने मित्रों से मिलने के लिए कोच सं. 2 में आया था और जब वह केले का छिलका फेंक रहा था तब वह रेलगाड़ी से गिर गया था । प्रत्यर्थी द्वारा यह भी दलील दी गई है कि मृतक मदुकरई तक एस. 9 कोच से आया ही नहीं था और वह कोच सं. 2 से गिरा था और दुर्घटना उसकी अपनी असावधानी और उपेक्षा के कारण हुई थी और वह दरवाजा खोलकर बाहर जाने के रास्ते में खड़े होकर यात्रा कर रहा था । अतः स्वीकृततः मृतक धारा 124-क के प्रयोजनों के लिए "यात्री" था जैसा कि स्पष्टीकरण में स्पष्ट किया गया है । धारा 124-क के अधीन रेल प्रशासन का दोषपूर्ण कार्य, उपेक्षा या व्यतिक्रम न होने पर भी प्रतिकर का दायित्व है । किन्तु इस धारा के परन्तुक के अनुसार यदि खंड (क) से खंड (ङ) में वर्णित किसी आधार पर किसी यात्री की मृत्यु होती है या उसे क्षति पहुंचती है तो रेलवे किसी प्रतिकर के संदाय के लिए दायी नहीं है । हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी ने ऐसी कोई दलील नहीं दी है कि टिबी जोर्ज की मृत्यु आत्महत्या थी या मृत्यु स्वयं को पहुंचाई गई क्षति के कारण हुई थी । उसी प्रकार, प्रत्यर्थी का भी यह पक्षकथन नहीं है कि उसकी मृत्यु उसके अपने आपराधिक कार्य के कारण हुई थी या नशे की अवस्था में हुई थी या वह पागल था या उसकी मृत्यु किसी प्राकृतिक कारण या बीमारी से हुई थी । अतः उसका रेलगाड़ी से गिरना स्पष्टतः एक दुर्घटना थी । धारा 124-क के परन्तुक के खंड (ग) में वर्णित आपराधिक कार्य में विद्वेषपूर्ण आशय का तत्व या आपराधिक मनःस्थिति का तत्व होना चाहिए । मृतक द्वारा यात्रा के लिए वैध टिकट लेकर खुले हुए दरवाजे पर खड़ा होना और उसी रेलगाड़ी के किसी अन्य कोच में यात्रा करना और आरक्षित कोच एस. 9 के स्थान पर एस. 2 कोच में, जहां से वह गिरा था, यात्रा करना रेलवे को अपीलार्थियों को प्रतिकर के भुगतान के दायित्व से मुक्त नहीं करता ।

8. प्रत्यर्थी ने यह स्वीकार किया है कि टिबी जोर्ज रेलगाड़ी से गिरा था किन्तु वह अपनी उपेक्षा के कारण गिरा था । रेलवे ने यह दलील दी है कि चूंकि यह दुर्घटना मृतक के उपेक्षापूर्ण कार्य के परिणामस्वरूप हुई थी इसलिए यह रेल अधिनियम की धारा 124-क की परिधि के अन्तर्गत नहीं आता और इसलिए अपीलार्थी किसी भी प्रतिकर के हकदार नहीं हैं । दूसरी ओर अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि वह दुर्घटना

जिसमें श्री टिबी जोर्ज की मृत्यु हुई थी, धारा 124-क के परन्तुक के खंड (क) से खंड (ड) में वर्णित किन्हीं आधारों में नहीं आती और यह निश्चित रूप से रेल अधिनियम की धारा 124-क के मुख्य भाग की परिधि में आती है न कि उसके परन्तुक के अन्तर्गत ।

9. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने **भारत संघ** बनाम **प्रभाकरण विजय कुमार**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का अवलंब लिया है, जिसमें इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गया था :–

> "धारा 124-क रेलवे दुर्घटनाओं के मामले में पूर्ण दायित्व या बिना गलती के दायित्व को अधिकथित करती है । अतः जहां कोई मामला धारा 124-क के अधीन आता है वहां यह पूर्णतः असंगत होगा कि किसका दोष था ।"

10. रेल अधिनियम, 1989 की धारा 123 में परिभाषित अनपेक्षित घटना में यात्रियों को ले जा रही रेलगाड़ी से किसी यात्री का दुर्घटनावश गिरना भी सम्मिलित है । रेल अधिनियम की धारा 2(29) में "यात्री" को परिभाषित किया गया है जिससे विधिमान्य पास या टिकट के साथ यात्रा करने वाला व्यक्ति अभिप्रेत है । अधिनियम की धारा 123(ग) "अनपेक्षित घटना" को परिभाषित करती है, जिसमें यात्रियों का वहन करने वाली किसी रेलगाड़ी में से दुर्घटनावश किसी यात्री का गिरना सम्मिलित है । धारा 124-क अनपेक्षित घटना के कारण होने वाली मृत्यु के लिए प्रतिकर से संबंधित है । इस मामले में पेश किए गए साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि तारीख 20 फरवरी, 2004 को मृतक ने बंगलौर जाने के लिए कोट्टयम से रेलगाड़ी (आइसलैंड एक्सप्रेस) में चढ़ा था और वैध टिकट के साथ रेलगाड़ी में यात्रा कर रहा था और जब सायं 8.30 बजे यह रेलगाड़ी मदुकरई के समीप पहुंची तब वह गिर गया और उसके सिर पर चोट लगने के कारण उसकी मृत्यु हो गई थी । साक्ष्य से यह भी प्रकट होता है कि वह फ्लोरेंस नर्सिंग स्कूल, बंगलौर का छात्र था और दुर्घटना के समय वह अपने अध्ययन के भाग के रूप में थिरुविल्ला मिशन मनःचिकित्सा अस्पताल में मनःचिकित्सा पाठ्यक्रम कर रहा था । पाठ्यक्रम के दौरान परीक्षा में उपस्थित होने के लिए अन्य छात्रों के साथ उसने भी थिरुविल्ला से बंगलौर का टिकट बुक कराया था । मृतक के माता-पिता कोट्टयम में

---

[1] 2008 (2) के. एल. टी. 700.

रहते थे इसलिए वह रेलगाड़ी में कोट्टयम से चढ़ा था जबकि टिकट थिरुविल्ला से बुक कराया गया था । आर. डब्ल्यू. 1 के परिसाक्ष्य से भी यह प्रकट होता है कि मृतक रेलगाड़ी के एस. 2 कोच से गिरा था जब रेलगाड़ी मदुकरई स्टेशन को छोड़ने वाली थी और रेलगाड़ी चेन खींचे जाने के कारण रुकी थी और उसने उस यात्री का टिकट नम्बर अभिलिखित किया था जो गिरा था । आर. डब्ल्यू. 1 के अनुसार यह दुर्घटना तारीख 20 फरवरी, 2004 को हुई थी जब वह एर्नाकुलम टाउन से कोयंबटूर जा रही एक्सप्रेस रेलगाड़ी सं. 6525 में टी. टी. आई. के रूप में ड्यूटी पर था । यह सही है कि किसी भी ऐसे चश्मदीद गवाह की परीक्षा नहीं की गई जो यह साबित कर सके कि दुर्घटना किस प्रकार हुई थी । इस बारे में केवल सुना-सुनाया साक्ष्य ही है । किसी भी परिकल्पना के आधार पर यह आत्महत्या या स्वयं को क्षति पहुंचाने वाला मामला नहीं माना जा सकता । चूंकि मृतक का कार्य धारा 124-क के परन्तुक के खंड (क) से खंड (ङ) के वर्ग में नहीं आता है, इसलिए मृतक की मृत्यु यात्रियों का वहन करने वाली रेलगाड़ी में से किसी यात्री के गिरने की "अनपेक्षित घटना" के रूप में परिभाषित दुर्घटना की परिधि में ही आती है । चूंकि मृत्यु "अनपेक्षित घटना" के कारण हुई थी, इसलिए अपीलार्थी जो कि मृतक के माता-पिता हैं, रेल अधिनियम की धारा 124-क के अधीन यथाउपबंधित रूप में प्रतिकर के हकदार हैं । दावा अधिकरण का यह निष्कर्ष कि मृतक एक सद्भाविक यात्री नहीं था और इसलिए आवेदक, प्रत्यर्थी से किसी प्रतिकर के हकदार नहीं हैं, उचित नहीं कहा जा सकता तथा अपीलार्थी प्रतिकर के हकदार हैं ।

11. दावा अधिकरण ने आवेदन के स्तंभ 6 में तारीख 22 फरवरी, 2004 के रूप में दर्शाई गई दुर्घटना की तारीख को और आवेदकों की ओर से उसे सही न कराने में असफल रहने के तथ्य पर अत्यधिक बल दिया है ।

12. यह सही है कि मुख्य याचिका के स्तंभ 6 में दुर्घटना की तारीख 22 फरवरी, 2004, 8.30 बजे सायं उल्लिखित की गई है । इसी याचिका के स्तंभ 18 में दुर्घटना की तारीख 20 फरवरी, 2004, 8.30 बजे सायं उल्लिखित की गई है । याचिका के स्तंभ 6 और 18 में वर्णित अन्य सूचना यह है कि जब मृतक आइसलैंड एक्सप्रेस में कोट्टयम से बंगलौर की यात्रा कर रहा था और जब रेलगाड़ी मदुकरई के समीप पहुंची तब मृतक

दुर्घटनावश रेलगाड़ी से गिरा था और उसकी मृत्यु हो गई थी । इसके अतिरिक्त, पोथानूर रेलवे स्टेशन ने तारीख 20 फरवरी, 2004 को सायं 10.30 बजे मृतक के एक मित्र और सहपाठी श्री स्मिनू जोस, जो कि मृतक श्री टिबी जोर्ज के साथ ही परीक्षा के प्रयोजन से यात्रा कर रहा था, दी गई सूचना के आधार पर 2004 का अपराध सं. 38 रजिस्ट्रीकृत किया था । इस प्रथम सूचना रिपोर्ट में भी दुर्घटना की तारीख 20 फरवरी, 2004 उल्लिखित की गई थी । प्रत्यर्थी की ओर से फाइल किए गए उत्तर में दुर्घटना की तारीख 20 फरवरी, 2004 के रूप में वर्णित की गई थी । अधिकरण ने विवरण के रूप में दुर्घटना की तारीख स्तंभ 6 में विशेषतया तारीख 22 फरवरी, 2004 वर्णित की है और उसने यह ध्यान नहीं दिया कि याचिका के स्तंभ 18 में तारीख 20 फरवरी, 2004 के रूप में वर्णित की गई है । अधिकरण द्वारा विवाद्यक सं. 2 इस प्रकार विरचित किया गया है कि मानो याचिका में आवेदकों ने यह अभिकथन किया हो कि मृतक ने तारीख 22 फरवरी, 2004 को रेलगाड़ी सं. 6525 में यात्रा की थी । मृतक की माता पी. डब्ल्यू. 1 के मुख्य शपथपत्र तथा प्रतिपरीक्षा दोनों में यह निश्चित पक्षकथन है कि दुर्घटना तारीख 20 फरवरी, 2004 को हुई थी और उस दिन 8.30 बजे सायं दुर्घटना में उनके पुत्र को चोट लगी थी जिसका खंडन नहीं किया गया है । इसके अतिरिक्त उसने प्रतिपरीक्षा में कथन करते हुए यह कहा कि उसे मृतक के मित्र ने तारीख 20 फरवरी, 2004 को दुर्घटना के बारे में टेलीफोन पर सूचित किया था । प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने मात्र यह सुझाव दिया था कि मृतक बिना कोई पूर्वावधानी के दरवाजे के समीप बाहर जाने के रास्ते में खड़ा होकर यात्रा कर रहा था और परिणामस्वरूप इस असावधानी और उपेक्षा के कारण वह गिर गया था, जिससे पी. डब्ल्यू. 1 ने इनकार किया है । आर. डब्ल्यू. 1 ने जो तारीख 20 फरवरी, 2004 को एर्नाकुलम टाउन से कोयंबटूर जा रही आइसलैंड एक्सप्रेस रेलगाड़ी सं. 6525 का टी. टी. आई. है और जो अपनी दैनिक डायरी लिखता है और जिसकी प्रति प्रदर्श आर. 1 के रूप में चिह्नित की गई है, सुसंगत पृष्ठ पर यह उल्लिखित किया है कि उस दिन ट्रेन मदुकरई स्टेशन से चलने के पश्चात् आई. सी. चेन खींचने के कारण ट्रेन रुकी थी क्योंकि कोच सं. एस. 2 से एक यात्री गिर गया था । आर. डब्ल्यू. 1 ने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि उसने उस यात्री के टिकट का नम्बर अभिलिखित किया था जो रेलगाड़ी से गिरा था जो स्टेशन मास्टर,

कोयंबटूर से लिया गया था और यह टिकट एस. 9 कोच की बर्थ सं. 71 पर यात्रा के लिए था ; किन्तु वह व्यक्ति एर्नाकुलम टाउन से कोयंबटूर की यात्रा के लिए कोच सं. 9 में नहीं चढ़ा था । आर. डब्ल्यू. 1 ने प्रतिपरीक्षा में यह वर्णित किया है कि तारीख 20 फरवरी, 2004 को ट्रेन सं. 6525 आइसलैंड एक्सप्रेस में हुई दुर्घटना के संबंध में उसने स्टेशन मास्टर कोयंबटूर को संदेश भेजा था । अतः दोनों पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य से यह प्रकट होता है, जैसा कि याचिका के स्तंभ 18 में वर्णन किया गया है कि दुर्घटना तारीख 20 फरवरी, 2004 को हुई थी तथा मूल याचिका के स्तंभ 6 में तारीख 22 फरवरी, 2004 के रूप में वर्णित उक्त दुर्घटना की तारीख केवल एक टंकण की गलती थी जिसे दावा अधिकरण ने अत्यधिक महत्व दिया है और इसका किसी भी रूप में समर्थन नहीं किया जा सकता । अतः, हम इस मामले में हस्तक्षेप करने के लिए विवश हैं । दावा अधिकरण का निर्णय और आदेश अपास्त किया जाता है । अपीलार्थियों ने केवल 4 लाख रुपए के प्रतिकर का दावा किया है । अपीलार्थी अनपेक्षित घटना के कारण पहुंचे नुकसान के लिए प्रतिकर के रूप में उपरोक्त धनराशि पाने के हकदार हैं । रेलवे को इस धनराशि का भुगतान दुर्घटना के समय ही और किसी भी अवस्था में आवेदन की प्रति प्राप्त होने पर कर देना चाहिए था । आवेदक विलम्ब के लिए जिम्मेदार नहीं हैं और उन्हें प्रतिकर दिया जाना चाहिए । इन परिस्थितियों में न्यायालय का यह मत है कि अधिकरण द्वारा आवेदन की तारीख से ब्याज दिया जाना चाहिए ।

13. परिणामस्वरूप, यह अपील मंजूर की जाती है । अपीलार्थी 4 लाख रुपए के प्रतिकर के साथ-साथ उपरोक्त धनराशि पर याचिका की तारीख से 6 प्रतिशत वार्षिक ब्याज सहित खर्चे पाने के भी हकदार हैं ।

अपील मंजूर की गई ।

भट./मह.

मोहन सिंह और एक अन्य

बनाम

जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य

तारीख 13 मई, 2010

न्यायमूर्ति हसनैन मसूदी

जम्मू-कश्मीर सिख गुरुद्वारा और धार्मिक विन्यास अधिनियम, 1973 – धारा 9 और 19(1) [सपठित जम्मू-कश्मीर सिख गुरुद्वारा और धार्मिक विन्यास नियम, 1975 – नियम 63-ख] – सरकार की नियम बनाने की शक्ति – नियमों द्वारा बोर्ड का समितियों के कामकाज पर नियंत्रण – नियम 63-ख को मनमाना और अतर्कसंगतता के आधार पर अभिखंडित करने के लिए याचिका – नियम 63-ख द्वारा शक्ति का प्रयोग प्रस्ताव द्वारा तभी अनुज्ञात किया गया है जब बोर्ड का यह समाधान हो जाए कि समिति द्वारा प्रशासन या संपत्तियों का रख-रखाव नियमों के अनुसार नहीं किया जा रहा है – अतः इस नियम को मनमाना या अधिकारातीत नहीं कहा जा सकता ।

जम्मू-कश्मीर राज्य सिख गुरुद्वारों की संपत्तियों आदि के प्रबंधन और प्रशासन पर नियंत्रण के लिए सिख गुरुद्वारे और धार्मिक विन्यास अधिनियम, 1973 की धारा 9 और 19(1) के अधीन शक्तियों के प्रयोग में नियम 63-ख विरचित किया गया । याचियों ने उक्त नियम की विधिमान्यता को आक्षेपित करते हुए वर्तमान रिट याचिका फाइल की । रिट याचिका का तद्नुसार निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – याचिका में दलील दिया गया अगला आधार नियम बनाने वाले प्राधिकारी की सक्षमता से संबंधित है कि क्या अधिकारी अधिनियम की धारा 19 के अधीन उसको प्रदत्त नियम बनाने की शक्ति के अधीन याचिका में आक्षेपित नियम बना सकता है । इस दलील में कोई बल नहीं है और यह याचिकाकर्ता को याचिका को सफल बनाने में कोई सहायता नहीं करती । धारा 19(1) निःसंदेह नियम बनाने की शक्ति को वहां तक निर्बंधित करती है, जहां तक इसका आशय अधिनियम के ''उद्देश्यों को कार्यांवित करने'' के लिए आवश्यक हो । धारा 19(2) केवल विश्लेषणात्मक है न कि उन विषयों को निःशेष करने वाली जिनके बारे में नियम उपबंध

करते हैं । आधार यह है कि विरचित नियम को अधिनियम के प्रयोजनों के लिए अनिवार्यतः कार्यान्वित किया जाना चाहिए । यह दोहराया गया है कि अधिनियम का प्रयोजन गुरुद्वारों के प्रबंध और प्रशासन और पारदर्शिता के लिए और उनकी संपत्ति और उनके प्रबंधन के लिए और उनके साधारण कार्यों के लिए अक्षम है । नियम 63-ख समितियों के कार्यों की निगरानी के लिए उपबंध करता है । बोर्ड में अर्थात् अधिनियम की धारा 9 के अधीन सभी समितियों के ऊपर "साधारण प्रशासन और अधीक्षण" की शक्ति निहित की गई है और नियम 63-ख के अधीन समिति को निलंबित करने या बर्खास्त करने और उसके स्थान पर तदर्थ समिति, जब तक नियमित समिति निर्वाचित नहीं हो जाती, नियुक्त करने की शक्ति प्रदत्त करती है, यदि बोर्ड का यह समाधान हो जाता है कि समितियों ने इस अधिनियम और इसके अधीन बनाए गए नियमों के अनुसार अपने कर्तव्यों और जिम्मेदारियों का निर्वहन नहीं किया है । नियम 63-ख (i से v) उन परिस्थितियों का उल्लेख करता है जिसमें प्रदत्त शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है । अतः नियम 63-ख के अधीन बोर्ड को दी गई शक्ति, अधिनियम की धारा 9 के अधीन बोर्ड में निहित की गई शक्ति का अभिन्न अंग है । नियम 63-ख को, इस प्रकार देखने पर प्रतीत होता है कि यह सरकार की नियम बनाने की परिधि में आता है, जिसके लिए अधिनियम की धारा 19 के अधीन सरकार को सक्षम बनाया गया है । अतः याचिका में आक्षेपित नियम अधिनियम की धारा 19 के अधीन प्रदत्त शक्ति के उचित प्रयोग में बनाया गया है । वह आधार जिसे याचिका में दर्शाया गया है जिस पर बहस के दौरान याचिकाकर्ता के विद्वान् काउंसेल ने बल दिया है इस आशय का है कि नियम 63-ख को समाप्त कर दिया जाना चाहिए क्योंकि यह बोर्ड को अनिर्देशित और मनमानी करने की शक्ति देता है जो स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है । नियम 63-ख बोर्ड को प्रदत्त निलंबन/हटाने की शक्ति को निर्बंधित करता है और आक्षेपित नियम की औचित्यता प्रदान करने वाली दशाओं/परिस्थितियों का उल्लेख करता है । ऐसा नहीं है कि बोर्ड जब चाहे तब मनमानी करते हुए सनक में समिति को निलंबित या बर्खास्त कर दे । यह शक्ति केवल तभी प्रयुक्त की जानी चाहिए जब बोर्ड को, समिति के बारे में यह समाधान हो जाए कि वह, इस अधिनियम और इसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों के अधीन उसे सौंपे गए कृत्यों और उत्तरदायित्वों को पूरा करने में विफल रही है । विशेषतया बोर्ड समिति को निलंबित/बर्खास्त करने का आदेश तभी करेगा जब समिति अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों द्वारा उसके सौंपे गए कृत्यों और

उत्तरदायित्वों को निभाने में असफल रही हो । दृष्टांत के रूप में, यदि समिति नियत तारीख तक बजट पास नहीं करती है बोर्ड को अभिदाय देने में असफल रहती है, गुरुद्वारे के लेखों के रख-रखाव में भारी अनियमितताएं बरतती है, या गुरुद्वारे की निधियों और संपत्तियों के बारे में लेखा परीक्षा पार्टी का मत है कि गबन या दुर्विनियोग किया गया है या गुरुद्वारे की संपत्ति के रख-रखाव में कुप्रबंध किया गया है या समिति बोर्ड के अनुदेशों या निदेशों की अवहेलना करती है, तो बोर्ड समिति को निलंबित या बर्खास्त कर सकेगा । अतः नियम 63-ख के अधीन प्रदत्त शक्ति को, विस्तृत और मनमाने ढंग से प्रयोग की जा सकने वाली या अनिर्देशित ढंग से प्रयोग की जा सकने वाली नहीं माना जा सकता । आक्षेपित नियम भी, नियम के अधीन प्रदत्त शक्ति का प्रयोग किए जाने के लिए दिशा निर्देश निर्धारित करता है । याचियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलील पर विचार किए जाने पर यदि 1975 के नियमों के नियम 63-ख को वैध और अधिकार क्षेत्र में मान लिया जाए तो, बोर्ड द्वारा समिति को निलंबित या बर्खास्त करके उसके स्थान पर तदर्थ समिति या प्रबंधक/प्रबंधकों को नियुक्त किए जाने पर भी उचित आदेश करने की आवश्यकता पर विचार किए जाने की आवश्यकता है । जैसा कि अब तक स्पष्ट हो चुका है कि नियम 63-ख बोर्ड को विशेष ढंग से और विशेष परिस्थितियों में नियम के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करने के लिए सशक्त करता है । नियम की यह आवश्यकता है कि इस नियम के अधीन प्रदत्त शक्ति का प्रयोग प्रस्ताव द्वारा किया जाना चाहिए । यह स्पष्ट है कि जब कभी भी ऐसी परिस्थितियां आएं, जिनमें अधिनियम और 1975 के नियमों के नियम 63 के अधीन शक्ति का प्रयोग करना आवश्यक प्रतीत हो, तब मामले को बोर्ड के समक्ष रखा जाना चाहिए न कि किसी विशेष पदाधिकारी या बोर्ड के सदस्य के समक्ष । ''प्रस्ताव'' पद के प्रयोग में यह विवक्षित है कि विषय पर बोर्ड की सभा में चर्चा/विचार-विमर्श किया जाएगा । जब एक बार मामले पर चर्चा या विचार-विमर्श हो गया हो, तो बोर्ड नियम के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए समिति को निलंबित या बर्खास्त करके उसके स्थान पर तदर्थ समिति या प्रबंधक/प्रबंधकों को नियुक्त कर सकेगा । वह तरीका या ढंग जिसमें शक्ति का प्रयोग किया जाएगा, इस निष्कर्ष पर निर्भर करता है कि समिति को निलंबित या बर्खास्त करके तथा उसके स्थान पर एक तदर्थ समिति या प्रबंधक/प्रबंधकों की नियुक्ति का उद्देश्य, नियमों के नियम 52 में यथाअधिकथित बोर्ड के सदस्यों द्वारा समर्थित, आदेश द्वारा किया जाना चाहिए । बोर्ड द्वारा शक्ति को प्रयुक्त

करने का कार्य तभी किया जाना चाहिए जब नियम में उल्लिखित परिस्थितियां शक्ति के प्रयोग को आवश्यक बनाती हों । यह स्पष्ट है कि नियम 63-ख के अधीन शक्ति का प्रयोग करने से पूर्व, बोर्ड की यह संतुष्टि होनी चाहिए कि उसके सम्मुख प्रकट किया गया मामला उसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए है, जिस परिस्थिति/परिस्थितियों में नियमों के अधीन उसे शक्ति का प्रयोग अपेक्षित है । उपरोक्त चर्चा के उपरांत यह निष्कर्ष निकलता है कि समिति को निलंबित/बर्खास्त करने और उसके स्थान पर विधिवत नई समिति के निर्वाचित होने तक, तदर्थ समिति या प्रबंधक/प्रबंधकों को नियुक्त करना उचित है जिससे यह प्रकट हो कि अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के अंतर्गत उपबंधित मामलों में, कुछ करने के लिए विस्तृत कारण दिए जाने चाहिएं जिससे कि सक्षम प्राधिकारी समिति के निलंबन/बर्खास्त के निर्णय/प्रस्ताव पर विचार करके स्थिति का मूल्यांकन करने की स्थिति में हो और उन कारणों का उल्लेख कर सके कि क्या विधिवत निर्वाचित समिति के विरुद्ध त्वरित कार्रवाई की जाए । (पैरा 6, 7 और 8)

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2000 की मूल रिट याचिका सं. 647.

जम्मू-कश्मीर संविधान, 1957 के अनुच्छेद 103 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री जैड. ए. कुरेशी, अधिवक्ता

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री ए. चिश्ती

न्यायमूर्ति हसनैन मसूदी – जम्मू-कश्मीर सिख गुरुद्वारे और धार्मिक विन्यास अधिनियम, 1973 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'अधिनियम' कहा गया है), राज्य में सिख गुरुद्वारों और उनकी सम्पत्ति, चाहे वह जहां भी स्थित हो, के बेहतर प्रबंधन के लिए अधिनियमित किया गया है । अधिनियम के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए, अधिनियम राज्य सिख गुरुद्वारा प्रबंधक बोर्ड (जिसे संक्षेप में 'बोर्ड' कहा गया है) तथा गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी (जिसे संक्षेप में 'कमेटी' कहा गया है) गठित किए जाने का उपबंध करता है । अधिनियम की धारा 3 बोर्ड की संरचना और गठन से संबंधित है । बोर्ड धारा 9 के अधीन 15 निर्वाचित सदस्यों की समिति का निगमित निकाय होगा । बोर्ड का यह कर्तव्य होगा कि वह यह सुनिश्चित करे कि प्रत्येक समिति, अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के अधीन

गुरुद्वारा या गुरुद्वारों की संपत्ति और आय का प्रबंध करे । अधिनियम की धारा 10 समिति के गठन का उपबंध करती है । धारा 10 के अधीन समिति में, जिसमें समिति के पदाधिकारियों को मिला कर 11 सदस्य होंगे, बोर्ड के नियंत्रण में आने वाले सिख गुरुद्वारा या अनेक गुरुद्वारों के प्रशासन और प्रबंधन की शक्ति/कर्तव्य निहित होंगे । धारा 14 के निबंधनों में समिति को अपने प्रबंधन के अधीन गुरुद्वारा या गुरुद्वारों से संबंधित संपत्तियों और आय, चाहे वह किसी भी प्रकार की हो, पर पूर्ण शक्ति और नियंत्रण होगा । अधिनियम की धारा 19 सरकार को इस अधिनियम को कार्यांवित करने के लिए नियम बनाने की शक्ति प्रदत्त करती है । उपरोक्त उपबंधों के अधीन सरकार को यह शक्ति होगी कि वह विहित रीति से ऐसे नियम बनाए, जिनसे बोर्ड या समिति का पुनः निर्वाचन हो सके, और उस रीति को विहित करे जिस रीति में गुरुद्वारा के लेखे या गुरुद्वारे की संपत्ति रखी जाएगी तथा कैसे उनकी लेखा परीक्षा की जाएगी । अधिनियम की धारा 19 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए सरकार ने अधिनियम के प्रयोजन को पूरा करने के लिए "जम्मू-कश्मीर सिख गुरुद्वारा और धार्मिक विन्यास नियम, 1975" विरचित किए । 1978 के एस. आर. ओ. 771 द्वारा जोड़ा गया नियम 63-ख बोर्ड को यह शक्ति प्रदत्त करता है कि वह प्रस्ताव पारित करके, समिति को निलंबित/बर्खास्त कर दे, और उसके स्थान पर नियमित समिति के निर्वाचित होने तक, तदर्थ समिति को, या प्रबंधक/प्रबंधकों को निलंबित/बर्खास्त समिति के स्थान पर नियुक्त करे । इस याचिका में संविवाद के संबंध में नियम 63-ख का उल्लेख किए जाने की आवश्यकता है जो इस प्रकार है :–

> "बोर्ड किसी गुरुद्वारा प्रबंधक समिति को प्रस्ताव द्वारा निलंबित/पर्यवसित कर सकेगा और उसके स्थान पर नियमित समिति के निर्वाचित होने तक तदर्थ समिति या प्रबंधक/प्रबंधकों को नियुक्त कर सकेगा यदि बोर्ड का यह समाधान हो जाता है कि समिति इस अधिनियम और इसके अधीन बनाए गए नियमों के अनुसरण में अपने कृत्यों और जिम्मेदारियों को निभाने में असफल रही है यदि विशेषतः समिति निम्नलिखित कृत्यों और जिम्मेदारियों को निभाने में असफल रही हो, अर्थात् –
>
> (i) 15 मार्च तक वार्षिक बजट को पास कराने और पेश करने के संबंध में अधिकथित नियमों का अनुपालन न किया जाना ;

(ii) बोर्ड को किए गए अभिदाय के संबंध में अधिकथित अपेक्षाओं का अननुपालन ;

(iii) गुरुद्वारे के लेखा के रख-रखाव में गंभीर अनियमितताएं जिनमें गबन, गुरुद्वारे की निधियों और संपत्ति का दुरुपयोग, जैसाकि लेखा परीक्षा पार्टी द्वारा दर्शाया जाए ;

(iv) गुरुद्वारे की संपत्ति का कुप्रबंधन और गुरुद्वारे के भवनों, दुकानों, मैदानों, भूमियों आदि को किराए पर देने के संबंध में भ्रष्ट आचरण ;

(v) प्रांतीय बोर्ड द्वारा गुरुद्वारे के लेखा रखने और गुरुद्वारा के सामान्य प्रशासन संबंधी कार्यों के प्रकाशन आदि के संबंध में बोर्ड द्वारा समय-समय पर जारी किए गए अनुदेशों और दिशानिर्देशों का अनुपालन न करना ।"

2. याची सिख धर्म में विश्वास रखते हैं और सिख गुरुओं तथा गुरु ग्रंथ साहिब में विश्वास रखते हैं तथा केश रखते हैं । याचियों ने यह दावा किया है कि वे 1975 के नियम 5 के अंतर्गत रजिस्ट्रीकृत वोटर हैं और उन्होंने समिति के निर्वाचन में भाग लिया है । याची 1975 के नियमों के नियम 63-ख से व्यथित हुए हैं तथा उपरोक्त नियम को चुनौती देते हुए याचिका में दिए गए आधारों पर यह याचिका प्रस्तुत की गई है । याचियों ने याचिका में किए गए प्रकथनों के आधार पर निम्नलिखित अनुतोषों की ईप्सा की है :–

(i) जम्मू-कश्मीर सिख गुरुद्वारा और धार्मिक विन्यास नियम, 1975, जैसा कि वह आज तक अद्यतन है, का नियम 63-ख संविधान के अधिकारातीत होने के कारण अभिखंडित करते हुए उत्प्रेषण रिट जारी की जाए,

(ii) प्रत्यर्थियों को परमादेश रिट के माध्यम से 1975 के नियमों के नियम 63-ख पर कार्य न करने या उपरोक्त नियम 63-ख के अधीन शक्ति का प्रयोग न करने का आदेश पारित किया जाए ।

(iii) मामले के तथ्यों और हालातों को देखते हुए, कोई अन्य रिट, आदेश या निदेश, जो उपयुक्त और उचित समझे, जारी किया जाए ।

3. प्रथमतः याचिका इस आधार पर तैयार की गई है कि चूंकि

समितियों का निर्वाचन निर्वाचकगण द्वारा अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के अधीन किया गया है, इसलिए बोर्ड को विधितः निर्वाचित समितियों को, केवल इस आधार पर कि वह बोर्ड समितियों से बना है और साधारण सिख द्वारा निर्वाचित नहीं है, निर्वाचित समिति को निलंबित करने और बर्खास्त करने की शक्ति नहीं दी जा सकती । यह कहा गया है कि अधिनियम की धारा 3 के अंतर्गत समितियां बोर्ड के सदस्यों का निर्वाचन करती हैं और फिर बोर्ड पदाधिकारियों को चुनता है । यह दलील दी गई है कि चूंकि बोर्ड, स्वयं समितियों द्वारा बनाया गया है इसलिए उसे किसी भी इस स्रोत से बनने वाली समितियों को बर्खास्त करने की शक्ति नहीं दी जा सकती । याचिका में दूसरा आधार यह भी लिया गया है कि नियम 63-ख अधिनियम की धारा 19 की परिधि और क्षेत्र से वहां तक परे हैं जहां तक धारा 19 सरकार या नियम बनाने वाले प्राधिकारी को ऐसा नियम बनाने के लिए सशक्त नहीं करती, जैसा कि याचिका में आक्षेपित किया गया है । इस बात पर बल दिया गया है कि नियम बनाने वाले प्राधिकारी ने, अपनी अधिकारिता के बाहर जाकर नियम 63-ख को बनाया है, अतः नियम अधिनियम के अधिकारातीत है । 1975 के नियमों का नियम 63-ख संविधान के, जहां तक बोर्ड को अनिर्देशित और मनमानी शक्तियां प्रदत्त करता है, अनुसार भी अधिकारातीत है । यह भी दर्शाया गया है कि बोर्ड को मर्जी और सनक से नियमों में मार्गदर्शन करने वाले सिद्धान्त अधिकथित किए बिना सम्यक्तः गठित की गई समिति को निलंबित करने या बर्खास्त करने की शक्ति दी गई है । यह भी कहा गया है कि अधिनियम की धारा 19(1) नियम बनाने वाले प्राधिकारी को (इस अधिनियम के प्रयोजन को पूरा करने के लिए) नियम बनाने की शक्ति प्रदत्त करता है और चूंकि 1975 के नियमों के अंतर्गत बनाया गया नियम 63-ख, इस अधिनियम के प्रयोजनों को पूरा नहीं करता है, इसलिए नियम अधिनियम की धारा 19 के विपरीत है । प्रत्यर्थी बार-बार सुनवाई स्थगित करने और अवसर देने के बावजूद जवाब/प्रति-शपथपत्र दाखिल करने नहीं आए । प्रत्यर्थियों का प्रति-शपथपत्र फाइल करने का अधिकार बहुत पहले तारीख 31 अगस्त, 2006 को बन्द किया जा चुका है अर्थात् याचिका सुनवाई के लिए मंजूर किए जाने के लगभग तीन वर्ष वाद बन्द किया जा चुका है ।

4. सुना गया और विचार किया गया ।

5. जैसा कि बताया गया है कि यह अधिनियम, आरम्भतः जम्मू-

कश्मीर राज्य में, सिख गुरुद्वारों और उनकी सम्पत्ति, चाहे जहां भी स्थित हों, के अच्छे प्रशासन के लिए अधिनियमित किया गया था । विधान-मंडल ने आशयित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए, गुरुद्वारों और उनकी संपत्तियों के प्रबंधन और प्रशासन के लिए बहुस्तरीय ढांचा बनाया है । ऐसा प्रयास किया गया था कि नियंत्रण और संतुलन बनाया जाए जिससे कि अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों में दिए गए कर्तव्यों को परिधि में रहकर प्रत्येक स्तर पर कार्यों का प्रशासनिक ढांचा हो । बहुस्तरीय व्यवस्था के लाभों के लिए इस बात पर बल दिए जाने की आवश्यकता नहीं है कि प्रबंध/प्रशासन का प्रत्येक खंड इस तथ्य के साथ प्रत्येक क्षेत्र में कार्य करे कि एक ऐसा निकाय जो उसके कार्यों की निगरानी करे और यदि इससे विचलन हो तो अधिनियम के अधीन ढांचा इसे सही दिशा में ले आए और यदि यह इस अधिनियम के उद्देश्यों और नियमों का पालन नहीं करेगा तो वह उसे हटा सकेगा और अपनी पसन्द के निर्वाचन तक अस्थाई रूप में व्यक्तियों के अन्य निकाय द्वारा प्रतिस्थापित कर सकेगा । धारा 3(2) के अधीन बोर्ड एक निगमित निकाय है, इसका सास्वत उत्तराधिकार है, एक सामान्य मुद्दा है और उस पर वाद लाया जा सकता है और वह वाद लाने के लिए सक्षम है । जैसा कि धारा 5 में अधिकथित किया गया है कि बोर्ड अपने गठन की तारीख से पांच वर्ष की नियत अवधि तक कार्य करेगा । अधिनियम की धारा 9 के अधीन बोर्ड इस बात को सुनिश्चित करने के लिए वैधानिक रूप से दायित्वाधीन है कि प्रत्येक समिति, गुरुद्वारा या गुरुद्वारों की संपत्ति और आय को अधिनियम और/या उसके अधीन बनाए गए उपबंधों के अनुसरण में गुरुद्वारा या गुरुद्वारों की संपत्ति और आय का हिसाब रखा जाए धारा 9 बोर्ड को अधिनियम के अधीन निर्वाचित सभी समितियों के सामान्य प्रशासन/अधीक्षण की शक्ति प्रदत्त करती है । दूसरी ओर अधिनियम की धारा 141 के अधीन किसी समिति को अपने प्रबंध के अधीन गुरुद्वारे या गुरुद्वारे की सभी संपत्तियों और आय, चाहे किसी भी प्रकार की हो, नियंत्रण करने की शक्ति होगी । समिति अपने नियंत्रण में आने वाले गुरुद्वारे या गुरुद्वारों में होने वाली रस्मों और धार्मिक समारोहों का भी उचित संप्रेक्षण करेगी । समिति ऐसे सभी उपाय करने के लिए सशक्त होगी, जो वह गुरुद्वारा/गुरुद्वारों के उचित प्रबंध सुनिश्चित करने और संपत्ति, आय और विन्यास के दक्षतापूर्ण प्रशासन के लिए आवश्यक समझे । अधिनियम के अध्याय 2 और 3 के परिशीलन पर यह प्रकट होता है कि समिति अपने नियंत्रणाधीन गुरुद्वारे/गुरुद्वारों की संपत्तियों, आयों और विन्यासों के दक्षतापूर्ण प्रशासन के लिए जिम्मेदार है । बोर्ड में, इस

अधिनियम के उपबंधों के अधीन सभी समितियों के सामान्य प्रशासन, अधीक्षण की शक्तियां निहित की गई हैं । अतः यह बोर्ड को सुनिश्चित करना है कि उसके अधीक्षण/नियंत्रण में आने वाली समिति, विधि और अधिनियम की मूल भावना के अनुसार अपने कर्तव्यों और कार्यों का निर्वाहन करे । इसलिए, याचिका में दर्शाया गया यह आधार कि समितियां बोर्ड से अधिक शक्तिशाली हैं और समितियों को बर्खास्त करने और निलंबित करने की शक्ति बोर्ड में निहित नहीं है, अविधिमान्य है । बोर्ड में 1975 के नियमों के नियम 63-ख में विहित परिस्थितियों में, समिति को निलंबित करने या बर्खास्त करने की शक्ति के बारे में न तो कोई उपबंध है और न ही कोई कानूनी अनौचित्यता है । उस रीति का जिसमें समितियों और बोर्ड के अस्तित्व में आएंगी अधिनियम या क्रमशः या समितियों द्वारा इसके अधीन बनाए गए नियमों के अधीन प्रदत्त शक्तियों का कोई संबंध नहीं है । याचिकाकर्ता के विद्वान् काउंसेल की इस दलील से विसम्मति प्रकट नहीं की जा सकती कि समितियां 1975 के नियमों के नियम 2 के अर्थ में, सभी सिखों से बने निर्वाचकगणों द्वारा सीधे निर्वाचित की जाती हैं और इस प्रकार यह जनादेश द्वारा बनता है जबकि बोर्ड एक सीधा निर्वाचित निकाय नहीं है, अर्थात् यह सिख निर्वाचकगणों द्वारा निर्वाचित सदस्यों द्वारा नहीं बनता है । इस अधिनियम के अधीन सृजित निकायों की शक्तियां प्रत्यक्षतया या अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचन की रीति से समाप्त नहीं की जा सकतीं । बोर्ड और समितियां अपने-अपने क्षेत्रों में कार्य करती हैं और अविवादित रूप से अधिक्रम में बोर्ड का स्थान ऊपर है क्योंकि बोर्ड में समितियों के नियंत्रण और अधीक्षण की शक्तियां निहित हैं ।

6. याचिका में दलील दिया गया अगला आधार नियम बनाने वाले प्राधिकारी की सक्षमता से संबंधित है कि क्या अधिकारी अधिनियम की धारा 19 के अधीन उसको प्रदत्त नियम बनाने की शक्ति के अधीन याचिका में आक्षेपित नियम बना सकता है । इस दलील में कोई बल नहीं है और यह याचिकाकर्ता को याचिका को सफल बनाने में कोई सहायता नहीं करती । धारा 19(1) निःसंदेह नियम बनाने की शक्ति को वहां तक निर्बंधित करती है, जहां तक इसका आशय के अधिनियम ''उद्देश्यों को कार्यांवित करने'' के लिए आवश्यक हों । धारा 19(2) केवल विश्लेषणात्मक है न कि उन विषयों को निःशेष करने वाली जिनके बारे में नियम उपबंध करते हैं । आधार यह है कि विरचित नियम को अधिनियम के प्रयोजनों के लिए अनिवार्यतः कार्यान्वित किया जाना चाहिए । यह दोहराया गया है कि

अधिनियम का प्रयोजन गुरुद्वारों के प्रबंध और प्रशासन और पारदर्शिता के लिए और उनकी संपत्ति और उनके प्रबंधन के लिए और उनके साधारण कार्यों के लिए है । नियम 63-ख समितियों के कार्यों की निगरानी के लिए उपबंध करता है । बोर्ड में अर्थात् अधिनियम की धारा 9 के अधीन सभी समितियों के ऊपर ''साधारण प्रशासन और अधीक्षण'' की शक्ति निहित की गई है और नियम 63-ख के अधीन समिति को निलंबित करने या बर्खास्त करने और उसके स्थान पर तदर्थ समिति, जब तक नियमित समिति निर्वाचित नहीं हो जाती, नियुक्त करने की शक्ति प्रदत्त करती है, यदि बोर्ड का यह समाधान हो जाता है कि समितियों ने इस अधिनियम और इसके अधीन बनाए गए नियमों के अनुसार अपने कर्तव्यों और जिम्मेदारियों का निर्वहन नहीं किया है । नियम 63-ख (i से v) उन परिस्थितियों का उल्लेख करता है जिसमें प्रदत्त शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है । अतः नियम 63-ख के अधीन बोर्ड को दी गई शक्ति, अधिनियम की धारा 9 के अधीन बोर्ड में निहित की गई शक्ति का अभिन्न अंग है । नियम 63-ख को, इस प्रकार देखने पर प्रतीत होता है कि यह सरकार की नियम बनाने की परिधि में आता है, जिसके लिए अधिनियम की धारा 19 के अधीन सरकार को सक्षम बनाया गया है । अतः याचिका में आक्षेपित नियम अधिनियम की धारा 19 के अधीन प्रदत्त शक्ति के उचित प्रयोग में बनाया गया है ।

7. वह आधार जिसे याचिका में दर्शाया गया है और जिस पर बहस के दौरान याचिकाकर्ता के विद्वान् काउंसेल ने बल दिया है, इस आशय का है कि नियम 63-ख को समाप्त कर दिया जाना चाहिए क्योंकि यह बोर्ड को अनिर्देशित और मनमानी करने की शक्ति देता है जो स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है । नियम 63-ख बोर्ड को प्रदत्त निलंबन/हटाने की शक्ति को निर्बंधित करता है और आक्षेपित नियम की औचित्यता प्रदान करने वाली दशाओं/परिस्थितियों का उल्लेख करता है । ऐसा नहीं है कि बोर्ड जब चाहे तब मनमानी करते हुए सनक में समिति को निलंबित या बर्खास्त कर दे । यह शक्ति केवल तभी प्रयुक्त की जानी चाहिए जब बोर्ड को, समिति के बारे में यह समाधान हो जाए कि वह, इस अधिनियम और इसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों के अधीन उसे सौंपे गए कृत्यों और उत्तरदायित्वों को पूरा करने में विफल रही है । विशेषतया बोर्ड समिति को निलंबित/बर्खास्त करने का आदेश तभी करेगा जब समिति अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों द्वारा उसको सौंपे गए कृत्यों और

उत्तरदायित्वों को निभाने में असफल रही हो । दृष्टांत के रूप में, यदि समिति नियत तारीख तक बजट पास नहीं करती है, बोर्ड को अभिदाय देने में असफल रहती है, गुरुद्वारे के लेखों के रख-रखाव में भारी अनियमितताएं बरतती है, या गुरुद्वारे की निधियों और संपत्तियों के बारे में लेखा परीक्षा पार्टी का यह मत है कि गबन या दुर्विनियोग किया गया है या गुरुद्वारे के संपत्ति के रख-रखाव में कुप्रबंध किया गया है या समिति बोर्ड के अनुदेशों या निदेशों की अवहेलना करती है, तो बोर्ड समिति को निलंबित या बर्खास्त कर सकेगा । अतः नियम 63-ख के अधीन प्रदत्त शक्ति को, विस्तृत और मनमाने ढंग से प्रयोग की जा सकने वाली या अनिर्देशित ढंग से प्रयोग की जा सकने वाली नहीं, माना जा सकता । आक्षेपित नियम भी, नियम के अधीन प्रदत्त शक्ति का प्रयोग किए जाने के लिए दिशानिर्देश निर्धारित करता है । याचियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलील पर विचार किए जाने पर यदि 1975 के नियमों के नियम 63-ख को वैध और अधिकार क्षेत्र में मान लिया जाए तो, बोर्ड द्वारा समिति को निलंबित या बर्खास्त करके उसके स्थान पर तदर्थ समिति या प्रबंधक/प्रबंधकों को नियुक्त किए जाने पर भी उचित आदेश करने की आवश्यकता पर विचार किए जाने की आवश्यकता है । जैसा कि अब तक स्पष्ट हो चुका है कि नियम 63-ख बोर्ड को विशेष ढंग से और विशेष परिस्थितियों में नियम के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करने के लिए सशक्त करता है । नियम की यह आवश्यकता है कि इस नियम के अधीन प्रदत्त शक्ति का प्रयोग प्रस्ताव द्वारा किया जाना चाहिए । यह स्पष्ट है कि जब कभी भी ऐसी परिस्थितियां आएं, जिनमें अधिनियम और 1975 के नियमों के नियम 63 के अधीन शक्ति का प्रयोग करना आवश्यक प्रतीत होता हो, तब मामले को बोर्ड के समक्ष रखा जाना चाहिए न कि किसी विशेष पदाधिकारी या बोर्ड के सदस्य के समक्ष । ''प्रस्ताव'' पद के प्रयोग में यह विवक्षित है कि विषय पर बोर्ड की सभा में चर्चा । विचार-विमर्श किया जाएगा । जब एक बार मामले पर चर्चा/विचार-विमर्श हो गया हो, तो बोर्ड नियम के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए समिति को निलंबित या बर्खास्त करके उसके स्थान पर तदर्थ समिति या प्रबंधक/प्रबंधकों को नियुक्त कर सकेगा । वह तरीका या ढंग जिसमें शक्ति का प्रयोग किया जाएगा, इस निष्कर्ष पर निर्भर करता है कि समिति को निलंबित या बर्खास्त करके तथा उसके स्थान पर एक तदर्थ समिति या प्रबंधक/प्रबंधकों की नियुक्ति का उद्देश्य, नियमों के नियम 52 में यथाअधिकथित बोर्ड के सदस्यों द्वारा समर्थित, आदेश द्वारा किया जाना चाहिए । बोर्ड द्वारा शक्ति को प्रयुक्त

करने का कार्य तभी किया जाना चाहिए जब नियम में उल्लिखित परिस्थितियां शक्ति के प्रयोग को आवश्यक बनाती हों । यह स्पष्ट है कि नियम 63-ख के अधीन शक्ति का प्रयोग करने से पूर्व, बोर्ड की यह संतुष्टि होनी चाहिए कि उसके सम्मुख प्रकट किया गया मामला उसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए है, जिस परिस्थिति/परिस्थितियों में नियमों के अधीन उसे शक्ति का प्रयोग अपेक्षित है ।

8. उपरोक्त चर्चा के उपरांत यह निष्कर्ष निकलता है कि समिति को निलंबित/बर्खास्त करना और उसके स्थान पर विधिवत नई समिति के निर्वाचित होने तक, तदर्थ समिति या प्रबंधक/प्रबंधकों को नियुक्त करना उचित है जिससे यह प्रकट हो कि अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के अंतर्गत उपबंधित मामलों में, कुछ करने के लिए विस्तृत कारण दिए जाने चाहिए जिससे कि सक्षम प्राधिकारी समिति के निलंबन/बर्खास्तगी के निर्णय/प्रस्ताव पर विचार करके स्थिति का मूल्यांकन करने की स्थिति में हो और उन कारणों का उल्लेख कर सके कि क्या विधिवत निर्वाचित समिति के विरुद्ध त्वरित कार्रवाई की जाए ।

9. चर्चा किए गए आधारों पर, 1975 के नियमों का नियम 63-ख है, और इसे अधिनियम की धारा 19 के अधीन प्रदत्त शक्तियों के उचित प्रयोग में विरचित नियम 63-ख विधिमान्य अभिनिर्धारित किया जाता है । बोर्ड को प्रदत्त की गई शक्ति बोर्ड द्वारा केवल तभी प्रयुक्त की जाएगी जब यह युक्तियुक्त प्रस्ताव/आदेश के द्वारा प्रयुक्त की जाए ।

10. तद्नुसार याचिका का निपटान किया जाता है ।

रिट याचिका का तद्नुसार निपटारा किया गया ।

भ./मह.

———

न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

बनाम

हरज्ञान सिंह और अन्य

तारीख 16 सितम्बर, 2012

न्यायमूर्ति महेश चन्द्र शर्मा

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 163-क और 173 – दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – बीमा कंपनी द्वारा अपने दायित्व से इनकार – जहां बीमा कंपनी बीमाकृत के किसी दोष के कारण अपने दायित्व से भले ही इनकार करे तथापि, वह प्रतिकर का संदाय करने के लिए दायित्वाधीन होती है – तथापि, वह पालिसी की शर्तों के भंग के आधार पर बीमाकृत से ऐसी धनराशि वसूल कर सकती है ।

अपीलार्थी बीमा कंपनी की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 5867/2011 एवं क्लेमेन्ट्स हरज्ञान सिंह व अन्य की ओर से उपरोक्त वर्णित क्रास आब्जेक्शन संख्या 83/2012 मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, बयाना द्वारा पारित निर्णय दिनांक 8 जून, 2011 के विरुद्ध प्रस्तुत किए गए हैं, जिनके द्वारा प्रत्यर्थीगण-क्लेमेन्ट्स को 2,88,500/- रुपए क्षतिपूर्ति राशि दिलाए जाने का आदेश दिया गया है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अपीलार्थी बीमा कंपनी के विद्वान् अधिवक्ता का तर्क है कि इस मामले में बीमा कम्पनी का कोई दायित्व क्षतिपूर्ति राशि की अदायगी के संबंध में नहीं बनता है । उनका तर्क है कि विद्वान् अधिकरण ने पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से विवेचन व विश्लेषण नहीं कर अपना निर्णय पारित किया है, जो विधिसम्मत नहीं है । न्यायालय ने उभयपक्ष के विद्वान् अधिवक्तागण के तर्कों पर मनन किया । आक्षेपित निर्णय का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया । आक्षेपित निर्णय का अवलोकन करने के उपरान्त न्यायालय यह पाता है कि विद्वान् अधिकरण ने पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से विवेचन व विश्लेषण करने के उपरान्त अपना निर्णय पारित किया है, जिसमें हस्तक्षेप किए जाने का कोई आधार नहीं है । अतः अपीलार्थी बीमा कंपनी की ओर से प्रस्तुत उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील एवं आपत्तिकर्तागण-क्लेमेन्ट्स की ओर से प्रस्तुत उपरोक्त वर्णित क्रास आब्जेक्शन निरस्त किए जाते हैं । मोटर दुर्घटना दावा

अधिकरण (ए. डी. जे. संख्या 1), बयाना द्वारा पारित निर्णय दिनांक 8 जून, 2011 की पुष्टि की जाती है । अपील के साथ संलग्न स्थगन प्रार्थनापत्र भी निरस्त किया जाता है । (पैरा 5, 7 और 8)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2009] 2009 ए. सी. 2494 :
नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम **भीमा वगैरह** ; 2

[2006] 2006 की प्रथम अपील सं. 827, तारीख 4 अगस्त, 2007 को विनिश्चित :
यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड बनाम
अनुभाई गोपीचंद ठाकरे व अन्य ; 5

[2005] 2005 (4) डब्ल्यू. एल. सी. (राज.) 769 :
रघुपति सिंह बनाम **कालू वगैरह** । 2

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2011 की एकलपीठ सिविल विविध अपील संख्या 5867.

2012 के क्रास आब्जेक्शन सं. 83 में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा तारीख 8 जून, 2011 को पारित आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री ऋषिपाल अग्रवाल

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री संदीप माथुर

न्यायमूर्ति महेश चन्द्र शर्मा – अपीलार्थी बीमा कंपनी की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 5867/2011 एवं क्लेमेन्ट्स हरज्ञान सिंह व अन्य की ओर से उपरोक्त वर्णित क्रास आब्जेक्शन संख्या 83/2012 मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण (ए. डी. जे. संख्या 1), बयाना द्वारा पारित निर्णय दिनांक 8 जून, 2011 के विरुद्ध प्रस्तुत किए गए हैं, जिनके द्वारा प्रत्यर्थीगण-क्लेमेन्ट्स को 2,88,500/- रुपए क्षतिपूर्ति राशि दिलाए जाने का आदेश दिया गया ।

2. प्रकरण के तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं कि प्रत्यर्थीगण-क्लेमेन्ट्स ने दुर्घटना में रामअवतार की मृत्यु होने से मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण (ए. डी. जे. संख्या 1) बयाना के समक्ष क्लेम याचिका प्रस्तुत की, जिसके

अन्तर्गत दिनांक 23 अक्तूबर, 2000 को अप्रार्थी संख्या 1 सुरेश से प्रार्थीगण को प्रतिकर के रूप में 2,88,500/- रुपए मय प्रार्थनापत्र की दिनांक से वसूली तक 12 प्रतिशत वार्षिक ब्याज दर सहित दिलाने का आदेश दिया तथा कोई अंतरिम रूप से प्रतिकर की राशि भुगतान की गई हो तो उसे समायोजित करने का आदेश दिया गया । बीमा कम्पनी को इस राशि को देने हेतु दायी नहीं मानते हुए उसके खिलाफ याचिका खारिज की गई । उक्त आदेश से व्यथित होकर क्लेमेन्ट्स हरज्ञान सिंह वगैरह के द्वारा एकलपीठ सिविल विविध अपील संख्या 371/2001 इस उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई तथा विपक्षी संख्या 1 सुरेश द्वारा भी एकलपीठ सिविल विविध अपील संख्या 234/2001 प्रस्तुत की गई । उक्त अपीलों पर सुनवाई करने के उपरान्त उच्च न्यायालय के आदेश दिनांक 27 जनवरी, 2011 के द्वारा आंशिक तौर पर स्वीकार कर अधिकरण द्वारा पारित पंचाट दिनांक 23 अक्तूबर, 2000 को प्रतिकर की अदायगी के सम्बन में वाहन बीमा कम्पनी न्यू इंडिया इंश्योरेंस कम्पनी लिमिटेड की जिम्मेदारी के बिन्दु की सीमा तक अपास्त करते हुए अधिकरण को निर्देश दिया गया कि वह उभय पक्षों की ओर से प्रस्तुत **रघुपति सिंह** बनाम **कालू वगैरह**[1], **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **भीमा वगैरह**[2] न्यायिक दृष्टांतों में दिए गए मार्गदर्शन के प्रकाश में पक्षकारों को सुनवाई का अवसर प्रदान करते हुए उक्त बिन्दु के संबंध में नए सिरे से अपना निष्कर्ष निकालेगा ।

3. विद्वान् अधिकरण ने उक्त निर्देश पर पुनः सुनवाई करते हुए दिनांक 8 जून, 2011 को अपना निर्णय पारित करते हुए निम्न आदेश पारित किया :–

> "प्रार्थीगण, अप्रार्थीगण सं. 1 व 2 से संयुक्ततः एवं पृथक्तः प्रतिकर के रूप में 2,88,500/- रुपए का भुगतान प्राप्त करेंगे तथा पूर्व निर्णय के आदेशानुसार ही इस राशि पर प्रार्थनापत्र की दिनांक से वसूली तक 12 प्रतिशत वार्षिक दर से ब्याज पाने के अधिकारी होंगे । कोई प्रतिकर राशि अंतरिम प्रतिकर के रूप में भुगतान की गई हो तो उसे समायोजित किया जावे । अप्रार्थी सं. 2 उक्त अवार्ड राशि भुगतान करता है तो भुगतान किए जाने की दिनांक से ता वसूली तक 12 प्रतिशत वार्षिक ब्याज दर से ब्याज सहित अप्रार्थी संख्या एक से

---

[1] 2005 (4) डब्ल्यू. एल. सी. (राज.) 769.

[2] 2009 ए. सी. 2494.

वसूल करने के अधिकारी होंगे ।''

4. उक्त निर्णय से व्यथित होकर अपीलार्थी बीमा कंपनी की ओर से उपरोक्त वर्णित एवं क्लेमेन्ट्स की ओर से उपरोक्त वर्णित आपत्तियां प्रस्तुत की गई हैं ।

5. अपीलार्थी-बीमा कंपनी के विद्वान् अधिवक्ता का तर्क है कि इस मामले में बीमा कम्पनी का कोई दायित्व क्षतिपूर्ति राशि की अदायगी के संबंध में नहीं बनता है । उनका तर्क है कि विद्वान् अधिकरण ने पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से विवेचन व विश्लेषण नहीं कर अपना निर्णय पारित किया है, जो विधिसम्मत नहीं है । उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान बाम्बे हाईकोर्ट की औरंगाबाद पीठ द्वारा **यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड** बनाम **अनुभाई गोपीचंद ठाकरे व अन्य**[1] में पारित निर्णय की ओर आकर्षित किया ।

6. जबकि आपत्तिकर्तागण-क्लेमेन्ट्स के विद्वान् अधिवक्ता का तर्क है कि बीमा कम्पनी को क्षतिपूर्ति राशि की अदायगी के लिए जिम्मेदार ठहराया जावे ।

7. मैंने उभयपक्ष के विद्वान् अधिवक्तागण के तर्कों पर मनन किया । आक्षेपित निर्णय का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया । आक्षेपित निर्णय का अवलोकन करने के उपरान्त मैं यह पाता हूं कि विद्वान् अधिकरण ने पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से विवेचन व विश्लेषण करने के उपरान्त अपना निर्णय पारित किया है, जिसमें हस्तक्षेप किए जाने का कोई आधार नहीं है ।

8. अतः अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से प्रस्तुत उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील एवं आपत्तिकर्तागण-क्लेमेन्ट्स की ओर से प्रस्तुत उपरोक्त वर्णित क्रास आब्जेक्शन निरस्त किए जाते हैं । मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण (ए. डी. जे. संख्या 1), बयाना द्वारा पारित निर्णय दिनांक 8 जून, 2011 की पुष्टि की जाती है । अपील के साथ संलग्न स्थगन प्रार्थनापत्र भी निरस्त किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

मही./मह.

---

[1] 2006 की प्रथम अपील सं. 827, तारीख 4 अगस्त, 2007 को विनिश्चित ।

हिमाचल प्रदेश राज्य

बनाम

अछरू राम (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि

तारीख 16 जुलाई, 2010

न्यायमूर्ति सुरजीत सिंह

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 23, नियम (1) और (4)(ख) – नोटोर नियम के अधीन भूमि का प्रदाय – पट्टा जारी किया जाना – पट्टा रद्द करने के लिए वाद – पूर्व वाद सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23 के नियम 1 के अधीन वापस लिए जाने के रूप में खारिज किया जाना – परिसीमा काल के पश्चात् उसी वाद हेतुक पर नया वाद फाइल करना – वाद में अनुतोष भी वही मांगा जाना – वाद ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है – पूर्व-न्याय का सिद्धान्त लागू होगा ।

वादी-प्रत्यर्थी अछरू राम को वर्ष 1974 में नोटोर नियमों के अधीन पांच बीघा भूमि प्रदत्त की गई थी । उसके पक्ष में पट्टा जारी किया गया था । उसके अगले ही वर्ष भगवान दास (अब मृतक) द्वारा एक अपील उपायुक्त के समक्ष फाइल की गई थी जिसमें यह अभिकथित किया गया था कि रुपए 2000/- से अधिक मासिक आय होने के कारण प्रत्यर्थी नोटोर की मंजूरी के लिए पात्र नहीं था और वह उस परिवार का सदस्य था जिसका मुखिया उसका पिता था । अपील मंजूर कर ली गई थी और प्रत्यर्थी के पक्ष में मंजूर नोटोर खंडित कर दिया गया था । अछरू राम ने पुनः अपील और पुनरीक्षण फाइल किया किन्तु वह सफल नहीं हो सका । राज्य द्वारा जिला न्यायाधीश के न्यायालय में फाइल की गई अपील खारिज कर दी गई थी । यद्यपि जिला न्यायाधीश के समक्ष पूर्वतर वाद को वापस लिए जाने के कारण, वाद विवर्जित होने के संबंध में विनिर्दिष्ट आधार नहीं लिया गया था किन्तु पूर्व-न्याय से संबद्ध विवाद्यक पर निष्कर्ष को चुनौती दी गई थी । अतः यह अपील फाइल की गई । अपील का तद्नुसार निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह विवादित नहीं है कि पहला वाद भी उसी वाद हेतुक पर आधारित था जिस पर कि वर्तमान है और दोनों दावों में दावाकृत

अनुतोष भी वही है । पूर्वतर वाद में के वादपत्र की प्रति अभिलेख पर है जो प्रदर्श डी. ई. है । वादपत्र को पढ़ने पर यह प्रतीत होता है कि पूर्वतर वाद में दावाकृत अनुतोष वही है जो कि इस वाद में चाहा गया है और वाद हेतुक भी वही है । कथन प्रदर्श डी. जी. से यह प्रतीत होता है कि जब पहले वाला वाद वापस लेने का कथन किया गया था तब उसी वाद हेतुक पर नया वाद फाइल करने की मंजूरी नहीं चाही गई थी । पूर्वतर वाद को वापस लिए जाने के रूप में खारिजी आदेश को प्रदर्श डी. एफ. की प्रति में भी यह उल्लिखित नहीं है कि वाद प्रत्यर्थी को कोई मंजूरी (रियायत) दी गई थी । उपरोक्त परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए विधि के सारवान् प्रश्न सं. 1 का उत्तर प्रतिवादी-अपीलार्थी के पक्ष में दिया जाता है और यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि वाद, जिसमें अपील की गई है, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23, नियम 1 और नियम (4)(ख) के अधीन काल-वर्जित है । चूंकि वादी, उपरोक्त अभिनिर्धारित रीति के अनुसार दावा फाइल करने से विवर्जित था, इसलिए विधि का दूसरा सारवान् प्रश्न जिस पर अपील फाइल की गई है, विसंगत हो गया है । उपरोक्त चर्चा के परिणामस्वरूप और विधि के सारवान् प्रश्न सं. 1 के उत्तर के परिणामस्वरूप अपील स्वीकार की जाती है और निचले दोनों न्यायालयों के निर्णय और डिक्रियां अपास्त की जाती हैं और वादी-प्रत्यर्थी का वाद खारिज किया जाता है । (पैरा 8, 9, 10 और 11)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 1999 की आर. एस. एस. सं. 38.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री रमेश ठाकुर, सहायक महाधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से श्री रमाकान्त शर्मा, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति सुरजीत सिंह – प्रतिवादी अर्थात् हिमाचल प्रदेश राज्य की ओर से फाइल नियमित द्वितीय अपील विधि के निम्नलिखित सारवान् प्रश्नों पर ग्रहण की गई है :–

> "1. क्या वादी का यह वाद इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए ग्रहण किए जाने योग्य नहीं था कि ऐसा ही एक वाद पहले भी इसी वाद हेतुक पर फाइल किया गया था जो कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23, नियम 1 के अधीन प्रत्याहृत कर लिए जाने के कारण खारिज कर दिया गया था ?

2. क्या वादी का वाद परिसीमा की अवधि के भीतर नहीं था क्योंकि उपायुक्त, प्रभाग आयुक्त और वित्तीय आयुक्त ने क्रमशः तारीख 21 मई, 1984, 26 जून, 1985 और 26 नवम्बर, 1985 को दिया गया अनुदान रद्द कर दिया था और तारीख 25 फरवरी, 1988 को वाद फाइल किया गया था जबकि परिसीमा की अवधि एक वर्ष थी ?

3. क्या आक्षेप करने का अधिकार एक वैयक्तिक अधिकार है और इसलिए आक्षेपकर्ता की मृत्यु के उपरान्त विधिक प्रतिनिधियों को पक्षकार बनाने की आवश्यकता नहीं है ?"

2. वादी-प्रत्यर्थी अछरू राम को वर्ष 1974 में नोटोर नियमों के अधीन पांच बीघा भूमि प्रदत्त की गई थी । उसके पक्ष में पट्टा जारी किया गया था । उसके अगले ही वर्ष भगवान दास (अब मृतक) द्वारा एक अपील उपायुक्त के समक्ष फाइल की गई थी जिसमें यह अभिकथित किया गया था कि रुपए 2000/- से अधिक मासिक आय होने के कारण प्रत्यर्थी नोटोर की मंजूरी के लिए पात्र नहीं था और वह उस परिवार का सदस्य था जिसका मुखिया उसका पिता था । अपील मंजूर कर ली गई थी और प्रत्यर्थी के पक्ष में मंजूर नोटोर खंडित कर दिया गया था । अछरू राम ने पुनः अपील और पुनरीक्षण फाइल किया किन्तु वह सफल नहीं हो सका ।

3. तत्पश्चात् वादी ने एक वाद, अर्थात् 1987 का सिविल वाद सं. 6211 यह घोषणा करने के लिए फाइल किया कि उसे प्रदत्त की गई नोटोर विधिमान्य थी और उपायुक्त, प्रभाग आयुक्त और वित्त आयुक्त द्वारा उसे दिए गए अनुदान को खंडित करने के लिए पारित आदेश अवैध, शून्य और उसके अधिकारों को निष्प्रभावी करने वाले थे । उसने यह कथन करते हुए उस वाद को प्रत्याहृत कर लिया था और इसके कारण वह वाद तारीख 26 नवम्बर, 1987 को आदेश प्रदर्श डी. एफ. द्वारा प्रत्याहृत रूप में खारिज हो गया था । उसने वाद को प्रत्याहृत करने के लिए जो कथन किया था वह प्रदर्श डी. जी. है । तत्पश्चात् उसने एक और वाद भी फाइल किया जबकि उसने पिछले वाद को प्रत्याहृत करवाने के समय नया वाद फाइल करने की कोई अनुज्ञा प्राप्त नहीं की थी । उसी वाद के फलस्वरूप यह अपील फाइल की गई है । इस वाद में उसने वही घोषणाएं चाही हैं जो कि उसने पिछले वाद में भी चाही थीं ।

4. वाद का प्रत्यर्थी-अपीलार्थी द्वारा गुण-दोष के आधार पर और

कतिपय तकनीकी आधारों पर प्रतिवाद किया गया था जिनमें यह अभिवाक् भी सम्मिलित था कि वादी-प्रत्यर्थी पिछला वाद प्रत्याहृत कर लिए जाने के कारण नया वाद फाइल करने से वर्जित हो गया था । प्रत्यर्थी द्वारा आवेदन का उत्तर फाइल किया गया था, जिसमें उसने यह कथन किया कि पिछला वाद इस मंजूरी के साथ प्रत्याहृत किया गया था कि इसी वाद हेतुक पर नया वाद फाइल किया जाएगा ।

5. विचारण न्यायालय द्वारा अनेक विवाद्यक विरचित किए गए थे । उनमें से एक विवाद्यक पूर्व-न्याय से संबंधित था । विचारण न्यायालय के निर्णय से यह प्रतीत होता है कि पूर्व वाद को वापस लेने से संबंधित कथन प्रदर्श डी. जी. के माध्यम से पूर्व-न्याय के अभिवाक् का साक्ष्य द्वारा समर्थन चाहा गया था । विचारण न्यायालय ने यह विचार करते हुए अभिवचन को अस्वीकार कर दिया कि पूर्व वाद को वापस लेने से कोई फर्क नहीं पड़ता है । गुण-दोष पर आधारित विवाद्यक प्रत्यर्थी-वादी के पक्ष में पाए गए और परिणामस्वरूप वाद को डिक्री कर दिया गया था ।

6. राज्य द्वारा जिला न्यायाधीश के न्यायालय में फाइल की गई अपील खारिज कर दी गई थी । यद्यपि जिला न्यायाधीश के समक्ष पूर्वतर वाद को वापस लिए जाने के कारण, वाद विवर्जित होने के संबंध में विनिर्दिष्ट आधार नहीं लिया गया था किन्तु पूर्व-न्याय से संबद्ध विवाद्यक पर निष्कर्ष को चुनौती दी गई थी ।

7. मैंने पक्षकारों के काउंसेलों को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया ।

8. यह विवादित नहीं है कि पहला वाद भी उसी वाद हेतुक पर आधारित था जिस पर कि वर्तमान है और दोनों दावों में दावाकृत अनुतोष भी वही है । पूर्वतर वाद में के वादपत्र की प्रति अभिलेख पर है जो प्रदर्श डी. ई. है । वादपत्र को पढ़ने पर यह प्रतीत होता है कि पूर्वतर वाद में दावाकृत अनुतोष वही है जो कि इस वाद में चाहा गया है और वाद हेतुक भी वही है । कथन प्रदर्श डी. जी. से यह प्रतीत होता है कि जब पहले वाला वाद वापस लेने का कथन किया गया था तब उसी वाद हेतुक पर नया वाद फाइल करने की मंजूरी नहीं चाही गई थी । पूर्वतर वाद को वापस लिए जाने के रूप में खारिजी आदेश को प्रदर्श डी. एफ. की प्रति में भी यह उल्लिखित नहीं है कि वाद प्रत्यर्थी को कोई मंजूरी (रियायत) दी गई थी ।

9. उपरोक्त परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए विधि के सारवान् प्रश्न सं. 1 का उत्तर प्रतिवादी-अपीलार्थी के पक्ष में दिया जाता है और यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि वाद, जिसमें अपील की गई है, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23, नियम 1 और नियम (4)(ख) के अधीन काल-वर्जित है ।

10. चूंकि वादी, उपरोक्त अभिनिर्धारित रीति के अनुसार दावा फाइल करने से विवर्जित था, इसलिए विधि का दूसरा सारवान् प्रश्न जिस पर अपील फाइल की गई है, विसंगत हो गया है ।

11. उपरोक्त चर्चा के परिणामस्वरूप और विधि के सारवान् प्रश्न सं. 1 के उत्तर के परिणामस्वरूप अपील स्वीकार की जाती है और निचले दोनों न्यायालयों के निर्णय और डिक्रियां अपास्त की जाती हैं और वादी-प्रत्यर्थी का वाद खारिज किया जाता है ।

12. तद्नुसार, अपील निपटाई जाती है ।

तद्नुसार, अपील का निपटारा किया गया ।

भट./मह.

———

संसद् के अधिनियम

नोटेरी अधिनियम, 1952

(1952 का अधिनियम संख्यांक 53)[1]

[9 अगस्त, 1952]

नोटेरियों की वृत्ति को विनियमित करने के लिए अधिनियम

संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

(1) **संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारम्भ** – (1) यह अधिनियम नोटेरी अधिनियम, 1952 कहा जा सकता है ।

(2) इसका विस्तार [2]*** सम्पूर्ण भारत पर है ।

(3) यह उस [3]तारीख को प्रवृत्त होगा जो केन्द्रीय सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे ।

2. **परिभाषाएं** – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

[4]* * * * *

(ख) "लिखत" के अन्तर्गत ऐसी प्रत्येक दस्तावेज है जिसके द्वारा कोई

---

[1] इस अधिनियम का 1962 के विनियम सं. 12 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा गोवा, दमण और दीव पर ; 1963 के विनियम सं. 6 की धारा 2 और अनुसूची 1 द्वारा दादरा और नागर हवेली पर, तथा 1968 के अधिनियम सं. 26 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा पांडिचेरी पर तथा का. आ. सं. 213(अ), तारीख 16-5-1975, भारत का राजपत्र, 1975, भाग 2, अनुभाग 3(ii) द्वारा (16-5-1975 से) सिक्किम राज्य पर विस्तार किया गया ।

[2] 1968 के अधिनियम सं. 25 की धारा 2 और अनुसूची द्वारा (15-8-1968 से) "जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय" शब्दों का लोप किया गया ।

[3] 14 फरवरी, 1956 ; अधिसूचना सं. सा. का. नि. 317, तारीख 10-2-1956, भारत का राजपत्र, 1956, असाधारण, भाग 2, अनुभाग 3, पृ. 179 देखिए ।

[4] 1968 के अधिनियम सं. 25 की धारा 2 और अनुसूची द्वारा (15-8-1968 से) खंड (क) का लोप किया गया ।

अधिकार या दायित्व का सृजन, अन्तरण, उपान्तरण, परिसीमन, विस्तार, निलम्बन, निर्वापन या अभिलेखन किया गया है या किया जाना तात्पर्यित है ;

[1][(ग) "विधि व्यवसायी" से अधिवक्ता अधिनियम, 1961 (1961 का 25) के उपबंधों के अधीन किसी नामावली में प्रविष्ट किया गया कोई अधिवक्ता अभिप्रेत है ।]

(घ) "नोटेरी" से इस अधिनियम के अधीन इस रूप में नियुक्त व्यक्ति अभिप्रेत है :

परन्तु इस अधिनियम के प्रारम्भ से दो वर्ष की कालावधि के लिए इसके अंतर्गत वह व्यक्ति भी होगा जो ऐसे प्रारम्भ के पूर्व [2][परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (1881 का 26) के अधीन][3]*** नोटेरी पब्लिक नियुक्त किया गया था, और जो ऐसे प्रारम्भ के ठीक पहले, [4][भारत के किसी भाग में नोटेरी का व्यवसाय कर रहा था :

परन्तु यह और भी कि, जम्मू-कश्मीर राज्य के संबंध में उक्त दो वर्ष की कालावधि की संगणना उस तारीख से की जाएगी जिसको यह अधिनियम उस राज्य में प्रवृत्त होगा] ;

(ङ) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ;

(च) "रजिस्टर" से धारा 4 के अधीन सरकार द्वारा रखा गया नोटेरी का रजिस्टर अभिप्रेत है ;

---

[1] 1999 के अधिनियम सं. 36 की धारा 3 द्वारा (17-12-1999 से) खंड (ग) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1968 के अधिनियम सं. 25 की धारा 2 और अनुसूची द्वारा (15-8-1968 से) "या तो परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 के अधीन" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] 1968 के अधिनियम सं. 25 की धारा 2 और अनुसूची द्वारा (15-8-1968 से) "या मास्टर आफ फेकलटीज इन इंग्लैंड द्वारा" का लोप किया गया ।

[4] 1968 के अधिनियम सं. 25 की धारा 2 और अनुसूची द्वारा (15-8-1968 से) "भारत के किसी भाग में नोटेरी का व्यवसाय कर रहा था" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[1][(छ) "राज्य सरकार" से संघ राज्यक्षेत्र के संबंध में उसका प्रशासक अभिप्रेत है ।]

3. **नोटेरी नियुक्त करने की शक्ति** – केन्द्रीय सरकार, संपूर्ण भारत के लिए या उसके किसी भाग के लिए और राज्य सरकार, सम्पूर्ण राज्य के लिए या उसके किसी भाग के लिए, किन्हीं विधि व्यवसायियों को या अन्य व्यक्तियों को जिनके पास ऐसी अर्हताएं हैं जो विहित की जाएं, नोटेरी नियुक्त कर सकती है ।

4. **रजिस्टर** – (1) केन्द्रीय सरकार और प्रत्येक राज्य सरकार, ऐसे प्ररूप में, जो विहित किया जाए, उस सरकार द्वारा नियुक्त और इस अधिनियम के अधीन उसी रूप में व्यवसाय करने के हकदार नोटेरियों का एक रजिस्टर रखेगी ।

(2) ऐसे प्रत्येक रजिस्टर में जिस नोटेरी का नाम प्रविष्ट है उसके बारे में निम्नलिखित विशिष्टियां होंगी :–

(क) उसका पूरा नाम, जन्म-तिथि, निवास और कार्यालय का पता ;

(ख) रजिस्टर में उसका नाम प्रविष्ट किए जाने की तारीख ;

(ग) उसकी अर्हताएं ; और

(घ) कोई अन्य विशिष्टियां जो विहित की जाएं ।

5. **रजिस्टर में नामों की प्रविष्टि और व्यवसाय के प्रमाणपत्रों का जारी किया जाना या नवीकरण** – (1) प्रत्येक नोटेरी, जो इस रूप में व्यवसाय करना चाहता है, उसको नियुक्त करने वाली सरकार को विहित फीस का, यदि कोई हो, संदाय करने पर निम्नलिखित का हकदार [2][हो सकेगा] :–

(क) धारा 4 के अधीन उस सरकार द्वारा रखे जाने वाले रजिस्टर में अपने नाम को प्रविष्टि कराने का, और

---

[1] विधि अनुकूलन (संख्यांक 3) आदेश, 1956 द्वारा खंड (छ) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1999 के अधिनियम सं. 36 की धारा 3 द्वारा (17-12-1999 से) "होगा" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(ख) उसको प्रमाणपत्र जारी किए जाने की तारीख से [1][पांच वर्ष] की कालावधि के लिए उसको व्यवसाय करने के लिए प्राधिकृत करने वाले प्रमाणपत्र ।

[2][(2) नोटेरी को नियुक्त करने वाली सरकार आवेदन और विहित फीस की प्राप्ति पर एक समय पर पांच वर्ष की अवधि के लिए किसी नोटेरी के व्यवसाय के प्रमाणपत्र का नवीकरण कर सकेगी ।]

6. **नोटेरियों की सूचियों का वार्षिक प्रकाशन** – केन्द्रीय सरकार और प्रत्येक राज्य सरकार, प्रत्येक वर्ष के जनवरी मास के दौरान, राजपत्र में उस सरकार द्वारा नियुक्त और उस वर्ष के प्रारम्भ में व्यवसाय करने वाले नोटेरियों की सूची उनके बारे में ऐसे ब्यौरों के साथ, जो विहित किए जाएं, प्रकाशित करेगी ।

7. **नोटेरियों की मुद्रा** – प्रत्येक नोटेरी की ऐसे प्ररूप में और ऐसे डिजाइन की, जो विहित की जाएं, एक मुद्रा होगी और आवश्यकतानुसार वह उसका उपयोग करेगा ।

8. **नोटेरियों के कृत्य** – (1) नोटेरी अपने पद के आधार पर निम्नलिखित में से सभी या कोई कार्य कर सकता है अर्थात् :–

(क) किसी लिखत के निष्पादन को सत्यापित, अधिप्रमाणित, प्रमाणित या अनुप्रमाणित करना ;

(ख) किसी वचनपत्र, हुण्डी या विनिमयपत्र को प्रतिग्रहण के लिए या संदाय के लिए प्रस्तुत कर सकना या अधिक अच्छी प्रतिभूति की मांग कर सकना ;

(ग) किसी वचनपत्र, हुण्डी या विनिमयपत्र के अप्रतिग्रहण या असंदाय द्वारा अनादर को नोट करना या उसका प्रसाक्ष्य करना या अधिक अच्छी प्रतिभूति के लिए प्रसाक्ष्य करना या परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (1881 का 26) के अधीन आदर का कार्य तैयार

---

[1] 1999 के अधिनियम सं. 36 की धारा 3 द्वारा (17-12-1999 से) "तीन वर्ष" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1999 के अधिनियम सं. 36 की धारा 3 द्वारा (17-12-1999 से) उपधारा (2) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

करना, या ऐसे नोट या प्रसाक्ष्य की सूचना तामील करना ;

(घ) पोत का प्रसाक्ष्य, नौका का प्रसाक्ष्य या डेमरेज और अन्य वाणिज्यिक मामलों के बारे में प्रसाक्ष्य नोट करना और लेखबद्ध करना ;

(ङ) किसी व्यक्ति को शपथ देना या उससे शपथपत्र लेना ;

(च) बाटमारी और जहाजी माल बंधपत्र, पोत भाटक पत्र और अन्य वाणिज्यिक दस्तावेज बनाना ;

(छ) भारत से बाहर किसी देश या स्थान में प्रभावी होने के लिए आशयित किसी दस्तावेज को ऐसे प्ररूप में और ऐसी भाषा में जो उस स्थान की विधि के अनुरूप है जहां ऐसे विलेख का प्रवर्तन आशयित है, तैयार करना, अधिप्रमाणित या अनुप्रमाणित करना ;

(ज) एक भाषा से दूसरी भाषा में किसी दस्तावेज का अनुवाद करना और ऐसे अनुवाद को सत्यापित करना ;

[1][(जक) यदि किसी न्यायालय या प्राधिकारी द्वारा ऐसा निदेश दिया जाए तो, किसी सिविल या दांडिक विचारण में साक्ष्य अभिलिखित करने के लिए आयुक्त के रूप में कार्य करना ;

(जख) यदि ऐसा अपेक्षित हो तो, मध्यस्थ, बिचौलिया या सुलहकार के रूप में कार्य करना ;]

(झ) कोई अन्य कार्य करना जो विहित किया जाए ।

(2) उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट कोई कार्य उस दशा के सिवाय जब वह नोटेरी द्वारा उसके हस्ताक्षर और पदीय मुद्रा के साथ किया गया है, नोटेरी का कार्य नहीं समझा जाएगा ।

9. **बिना प्रमाणपत्र के व्यवसाय करने का वर्जन** – (1) इस धारा के उपबंधों के अधीन रहते हुए, कोई व्यक्ति नोटेरी के रूप में व्यवसाय नहीं करेगा या नोटेरी की पदीय मुद्रा के अधीन कोई नोटेरी का काम नहीं करेगा जब तक उसके पास धारा 5 के अधीन उसे जारी किया गया व्यवसाय का चालू प्रमाणपत्र न हो :

---

[1] 1999 के अधिनियम सं. 36 की धारा 4 द्वारा (17-12-1999 से) अंत:स्थापित ।

परन्तु इस उपधारा की कोई बात किसी नोटेरी की ओर से कार्य करने वाले ऐसे नोटेरी के लिपिक द्वारा प्रतिग्रहण या संदाय के लिए, किसी वचनपत्र, हुण्डी या विनिमयपत्र के प्रस्तुतीकरण को लागू नहीं होगी ।

(2) उपधारा (1) की कोई बात इस अधिनियम के प्रारम्भ से दो वर्ष समाप्त हो जाने तक किसी ऐसे व्यक्ति को लागू नहीं होगी जिसके प्रति धारा 2 के खंड (घ) के परन्तुक में निर्देश किया गया है :

[1][परन्तु जम्मू-कश्मीर राज्य के संबंध में दो वर्ष की उक्त कालावधि की संगणना उस तारीख से की जाएगी जिसको यह अधिनियम उस राज्य में प्रवृत्त होगा ।]

10. **नामों का रजिस्टर से हटाया जाना** – किसी नोटेरी की नियुक्ति करने वाली सरकार, आदेश द्वारा, धारा 4 के अधीन उसके द्वारा रखे जाने वाले रजिस्टर से नोटेरी का नाम हटा सकती है यदि :–

(क) वह हटाए जाने के लिए अनुरोध करता है ; या

(ख) उसने संदाय किए जाने के लिए अपेक्षित विहित फीस का संदाय नहीं किया है ; या

(ग) वह अनुन्मोचित दिवालिया है ; या

(घ) यह विहित रीति से जांच करने के पश्चात्, ऐसे वृत्तिक या अन्य कदाचार का दोषी पाया गया है जो सरकार की राय में उसे नोटेरी के रूप में व्यवसाय करने के लिए अयोग्य बनाता है ; [2][या]

[2](ङ) ऐसे किसी अपराध के लिए जिसमें नैतिक अधमता अंतर्वलित हो किसी न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध किया जाता है ; या

(च) अपने व्यवसाय के प्रमाणपत्र को नवीकृत नहीं कराता है ।]

11. **अन्य विधि में नोटेरी पब्लिक के प्रति निर्देश का अर्थान्वयन** – किसी अन्य विधि में नोटेरी पब्लिक के प्रति निर्देश का यह अर्थ लगाया

---

[1] 1968 के अधिनियम सं. 25 की धारा 2 और अनुसूची द्वारा (15-8-1968 से) अंत:स्थापित ।

[2] 1999 के अधिनियम सं. 36 की धारा 5 द्वारा (17-12-1999 से) अंत:स्थापित ।

जाएगा कि वह इस अधिनियम के अधीन व्यवसाय करने के हकदार नोटेरी के प्रति निर्देश है ।

12. **नोटेरी के रूप मिथ्या व्यपदेशन के लिए शास्ति** – कोई व्यक्ति जो –

(क) नोटेरी के रूप में नियुक्त हुए बिना यह मिथ्या व्यपदेशन करेगा कि वह नोटेरी है, या

(ख) नोटेरी के रूप में व्यवसाय करेगा या धारा 9 के उल्लंघन में नोटेरी का कोई काम करेगा,

वह कारावास से, जिसकी अवधि [1][एक वर्ष] तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से दंडनीय होगा ।

13. **अपराधों का संज्ञान** – (1) कोई न्यायालय केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार द्वारा साधारण या विशेष आदेश द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी अधिकारी द्वारा लिखित रूप में किए गए परिवाद के सिवाय इस अधिनियम के अधीन किसी नोटेरी द्वारा उसके कृत्यों के तात्पर्यित प्रयोग या प्रयोग में किए गए किसी अपराध का संज्ञान नहीं करेगा ।

(2) प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट या प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट से भिन्न कोई मजिस्ट्रेट इस अधिनियम के अधीन दंडनीय किसी अपराध का विचारण नहीं करेगा ।

14. **विदेशी नोटेरियों द्वारा किए गए नोटेरी कामों की मान्यता के लिए व्यतिकारी व्यवस्था** – यदि केन्द्रीय सरकार का यह समाधान हो जाता है कि भारत से बाहर किसी देश या स्थान की विधि या पद्धति द्वारा, भारत के अन्दर नोटेरियों द्वारा किए गए नोटेरी के कार्य उस देश या स्थान में सभी या किन्हीं सीमित प्रयोजनों के लिए मान्यताप्राप्त हैं तो, केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा यह घोषित कर सकती है कि ऐसे देश या स्थान के अन्दर नोटेरियों द्वारा विधिपूर्णत: किए गए नोटेरी के कार्य

---

[1] 1999 के अधिनियम सं. 36 की धारा 3 द्वारा (17-12-1999 से) "तीन मास" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

भारत के अन्दर, यथास्थिति, सभी प्रयोजनों के लिए या सीमित प्रयोजनों के लिए, जैसा अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किया जाए, मान्यताप्राप्त होंगे ।

15. **नियम बनाने की शक्ति** – (1) केन्द्रीय सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के प्रयोजनों को क्रियान्वित करने के लिए नियम बना सकती है ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियम निम्नलिखित सभी या किन्हीं बातों के लिए उपबंध कर सकते हैं, अर्थात् :–

(क) नोटेरी की अर्हताएं, वह प्ररूप और रीति जिससे नोटेरी के रूप में नियुक्ति के लिए आवेदन किए जा सकते हैं और ऐसे आवेदनों का निपटान ;

(ख) वे प्रमाणपत्र, प्रशंसापत्र या चरित्र, आर्जव, योग्यता और क्षमता के बारे में साक्ष्य जो नोटेरी के रूप में नियुक्ति के लिए आवेदन करने वाले व्यक्ति से देने की अपेक्षा की जाए ;

[1][(ग) नोटेरी के रूप में नियुक्ति के लिए और व्यवसाय के प्रमाणपत्र के जारी किए जाने और उसके नवीकरण के लिए, व्यवसाय के क्षेत्र या व्यवसाय के क्षेत्र के विस्तारण के लिए संदेय फीस और विनिर्दिष्ट वर्गों के मामलों में ऐसी फीस से पूर्णत: या भागत: छूट ;]

(घ) नोटेरी का काम करने के लिए किसी नोटेरी को संदेय फीस ;

(ङ) रजिस्टरों का प्ररूप और उनमें प्रविष्ट की जाने वाली विशिष्टियां ;

(च) नोटेरी की मुद्रा का प्ररूप और डिजाइन ;

(छ) वह रीति जिससे नोटेरियों के विरुद्ध वृत्तिक या अन्य अवचारों के अभिकथनों की जांच की जा सके ;

(ज) वे कार्य जो नोटेरी धारा 8 में विनिर्दिष्ट कामों के अतिरिक्त कर सकें और वह रीति जिससे नोटेरी अपने कृत्यों पर निर्वहन करें ;

---

[1] 1999 के अधिनियम सं. 36 की धारा 7 द्वारा (17-12-1999 से) खंड (ग) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(झ) कोई अन्य विषय जो विहित किया जाना है या विहित किया जाए ।

[1](3) इस अधिनियम के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा । किन्तु नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

16. [**1881 के अधिनियम 26 का संशोधन ।**] – 1957 के अधिनियम संख्यांक 36 की धारा 2 और प्रथम अनुसूची द्वारा निरसिता ।

———

[1] 1983 के अधिनियम सं. 20 की धारा 2 और अनुसूची द्वारा (15-3-1984 से) अंत:स्थापित ।